अक्तूबर-दिसंबर, 2014 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक | **सहायक संपादक**

अनूप कुमार वार्ष्णेय | कमला कांत

महत्वपूर्ण निर्णय

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 और आदेश 32 का नियम 3 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क] – करार – निष्पादन – भागिक पालन – मूल्यांकन और अर्थान्वयन – यदि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों से यह प्रकट होता है कि करार का सम्यक् निष्पादन नहीं हुआ है तो उसका भागिक अनुपालन नहीं कराया जा सकता है और जहां ऐसे दस्तावेज का सम्यक् निष्पादन ही नहीं हुआ है तो उसके गलत मूल्यांकन या गलत अर्थान्वयन का प्रश्न ही उद्भूत नहीं हो सकता है ।

जान मोहम्मद बनाम **मोहम्मद दीन** 560

संसद् के अधिनियम

आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (18) क्रमशः

पृष्ठ संख्या 405 – 576 **(2014) 2 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – अक्तूबर-दिसंबर, 2014 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 405 – 576)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अक्तूबर-दिसंबर, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
कर्नल विश्वनाथ सिंह राणा **बनाम** ले. कर्नल पुष्पेन्दर सिंह राणा	473
जान मोहम्मद **बनाम** मोहम्मद दीन	560
ज्ञान चन्द और अन्य **बनाम** श्रीमती शिव देई और एक अन्य	534
न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती कुसुम और अन्य	405
मस्त राम **बनाम** कान्ता देवी और अन्य	485
महाप्रबन्धक और अन्य **बनाम** श्रीमती नसीब देवी और अन्य	450
महेन्द्र कुमार कुलदीप **बनाम** राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम	440
राजेश वर्मा **बनाम** हरभजन सिंह	504
साही राम और एक अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य	427

संसद् के अधिनियम

आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (18)

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ला और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

पृष्ठ संख्या

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 173 – यान दुर्घटना – ट्रैक्टर से कुचलने के परिणामस्वरूप कारित क्षतियों के कारण आहत की मृत्यु होना – ट्रैक्टर चलाते समय चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं होना – प्रतिकर – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमा पालिसी की शर्तों के भंग में बीमाकृत यान चलाया जाता है वहां भी कारित दुर्घटना में बीमा कंपनी प्रतिकर संदाय करने के अपने दायित्व से बच नहीं सकती है तथापि, बीमा कंपनी, बीमाकृत यान के स्वामी से स्वयं द्वारा संदत्त प्रतिकर की धनराशि वसूल करने की हकदार होगी ।

न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती कुसुम और अन्य** 405

लेटर्स पेटेन्ट

– खंड 10 [सपठित भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1)(2)(3) और धारा 4 तथा 11] – भूमि अर्जन के एवज में प्रतिकर – तत्समय प्रवृत्त समुचित विधि के अधीन लाभ प्राप्त करना – अवशिष्ट व्यक्तियों को लाभ प्राप्त करने का एक अवसर देने के लिए तत्समय प्रवृत्त समुचित विधि में संशोधन करना – सभी व्यक्तियों द्वारा पुनः लाभ प्राप्त करने का दावा करना – संशोधित विधि अवशिष्ट व्यक्तियों को लाभ प्राप्त करने का एक अवसर देने मात्र के लिए अधिनियमित होना – इन परिस्थितियों में संशोधित विधि का लाभ उन्हीं व्यक्तियों को मिल सकता है जो किन्हीं युक्तियुक्त कारणों से संशोधन-पूर्व समुचित विधि के अधीन अवसर का लाभ उठाने से वंचित रह गए थे ।

महाप्रबन्धक और अन्य बनाम **श्रीमती नसीब देवी और अन्य** 450

पृष्ठ संख्या

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 6 [सपठित संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 10, 55 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 6 का नियम 15] – संविदा का विनिर्दिष्ट पालन – वादी द्वारा विक्रय करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द होना – प्रतिवादी द्वारा करार के समय सम्पत्ति दर पर सम्पत्ति विक्रय करने में बहानेबाजी करना तथा विक्रय करार के अपने भाग का पालन करने में टाल-मटोल करना – अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों तथा दस्तावेजों से पुष्टि होना – यदि पक्षकारों के बीच हुए करार में एक पक्षकार करार के अपने कुछ भाग का पालन करते हुए अपनी स्थिति में परिवर्तन कर लेता है और करार के शेष भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द भी है तो दूसरे पक्षकार को करार में अपने भाग का पालन करना होगा ।

राजेश वर्मा बनाम **हरभजन सिंह** 504

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 226 [सपठित राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 की धारा 16] – रिट – नए राजस्व ग्राम का निर्माण करना – अधिकथित मानदंडों की अवहेलना करना – प्रभावित नागरिकों की सुविधाओं और कठिनाइयों पर ध्यान नहीं देना – नए राजस्व ग्राम के निर्माण से संबंधित रिपोर्टों की अवहेलना – मात्र कुछ स्थानीय नागरिकों की मांग पर नए राजस्व ग्राम का निर्माण करने का आदेश जारी करना – उपर्युक्त परिस्थितियों में, ऐसा आदेश प्रथमदृष्ट्या ही अवैध और मनमाना प्रतीत होता है जिसे कायम नहीं रखा जा सकता है ।

साही राम और एक अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** 427

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 226 [सपठित आर. एस. आर. टी. सी. के मृत्तक कर्मचारियों के आश्रितों की अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति विनियम, 2010 का विनियम 5 और विनियम 6] – अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति – तत्समय प्रवृत्त नियमों के अनुसार आवेदन किया जाना – संशोधित नियमों के आधार पर नियुक्ति हेतु आवेदन रद्द करना – नियमों में पुनः संशोधन करना – अर्हता में परिवर्तन के कारण आवेदन पुनः रद्द करना – चुनौती – यदि तत्समय प्रवृत्त नियमों के अधीन अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति हेतु कोई आवेदन स्वीकार किया जाता है और विचारार्थ लंबित रखा जाता है और तत्पश्चात् यदि प्रवृत्त नियमों में संशोधन करके उक्त आवेदन को रद्द कर दिया जाता है तो यह मनमाना, अविधिमान्य तथा विभेदकारी माना जाएगा ।

महेन्द्र कुमार कुलदीप बनाम **राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम** 440

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 24, 151 – दूरी और वृद्धावस्था के आधार पर वाद अन्तरित करने का विरोध करना – साक्षियों का उसी स्थान का निवासी होना जहां वाद हेतुक उद्भूत हआ है – वाद अन्तरित होने से न्याय असफल होने की संभावना नहीं होना – यदि अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं है कि वाद अन्तरित करने से न्याय असफल हो जाएगा तो दूरी और वृद्धावस्था के आधार पर वाद अन्तरित नहीं करने का आवेदन खारिज करना सही, समुचित और न्यायोचित है ।

कर्नल विश्वनाथ सिंह राणा बनाम **ले. कर्नल पुष्पेन्दर सिंह राणा** 473

पृष्ठ संख्या

– धारा 100 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 और साक्ष्य अधिनियम, 1972 की धारा 65 और 91] – विल का निष्पादन – आक्षेप – संदेहास्पद परिस्थितियों का समाधान नहीं होना – मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों से निष्पादन साबित नहीं होना – निष्पादन अकृत, अवैध और शून्य पाया जाना – इसका नामांतरण खारिज होना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि विल का निष्पादन अकृत, अवैध और शून्य है तो ऐसे विल के आधार पर की गई सभी कार्यवाहियां जैसे नामांतरण आदि भी अकृत, अवैध और शून्य होगी ।

मस्त राम बनाम **कान्ता देवी और अन्य** 485

– धारा 100 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63] – द्वितीय अपील – विल के निष्पादन की घोषणा अन्तर्निहित उत्तराधिकार – मृतक की मृत्यु के पांच माह पूर्व ही विल तैयार कर लेना – विल पर मृतक के हस्ताक्षर संदिग्ध होना – विल के अनुप्रमाणन साक्षियों की विश्वसनीयता संदेह के परे नहीं होना – वसीयतदारों का मृतक का नातेदार नहीं होना – विल रजिस्ट्रीकृत होना – यदि उपर्युक्त संदेहों का निवारण नहीं किया जाता है तो ऐसा विल संदेहों से घिरी मानी जाएगी और मात्र रजिस्ट्रीकृत होने से ही यह संदेहों के परे और विधिमान्य नहीं हो जाएगी – अतएव, ऐसा विल अकृत, शून्य और अविधिमान्य होगी तथा मृतक की सम्पत्ति अन्तर्निहित उत्तराधिकार के अधीन उसके वैध उत्तराधिकारियों में अन्तर्निहित हो जाएगी ।

ज्ञान चन्द और अन्य बनाम **श्रीमती शिव देई और एक अन्य** 534

पृष्ठ संख्या

– धारा 100 और आदेश 32 का नियम 3 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क] – करार – निष्पादन – भागिक पालन – मूल्यांकन और अर्थान्वयन – यदि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों से यह प्रकट होता है कि करार का सम्यक् निष्पादन नहीं हुआ है तो उसका भागिक अनुपालन नहीं कराया जा सकता है और जहां ऐसे दस्तावेज का सम्यक् निष्पादन ही नहीं हुआ है तो उसके गलत मूल्यांकन या गलत अर्थान्वयन का प्रश्न ही उद्भूत नहीं हो सकता है ।

जान मोहम्मद बनाम **मोहम्मद दीन** 560

न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

श्रीमती कुसुम और अन्य

तारीख 6 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 173 – यान दुर्घटना – ट्रैक्टर से कुचलने के परिणामस्वरूप कारित क्षतियों के कारण आहत की मृत्यु होना – ट्रैक्टर चलाते समय चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं होना – प्रतिकर – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमा पालिसी की शर्तों के भंग में बीमाकृत यान चलाया जाता है वहां भी कारित दुर्घटना में बीमा कंपनी प्रतिकर संदाय करने के अपने दायित्व से बच नहीं सकती है तथापि, बीमा कंपनी, बीमाकृत यान के स्वामी से स्वयं द्वारा संदत्त प्रतिकर की धनराशि वसूल करने की हकदार होगी ।

वर्तमान अपील, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, चित्रकूट द्वारा 2009 की मोटर दुर्घटना मामला सं. 14/70 में पारित तारीख 30 जुलाई, 2011 के निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की है । जिसके द्वारा अधिकरण ने अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत दुर्घटना प्रश्नगत यान के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण घटित हुई थी जिसके परिणामस्वरूप उक्त राजधर को गंभीर क्षतियां पहुंचीं थीं और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यह साबित नहीं हो पाया है कि प्रश्नगत यान के चालक के पास प्रश्नगत दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी । अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत यान दुर्घटना के समय अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था । अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थी सं. 4 से 7

(मृतक राजधर के वयस्क पुत्र) मृतक राजधर पर आश्रित होना साबित नहीं हो पाया है और इसलिए दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 अर्थात् मृतक राजधर की विधवा पत्नी प्रतिकर की संपूर्ण धनराशि पाने की हकदार थी । उपरोक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण ने तारीख 30 जुलाई, 2011 को आक्षेपित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय पारित किया, अन्य बातों के साथ, दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के लिए अंतिम संदाय की तारीख तक दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से 6 प्रतिशत ब्याज की दर के साथ 2,19,500/- रुपए की प्रतिकर धनराशि अधिनिर्णीत की है । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है । यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीत-ऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो । उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश में जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी-अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है और उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है । विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की

गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । न्यायालय इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहा है । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है । आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1, या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे । अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी । (पैरा 21, 23, 24, 37, 41, 42, 43 और 44)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुर्शीदा बानो और अन्य** ;	40
[2008]	2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.) : **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रह्लाद देव और अन्य** ;	25,32
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त** ;	25,30,32

[2007]	2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद) : **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य** ;	39
[2005]	2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **छल्ला भरथम्म्मा** ;	17, 36
[2004]	[2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321: **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** ;	25,28 30,31,32
[2004]	2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.) : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य** ;	17,35
[1998]	ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588 : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंद्रजीत कौर और अन्य** ।	25, 26

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 3190.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री बृजेश चन्द्र नायक

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता ने दिया ।

निर्णय

वर्तमान अपील 2009 की मोटर दुर्घटना मामला सं. 14/70 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, चित्रकूट द्वारा तारीख 30 जुलाई, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा राजधर की मृत्यु के कारण फाइल की गई है दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के पति की तारीख 5

जनवरी, 2009 को लगभग 7.00 बजे मृत्यु हुई थी ।

2. दावा याचिका में पक्षकथन यह था कि तारीख 5 जनवरी, 2009 को, उक्त राजधर और दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के पुत्र अपने घर के लिए बड़ा तीर पुरवा माजरा खरोंद से वापसी हेतु यान का मलीन टंकी के नजदीक इंतजार कर रहे थे और एक ट्रैक्टर जिसका रजिस्ट्रेशन सं. यू पी 96ए 5980 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रश्नगत यान" कहा गया है) कारवी की दिशा से आते हुए और चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए उक्त राजधर को कुचल दिया जिसके कारण उसे गंभीर क्षतियां पहुंचीं; और उक्त राजधर को अस्पताल में भर्ती कराया गया था किन्तु उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हो गई ।

3. दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और मृतक राजधर के पुत्र (इसमें प्रत्यर्थी सं. 4 से 7) मृतक राजधर पर आश्रित थे ।

4. प्रत्यर्थी सं. 3 (राम सिंह) प्रश्नगत यान (अर्थात् ट्रैक्टर) का स्वामी था जबकि अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रश्नगत यान बीमाकृत था ।

5. प्रत्यर्थी सं. 3 (रवि राज सिंह) प्रश्नगत यान का चालक था ।

6. पक्षकारों के बीच अभिवाकों के आदान-प्रदान के पश्चात् अधिकरण ने उक्त मामले में विवाद्यक विरचित किए थे ।

7. उक्त दावा याचिका में साक्ष्य का अवलंब लिया गया ।

8. अभिलेख पर रखी गई सामग्री पर विचार करते हुए, अधिकरण ने अनेकों विवाद्यकों पर अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए थे ।

9. अधिकरण ने अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत दुर्घटना प्रश्नगत यान के चालक (इसमें प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण घटित हुई थी जिसके परिणामस्वरूप उक्त राजधर को गंभीर क्षतियां पहुंचीं थीं और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई ।

10. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यह साबित नहीं हो पाया है कि प्रश्नगत यान के चालक (इसमें प्रत्यर्थी सं. 2) के पास प्रश्नगत दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी ।

11. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत यान

दुर्घटना के समय अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था ।

12. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थी सं. 4 से 7 (मृतक राजधर के वयस्क पुत्र) मृतक राजधर पर आश्रित होना साबित नहीं हो पाया है और इसलिए दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 अर्थात् मृतक राजधर की विधवा पत्नी प्रतिकर की संपूर्ण धनराशि पाने की हकदार थी ।

13. उपरोक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण ने तारीख 30 जुलाई, 2011 को आक्षेपित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय पारित किया, अन्य बातों के साथ, दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के लिए अंतिम संदाय की तारीख तक दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से 6 प्रतिशत ब्याज की दर के साथ 2,19,500/- रुपए की प्रतिकर धनराशि अधिनिर्णीत की है ।

14. तथापि, अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए उपरोक्त तथ्य को दृष्टिगत करते हुए इसमें यह साबित नहीं हो पाया है कि प्रश्नगत यान के चालक (इसमें प्रत्यर्थी सं. 2) के पास प्रश्नगत दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी, अधिकरण ने यह निदेश दिया है कि प्रतिकर की धनराशि अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा संदत्त करनी होगी और इसके पश्चात्, अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने का अधिकार होगा ।

15. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री बी. सी. नायक को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

16. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री बी. सी. नायक ने यह दलील दी कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पूर्वोक्त प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध चलाया जा रहा था, अधिकरण ने प्रतिकर की धनराशि का संदाय करने के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी को निदेश देने में और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का आदेश करने में गलती की है ।

17. श्री बी. सी. नायक ने यह दलील दी कि किसी भी दशा में अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 3 है) के विरुद्ध उचित रूप से सुरक्षित किया जाना चाहिए था ताकि आक्षेपित

अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर का संदाय करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी उपर्युक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने में समर्थ हो सके । श्री बी. सी. नायक ने इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है :–

1. **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1];

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **छल्ला भरथम्मा**[2];

18. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री बी. सी. नायक द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया ।

19. जहां श्री बी. सी. नायक द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अधिकरण ने प्रतिकर का संदाय करने के लिए और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए बीमा कंपनी को निदेश करने में गलती की है, इस संबंध में मोटर यान अधिनियम, 1988 के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा ।

20. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 की उपधारा (5) इस प्रकार है :–

> "147. **पालिसियों की अपेक्षाएं तथा दायित्व की सीमाएं** :– (1) से (4) .....
>
> (5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई बीमाकर्ता जो इस धारा के अधीन बीमा पालिसी देता है, उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।"

21. इस प्रकार, उपर्युक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा की पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

[2] 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।

22. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 में जहां तक यह सुसंगत है, निम्नलिखित उपबंधित है :–

> "149. **पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध हुए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तुष्टि करने का बीमाकर्ताओं का कर्तव्य** – (1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात्, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) {या धारा 163क के उपबंधों के अधीन है} ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगी, खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीत-ऋणी हो ।
>
> (2) से (7).....।"

23. उपर्युक्त उद्धृत उपबन्ध से यह दर्शित होता है कि यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीत-ऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो ।

24. उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि

अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी-अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है, उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है ।

25. उपरोक्त निष्कर्ष माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों द्वारा समर्थित है :–

1. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंद्रजीत कौर और अन्य**[1]

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2]

3. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3]

4. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रह्लाद देव और अन्य**[4]

26. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंद्रजीत कौर और अन्य**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया है :–

> "7. अतः, हमारे समक्ष यही स्थिति है । बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-फख द्वारा सृजित वर्जन के बावजूद अपीलार्थी, प्राधिकृत बीमाकर्ता ने बस के लिए प्रीमियम प्राप्त किए बिना बीमा पालिसी जारी कर दी थी । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5) और धारा 149(1) के उपबंधों के आधार पर अपीलार्थी उस दायित्व के संबंध में तृतीय पक्षकार की जिसके लिए पालिसी ली गई थी, क्षतिपूर्ति के लिए और इसकी हकदारी होते हुए भी उसके संबंध में प्रतिकर के अधिनिर्णयों का समाधान करने के लिए दायी है, (जिस पर हम कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं) भले ही वह इस कारण से पालिसी से इनकार करे या रद्द कराए कि प्रीमियम के संदाय में जारी चैक का आदरण नहीं हुआ था ।"
>
> (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

---

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[4] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

27. इस प्रकार, यह विनिश्चय, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5) और 149(1) के आधार पर उपर्युक्त उल्लिखित निष्कर्ष का समर्थन करता है ।

28. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"105. इन याचिकाओं में उठे विभिन्न विवाद्यकों से संबंधित हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है –

(i) मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 जिसमें पर-व्यक्तियों के जोखिमों के विरुद्ध यानों के अनिवार्य बीमा के लिए उपबंध है, मोटर यानों के प्रयोग के द्वारा कारित दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर द्वारा अनुतोष प्रदान करने के लिए एक समाज कल्याणकारी विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा सुरक्षा उपबंध इस सर्वोपरि उद्देश्य की दृष्टि से है और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उक्त उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए किया जाना चाहिए ।

(ii) बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163क या धारा 166 के अधीन फाइल दावा याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) के निबंधनों के अनुसार प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का हकदार है ।

(iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए पालिसी की शर्त का भंग अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा 2(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकृत व्यक्ति द्वारा किया गया साबित होना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समयबिंदु पर यान चालन के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

नहीं हैं । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और वह सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सुसंगत समय पर यान के चालन के लिए अयोग्य नहीं था, यानों के प्रयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व को टालने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिरक्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को भी सिद्ध करना चाहिए ; जिसके सबूत का भार उन पर होगा ।

(v) न्यायालय इस प्रकार का कोई मानदंड अधिकथित नहीं कर सकता है कि उक्त भार का किस प्रकार निर्वहन किया जाएगा क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने या सुसंगत अवधि के दौरान यान चालन की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है तो उसे (बीमाकर्ता को) उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व को टालने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि वे दुर्घटना से संबंधित पाए जाएं । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(3) के अधीन बीमाकृत व्यक्ति को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने से संबंधित मूल भंग की संकल्पना और मुख्य प्रयोजन के नियम को लागू करेगा ।

(vii) यह प्रश्न कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा प्रस्तुत चालन अनुज्ञप्ति (जाली अनुज्ञप्ति या अन्यथा) विधि की अपेक्षा को पूरा नहीं करती है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर अवधारित किया जाएगा ।

(viii) यदि दुर्घटना के समय यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति थी तो बीमा कंपनियां डिक्री की तुष्टि करने की दायी होंगी ।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के प्रयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं, जिनमें पर-व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या उसकी संपत्ति को नुकसान अंतर्वलित होता है, के संबंध में सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम है । अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत व्यक्ति बीमाकर्ता और चालक के मध्य के आंतरिक दावों का विनिश्चय करने तक निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावे का न्यायनिर्णयन और बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता का विनिश्चय करने के दौरान अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर विवादों का विनिश्चय करने के लिए आवश्यक रूप से शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है । दावाकर्ता द्वारा प्रतिकर के दावे के न्यायनिर्णयन और इस पर किए गए अधिनिर्णय के दौरान बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर दावों और विवादों पर दिया गया विनिश्चय दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निष्पदान के लिए अधिनियम की धारा 174 में यथाउपबंधित रीति में प्रवर्तनीय और निष्पादनीय है ।

(x) जहां अधिनियम के अधीन दावे का न्यायनिर्णयन करने पर अधिकरण का यह निष्कर्ष हो कि बीमाकर्ता ने उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा को संतोषप्रद रूप से साबित कर दिया है, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्वचन किया गया है, वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर के और उन धनराशियों के संबंध में जिनका संदाय करने के लिए उस अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करे । अधिकरण द्वारा दावे का

इस प्रकार अवधारण प्रवर्तनीय होगा और बीमाकृत व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय ठहराई गई धनराशि राजस्व के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन दी गई रीति में अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल की जाएगी । प्रमाणपत्र भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली के लिए केवल तभी जारी किया जाएगा जैसा कि अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा यथाअपेक्षित है, जब बीमाकृत व्यक्ति अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से बीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) के परंतुक के साथ इसके उपबंधों और उपधारा (5) जिनमें बीमाकृत व्यक्ति की ओर से बीमा की संविदा के अधीन संदत्त धनराशि वसूल करने के लिए बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए इसमें उल्लिखित विनिर्दिष्ट आकस्मिकता आशयित है का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और इन्हें ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पारस्परिक दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब होगा, बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता की प्रतिरक्षाओं और दावों को नियमित न्यायालय में उपचार माना जा सकता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

29. प्रतिपादना संख्या (vi) और (x) से जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिनिर्णय में अधिकरण द्वारा दिया गया निदेश विधि अनुसार है ।

30. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय पर विचार करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

"35. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पर-व्यक्ति के अधिकार और निजी नुकसान के मामलों के बीच वैचारिक संकल्पनात्मक मतभेदों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । आरंभिक रूप से, यह साबित करने का भार बीमाकर्ता पर होता है कि विज्ञप्ति जाली थी । यदि एक बार यह साबित हो जाता है तो नैसर्गिक परिणाम उत्पन्न होंगे ।

उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –

(1) **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय पर-व्यक्ति जोखिम वाले मामलों के अतिरिक्त अन्य मामलों में लागू नहीं होता ।

(2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली थी वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष को दूर नहीं कर सकता है ।

(3) पर-व्यक्ति जोखिम के मामले में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और जहां ऐसा हो, वहां बीमाकृत से उसे वसूल भी किया जा सकता है ।

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों को लागू नहीं होती ।

उच्च न्यायालय/आयोग, विधि की स्थिति के प्रकाश में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले पर नए सिरे से विचार करेगा ।

अपीलें खर्चों के बारे में कोई आदेश पारित किए बिना उपर्युक्त रूप में स्वीकार की जाती हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

31. उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय तृतीय पक्षकार के जोखिम के मामले में लागू होता

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

है और बीमाकर्ता को तृतीय पक्षकार को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और इसके पश्चात् बीमाकृत से इस रकम को वसूल किया जा सकता है ।

32. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रह्लाद देव और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट करते हुए **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट किया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "8. **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के प्रभाव और विवक्षा (तात्पर्य) और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले में हम में से एक (न्यायमूर्ति डाक्टर अरिजीत पसायत) ने विचार करते हुए स्पष्ट किया है । पैरा 38 में निकाला गया निम्नलिखित निष्कर्ष सुसंगत हैं –
>
> '38. उपरोक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –
>
> (1) **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों को छोड़कर अन्य किसी मामले में कोई उपयोग नहीं है ।
>
> (2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली है, वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष दूर नहीं हो सकता ।
>
> (3) तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और यदि ऐसा उपदर्शित किया है तो वह बीमाकृत से उसकी वसूली कर सकता है ।
>
> (4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना का अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों में कोई उपयोग नहीं होता ।'

---

[1] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

[2] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

9. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मीना वारीयान और अन्य [(2007) 5 एस. सी. सी 428 = 2007 (2) टी. ए. सी. 417] वाले मामले में दिया गया पश्चात्वर्ती विनिश्चय, जो दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय है, **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करते हुए निष्कर्ष निकाला गया कि किसी ऐसे मामले में जहां कोई व्यक्ति अधिनियम के अर्थांतर्गत तृतीय पक्ष नहीं है, बीमा कंपनी को केवल **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर अपने आप दायी नहीं बनाया जा सकता । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय ने **लक्ष्मी नारायण दत्त** (पूर्वोक्त) वाले मामले के पैरा 38 में उल्लिखित विश्लेषण को उद्धृत किया और उसके साथ सहमति व्यक्त की । हम संगतता को दृष्टि में रखते हुए **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्वचन और प्रयोजनीयता को ध्यान में रखते हुए **लक्ष्मी नारायण दत्त** (पूर्वोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को दोहराते हैं ।'

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

33. उपरोक्त विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं ।

34. जहां तक श्री बी. सी. नायक द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 3 है) के विरुद्ध संरक्षित होना चाहिए जिससे कि यदि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर की धनराशि नकद रूप में जमा करे तो वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके, इस संबंध में श्री बी. सी. नायक द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों का निर्देश करना प्रासंगिक है ।

35. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

किया है :–

"7. अतः हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए **बलजीत कौर**, 2004 (1) टी. ए. सी. 366 (एस. सी.) वाले मामले में अभिव्यक्त मत के निबंधनों में यह निदेश करते हैं कि बीमाकर्ता अधिकरण द्वारा नियत किए गए उस प्रतिकर के परिमाण का आज से तीन मास के भीतर संदाय करेगा जिसके संबंध में प्रत्यर्थियों-दावाकर्ताओं ने कोई विवाद नहीं किया है । बीमाकर्ता से उसे वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी । वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण की विषयवस्तु से संबंधित विवाद बीमाकर्ता और स्वामी के बीच था और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । बीमाकृत को धनराशि के जारी करने से पहले यान के स्वामी को नोटिस जारी किया जाएगा और उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति दाखिल करने की अपेक्षा की जाएगी जिसका बीमाकर्ता-दावाकर्ताओं को संदाय करेंगे । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि निष्पादन न्यायालय आवश्यक समझे तो वह संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता ले सकता है । निष्पादन न्यायालय उस रीति के बारे में विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें बीमाकृत यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस मामले में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या बीमाकृत यान के स्वामी की किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से वसूलने का निदेश करे । अपील का उपर्युक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

36. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **छल्ला भरथम्मा**[1] वाले मामले में इस प्रकार अधिकथित किया गया है :–

---

[1] 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

"प्रश्न यह रहता है कि समुचित निदेश क्या होगा । अधिनियम के फायदा संबंधी उद्देश्य पर विचार करते हुए बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई उत्तरदायित्व न हो । कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है । स्वामी से संदेय धनराशि वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता से वाद फाइल करने की अपेक्षा नहीं की गई है । वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण करने के लिए संबंधित विवाद्यक की विषयवस्तु विवाद्यक बीमाकर्ता और स्वामी के बीच हो और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया हो । दावाकर्ताओं के लिए धनराशि को निर्मुक्त करने से पूर्व दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देगा जो बीमाकर्ता दावेदारों को देगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि आवश्यकता हुई तो निष्पादन न्यायालय संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेगा । निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसार उस रीति के बारे में समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस संबंध में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय यान के स्वामी अर्थात् बीमाकृत की प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से वसूली करने के लिए निदेश देगा । वर्तमान मामले में हम अन्तर्वलित धनराशि की मात्रा पर विचार करते हुए इस विनिश्चय को बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए क्या कदम उठाया जाए ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

37. हमारी राय में, अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे

और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं ।

38. तथापि, हम इस न्यायालय के उन दोनों विनिश्चयों को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चयों पर विचार किया गया है ।

39. **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यथानिर्दिष्ट उपरोक्त निर्णयज विधि से यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि बीमाकर्ता को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के अधीन पालिसी के अन्तर्गत दावाकर्ताओं को प्रतिकर के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है फिर भी इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा विकसित विधि के अधीन संदाय करने का दायित्व बीमा कंपनी को ठहराया गया है । इसके साथ-साथ बीमा कंपनी को भी मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के भीतर बीमाकृत व्यक्ति से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए और इस प्रयोजन के लिए कोई वाद फाइल करने का भार डाले बिना स्वतंत्रता दी गई है । आरंभतः विधि का यह सिद्धांत **बलजीत कौर** (पूर्वोक्त) वाले मामले में घोषित किया गया था और इसका संबंधित पक्षकारों द्वारा ऊपर निर्दिष्ट मामले में अनुसरण किया गया है । किन्तु पश्चात्वर्ती मामलों में विशेषतया **नन्जप्पन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि बीमाकृत/यान का स्वामी न्यायालय के समक्ष जमा धनराशि को निर्मुक्त करने से पहले एक सूचना जारी करेगा और उससे उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देने की अपेक्षा की जाएगी जो बीमा कंपनी दावाकर्ताओं को संदाय करेगी । नोटिस के पश्चात् न्यायालय प्रतिभूति के भाग के रूप में दुर्घटना करने वाले यान की कुर्की करने का निदेश कर सकता है और विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित कर सकता है । चूक होने की दशा में न्यायालय के लिए यह विकल्प

---

[1] 2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद).

होगा कि वह प्रतिभूति के निपटान द्वारा बीमाकृत/स्वामी से या यान के स्वामी की किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से धनराशि को सीधे वसूल करने का निदेश कर सकेगा । तथापि, ये सभी तरीके उच्चतम न्यायालय द्वारा बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत से वसूली के लिए उपबंधित किए गए हैं । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इन सभी निदेशों से तात्पर्य यह है कि न्यायालय उन दावाकर्ताओं के हित को कम नहीं मानेगा जिनके कल्याण के लिए उच्चतम न्यायालय ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के साथ बीमाकर्ता के दायित्व के अन्यथा निर्वचन द्वारा इन सभी मामलों के माध्यम से इस विधि का विकास किया है । इस प्रकार, वर्तमान मामले में निष्कर्ष यह है कि पुनरीक्षणकर्ता-दावेदार को तब भी नुकसान न हो जब बीमाकृत/यान का स्वामी प्रतिभूति नहीं देता है या वह न्यायालय के समक्ष उसको जारी किए नोटिस के अनुसरण में हाजिर नहीं होता है । अधिनियम के उपबंधों के भीतर धनराशि वसूल करने का भार उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय में स्वयं बीमाकर्ता पर डाला गया है । दावाकर्ताओं को जिन्होंने अपने पक्ष में अधिनिर्णय प्राप्त किया है, इन मामलों में उच्चतम न्यायालय ने अपने संप्रेक्षण के माध्यम से हानि नहीं होने दी है । इस प्रकार, मामले को उपरोक्त दृष्टि से देखते हुए मेरा यह मत है कि यदि निचला न्यायालय प्रथमतः बीमाकृत/यान के स्वामी को नोटिस जारी करने का निदेश देता है और यदि उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष जमा राशि दावाकर्ताओं के पक्ष में निर्मुक्त की जाती है तो यह न्यायोचित और ठीक होगा ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

40. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुर्शीदा बानो और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस प्रकार अधिकथित किया है :–

"4. विद्वान् काउंसेल ने यह सिद्ध करने के लिए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी **बनाम** छल्ला भरथम्मा (2004) 8 एस. सी. सी. 517 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख किया है कि बीमा कंपनी के दावे को स्वामी द्वारा प्रत्याभूत किया

[1] 2009(1) ए. डब्ल्यू. सी. 355.

जाना चाहिए । हमारे समक्ष इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । हम यह कहना चाहते हैं कि जब तक वसूली के प्रयोजन के लिए बीमा कंपनी द्वारा उसी कार्यवाही में कोई समुचित आवेदन नहीं दिया जाता है तब तक स्वामी द्वारा प्रतिभूति प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसी प्रास्थिति अब परिपक्व हो चुकी है । इस प्रक्रम पर हम केवल दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर का संदाय करने से संबंधित मुद्दे पर विचार कर रहे हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता है और जिसका स्वामी तथा बीमा कंपनी के बीच दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है । पीड़ित एक पर-व्यक्ति है । इसके अलावा, ऐसे निर्णय में, उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिनियम के फायदाग्राही उद्देश्य पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है, 'बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा, कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई दायित्व न हो' प्रभावतः यह अधिनिर्णय के समाधान के लिए एक कामचलाऊ (अन्तरकालीन) प्रबंध है जैसे ही इसे पारित किया जाता है । नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. **बनाम** स्वर्ण सिंह और अन्य, [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपने निर्णय के पैरा 110 में इस प्रकार मत व्यक्त किया कि अधिकरण यह निदेश कर सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर और अन्य धनराशियों के लिए बीमाकृत को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है जिसके द्वारा उसे अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है । अतः विधान-मंडल का आशय और उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्वचन के आधार पर यह बात सुस्थापित है कि दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर के संदाय से किसी भी परिस्थिति में इनकार नहीं किया जाएगा । हम दोहराते हुए यह भी कह सकते हैं कि इसका स्वामी या बीमाकर्ता के दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है जिस पर उसी मामले में पृथक् आवेदन में या बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत निष्पादन आवेदन में विचार किया जा सकता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

41. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अधिकरण

ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है ।

42. आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने के लिए समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे ।

43. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे ।

44. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी ।

45. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन खारिज किए जाने योग्य है ।

46. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चे के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./क.

साही राम और एक अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

तारीख 10 मार्च, 2014

न्यायमूर्ति संगीत लोढ़ा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 की धारा 16] – रिट – नए राजस्व ग्राम का निर्माण करना – अधिकथित मानदंडों की अवहेलना करना – प्रभावित नागरिकों की सुविधाओं और कठिनाइयों पर ध्यान नहीं देना – नए राजस्व ग्राम के निर्माण से संबंधित रिपोर्टों की अवहेलना – मात्र कुछ स्थानीय नागरिकों की मांग पर नए राजस्व ग्राम का निर्माण करने का आदेश जारी करना – उपर्युक्त परिस्थितियों में, ऐसा आदेश प्रथमदृष्ट्या ही अवैध और मनमाना प्रतीत होता है जिसे कायम नहीं रखा जा सकता है ।

वर्तमान मामले में, राजस्थान भूमि राजस्व अधिनियम, 1956 की धारा 16 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने तारीख 15 अप्रैल, 2008 की अधिसूचना द्वारा तहसील-बिलारा, जिला-जोधपुर में एक नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर को सृजित किया । जारी अधिसूचना में ग्राम की जनसंख्या 330 व्यक्तियों की दर्शित की गई थी और ग्राम का क्षेत्र 348.2 हेक्टेयर विनिर्दिष्ट की गई थी । नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर के सृजन के लिए राज्य सरकार की प्रस्थापना की वैधता और सांपत्तिक को कुछ गांव वालों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका सं. 7217/07 के माध्यम से प्रश्नगत किया गया जिसे इसमें के याचियों की इस स्वतंत्रता के साथ वापस लिए जाने के रूप में खारिज कर दी गई कि वे उप-सचिव, राजस्व विभाग, राजस्थान सरकार के समक्ष अभ्यावेदन करें । तारीख 15 अप्रैल, 2008 की अधिसूचना द्वारा ग्राम का सृजन होने के पश्चात् कुछ गांव वालों ने एक नई रिट याचिका फाइल की जिसे भी इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ ने तारीख 12 मई, 2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दी थी । इससे व्यथित होकर इसमें के रिट याचियों ने इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ के समक्ष एक विशेष अपील फाइल की जिसे भी खारिज कर दी गई थी । इसके पश्चात्, कुछ गांव वालों द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर

मामले की जांच तहसीलदार-I, बिलारा की अध्यक्षता में एक टीम द्वारा की गई और उनके द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर उप-खंड अधिकारी (एस. डी. ओ.), पीपर शहर, ने तारीख 30 जून, 2011 की संसूचना द्वारा जिला कलक्टर, जोधपुर के समक्ष तथ्यात्मक प्रास्थिति को स्पष्टीकृत किया और यह राय व्यक्त की कि नए सृजित ग्राम की सीमाओं और चारदीवारियों का संशोधन व्यवहार्य नहीं है और प्राधिकृत है । याचियों के अनुसार, सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की अवहेलना करते हुए, राज्य सरकार ने नए सृजित राजस्व ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और चारदीवारियों में परिवर्तन करते हुए तारीख 27 जुलाई, 2012 की आक्षेपित अधिसूचना जारी की । तारीख 13 सितम्बर, 2012 के आदेश द्वारा पूर्वोक्त रूप में जारी अधिसूचना के अनुपालन में, अपर जिला कलक्टर, जोधपुर ने तहसीलदार (भूमि अभिलेख), बिलारा को यह निर्देश दिया कि वह राजस्व ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और जनसंख्या के संबंध में आवश्यक परिवर्तन करे । तद्नुसार, तहसीलदार (राजस्व अभिलेख), बिलारा ने ग्राम जयरूप नगर की भौगोलिक सीमाओं में और जनसंख्या में परिवर्तन करते हुए तारीख 14 सितम्बर, 2012 का आदेश जारी किया और ग्राम बेनन में उसे सम्मिलित करते हुए, जिसमें से नए ग्राम राजस्व को सृजित किया । अतएव, यह रिट याचिका फाइल की गई । न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – निर्विवाद तौर पर अधिनियम, 1956 की धारा 16 राज्य सरकार को मौजूदा खंडों, जिलों, उप-जिलों, तहसीलों, उप-तहसीलों और गांवों को नए रूप में सृजित करने या नष्ट करने या उनमें से किसी की सीमाओं में परिवर्तन करने की सम्पूर्ण शक्ति प्रदत्त करती है । जैसा कि इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा मत व्यक्त किया गया है कि नए ग्राम को सृजित करने से संबंधित मामले पर इस न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता है किन्तु उसके बाद यह कथन किए बिना कि नए ग्राम को सृजित करने या उसकी सीमाओं में परिवर्तन करने का विनिश्चय लेते समय राज्य सरकार विहित प्रक्रिया का पालन करने के लिए आबद्ध है और नए ग्राम के सृजन करने में या उसकी सीमाओं में परिवर्तन करने के परिणामस्वरूप उस क्षेत्र के प्रभावित निवासियों के सभी सुसंगत पहलुओं पर विचार करने के लिए आबद्ध है । सुस्पष्टतः, नए ग्राम के सृजन के लिए अधिकथित प्रक्रिया का किसी भी तरीके से उपेक्षा नहीं की जा सकती है उस समय जबकि उसकी सीमाओं/चारदीवारियों में परिवर्तन करने का विनिश्चय लिया जाता है । राजस्व ग्राम के निवासियों को आवश्यक

सुविधाओं की उपलब्धता भी राज्य सरकार द्वारा नए राजस्व ग्राम सृजित करते समय या उसकी सीमाओं में परिवर्तन करते समय, विचार में लिया जाना भी सुसंगत मुद्दा है । इस न्यायालय के समक्ष यह विवादित नहीं है कि नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर का सृजन राज्य सरकार द्वारा जारी तारीख 19 मार्च, 2007 के परिपत्र द्वारा नए ग्राम के सृजन के लिए अधिकथित मानकों के बारे में समाधान होने के पश्चात् किया गया था । अधिकथित मानकों के अनुसार, साधारण क्षेत्र में सृजित करने के लिए ग्राम की न्यूनतम जनसंख्या कम-से-कम 250 होनी चाहिए । यह भी विवादित नहीं है कि राज्य सरकार द्वारा नए राजस्व ग्राम का सृजन अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् ही किया गया है । राज्य सरकार द्वारा ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और चारदीवारियों में परिवर्तन करने का विनिश्चय लेते समय अपनाई गई प्रक्रियाओं का परिशीलन करने से यह प्रकट होता है कि ग्राम मगरान की धानी (पूर्व) के गांव वालों, निवासियों द्वारा एक अभ्यावेदन राजस्व मंत्री, राजस्थान सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और उसके उपरान्त तारीख 11 मई, 2011 के आदेश द्वारा राजस्व मंत्री ने राजस्व बोर्ड के माध्यम से कलक्टर से रिपोर्ट मंगवायी थी । पूर्वोक्त जारी निर्देशों के अनुसरण में, सम्यक् जांच के पश्चात् जिला कलक्टर, जोधपुर ने राजस्व मंत्री को सही तथ्यात्मक प्रास्थिति के बारे में अवगत कराया था । जिला कलक्टर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर सम्यक् विचार करने के पश्चात्, नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर से क्षेत्र का अपवर्जन करने और उसे राजस्व ग्राम बेनन में सम्मिलित करने के बारे में कुछ भिन्नता पाई गई थी । इसके पश्चात्, राजस्व मंत्री ने यह निर्देश दिया कि संबंधित तहसीलदार को आबादी भूमि के नक्शों के साथ और ग्रामों के कुटुम्बों और जनसंख्या के विस्तार के बारे में चर्चा के लिए बुलाया जाए । तहसीलदार की रिपोर्ट प्रस्तुत करने और चर्चा करने के पश्चात् भिन्नताएं उल्लिखित की गई थीं । इसके पश्चात्, तारीख 5 जून, 2012 को मुख्यमंत्री कार्यालय से संबद्ध विशेष ड्यूटी पर तैनात अधिकारी ने भी यह राय व्यक्त की कि यदि नए सृजित ग्राम जयरूप नगर के भाग को पुनः ग्राम बेनन में सम्मिलित कर दिया जाता है तो राजस्व ग्राम जयरूप नगर, ग्राम सृजित करने के लिए अधिकथित मानकों को पूरा नहीं करेगा और उसके निवासी उपलब्ध आवश्यक सुविधाओं जैसे स्कूल, दाह-संस्कार भूमि आदि से वंचित हो जाएंगे । विभिन्न स्तरों पर पूर्वोक्त रूप में अभिव्यक्त राय के पश्चात्,

राजस्व मंत्री ने इस बारे में सूचना ईप्सित की कि क्या ग्राम जयरूप नगर मरुस्थल भूमि के भीतर आता है या नहीं । उसके उपरान्त, राजस्व मंत्री के समक्ष एक नोट यह प्रस्तुत किया गया कि राजस्व ग्राम जयरूप नगर मरुस्थल या अर्ध-मरुस्थल जोन क्षेत्र के भीतर नहीं आता है । आश्चर्यजनक रूप से पूर्वोक्त रूप में विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त राय की अवहेलना करते हुए, विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त राय से असहमति के लिए कोई कारण अभिलिखित किए बिना और नए राजस्व ग्राम के सृजन के लिए अधिकथित मानकों का व्यतिक्रम करते हुए, राजस्व मंत्री ने सीधे ही एक लाइन आदेश में गांव वालों की मांग पर अभिकथित तौर पर राजस्व ग्राम की सीमाओं में संशोधन करने का निर्देश दिया । राजस्व मंत्री द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में, नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और चारदीवारियों को परिवर्तित करने के लिए आक्षेपित अधिसूचना जारी की गई थी । (पैरा 10, 11, 12, 13, 14, 15 और 16)

राज्य सरकार द्वारा आक्षेपित अधिसूचना जारी करते समय उपर्युक्त रूप में उल्लिखित अपनाई गई प्रक्रियाओं का परिशीलन करने पर, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि राज्य सरकार द्वारा राजस्व ग्राम की सीमाओं और चारदीवारियों में परिवर्तन करने का विनिश्चय प्रथमदृष्ट्या अवैध और मनमाना है । यह सत्य है कि राज्य सरकार को नए ग्राम सृजित करने और उसकी सीमाओं और चारदीवारियों को परिवर्तित करने की संपूर्ण शक्ति है किन्तु उसके बाद भी राज्य सरकार को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग सभी अपेक्षाओं पर विचार करते हुए और उस क्षेत्र के निवासियों के बृहत्तर हित को ध्यान में रखते हुए न्यायसंगत और उचित तरीके से करना होता है । राज्य सरकार द्वारा कुछ गांव वालों की मांग को मानते हुए, सीमाओं को परिवर्तित करने के विरुद्ध विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त राय की अवहेलना करते हुए की गई कार्रवाई का, इस न्यायालय द्वारा अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता है । राजस्व मंत्री द्वारा राजस्व ग्राम की सीमाओं में परिवर्तन करने का निर्देश उस तरीके में, जिसमें आदेश पारित किया गया है, से यह प्रकट होता है कि यथाप्रस्थापित राजस्व ग्राम की सीमाओं में परिवर्तन करने के पूर्ववर्ती निष्कर्ष के साथ कार्यवाहियां आरम्भ की गई थीं । अभिलेख पर की सामग्रियों से यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि राजस्व ग्राम, जयरूप नगर की सीमाओं में परिवर्तन, राज्य सरकार द्वारा नए ग्राम सृजित करने के लिए अधिकथित मानकों के अतिक्रमण में किया गया है, तथापि, अधिकथित मानकों की अवहेलना में सीमाओं में परिवर्तन करने का

निर्देश देते समय कोई कारण अभिलिखित नहीं किए गए हैं और इस प्रकार, विनिश्चय में विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है और राज्य सरकार के उद्देश्य प्राप्ति की प्रक्रिया में, विनिश्चय लेते समय अपेक्षित पारदर्शिता का अभाव है । उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि राज्य सरकार द्वारा मौजूद ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं में परिवर्तन करने और उसके क्षेत्र के एक भाग को ग्राम बेनन में सम्मिलित करने के लिए जारी आक्षेपित अधिसूचना विधि की दृष्टि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है । (पैरा 17 और 18)

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2012 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 10843.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री राजेश जोशी

राज्य की ओर से डा. पी. एस. भाटी, अपर महाधिवक्ता (जिनकी सहायता मोहनीत भटनागर ने की)

न्यायमूर्ति संगीत लोढ़ा – यह रिट याचिका, राजस्व विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा जारी तारीख 27 जुलाई, 2012 की अधिसूचना के विरुद्ध निदेशित है, जिसके द्वारा तारीख 15 अप्रैल, 2008 की अधिसूचना को भागतः अधिक्रांत करते हुए, एक नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर का सृजन किया गया जिसकी सीमाएं और चारदीवारियां परिवर्तित की गईं । याचियों ने अपर कलक्टर, जोधपुर द्वारा जारी तारीख 13 सितम्बर, 2012 के आदेश और तहसीलदार, बिलारा द्वारा जारी तारीख 14 सितम्बर, 2012 के आदेश, जो पूर्वोक्त रूप में जारी संशोधित अधिसूचना को लागू करने के लिए किया गया था, को भी प्रश्नगत किया है ।

2. सुसंगत तथ्य यह हैं कि राजस्थान भूमि राजस्व अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 16 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने तारीख 15 अप्रैल, 2008 की अधिसूचना द्वारा तहसील-बिलारा, जिला-जोधपुर में एक नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर को सृजित किया । जारी अधिसूचना में ग्राम की जनसंख्या 330 व्यक्तियों की दर्शित की गई थी और ग्राम का क्षेत्र 348.2 हेक्टेयर विनिर्दिष्ट की गई थी । नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर के सृजन के लिए राज्य सरकार की प्रस्थापना की वैधता और सांपत्तिक को

कुछ गांव वालों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका सं. 7217/07 के माध्यम से प्रश्नगत किया गया जिसे इसमें के याचियों की इस स्वतंत्रता के साथ वापस लिए जाने के रूप में खारिज कर दी गई कि वे उप-सचिव, राजस्व विभाग, राजस्थान सरकार के समक्ष अभ्यावेदन करें । तारीख 15 अप्रैल, 2008 की अधिसूचना द्वारा ग्राम का सृजन होने के पश्चात् कुछ गांव वालों ने एक नई रिट याचिका फाइल की जिसे भी इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ ने तारीख 12 मई, 2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दी थी । इससे व्यथित होकर इसमें के रिट याचियों ने इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ के समक्ष एक विशेष अपील फाइल की जिसे भी निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों के साथ तारीख 25 नवम्बर, 2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी :–

> "अभिलेख पर यह आया है कि नए सृजित ग्राम जयरूप नगर की जनसंख्या 330 व्यक्तियों से अधिक है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि राज्य सरकार द्वारा न्यूनतम जनसंख्या के बारे में अधिकथित मार्गदर्शनों का अतिक्रमण हुआ है । इसके अलावा, क्योंकि साधारणतया ग्राम को जयरूप नगर के रूप में नामित किया गया है, इसलिए, यह उपधारणा नहीं की जा सकती है कि इसे किसी विशिष्ट व्यक्ति के नाम में नामित किया गया है । इसके अतिरिक्त, राजस्व ग्राम के सृजन और इसके नाम के बारे में सभी प्रश्नों का इस न्यायालय द्वारा परिशीलन नहीं किया जा सकता है । यदि रिट याचिका में ग्राम के सृजन के बारे में कोई शिकायत है या यदि इसे सृजित करने में राज्य सरकार द्वारा जारी मार्गदर्शनों में कोई कमी है तो उसे यह स्वतंत्रता है कि वह समुचित प्राधिकारी के समक्ष समुचित अभ्यावेदन कर सकता है ।"

3. इसके पश्चात्, कुछ गांव वालों द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर मामले की जांच तहसीलदार-I, बिलारा की अध्यक्षता में एक टीम द्वारा की गई और उनके द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर उप-खंड अधिकारी (एस. डी. ओ.), पीपर शहर, ने तारीख 30 जून, 2011 की संसूचना द्वारा जिला कलक्टर, जोधपुर के समक्ष तथ्यात्मक प्रास्थिति को स्पष्टीकृत किया और यह राय व्यक्त की कि नए सृजित ग्राम की सीमाओं और चारदीवारियों का संशोधन व्यवहार्य नहीं है और प्राधिकृत है । याचियों के अनुसार, सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की अवहेलना करते हुए, राज्य सरकार ने नए सृजित राजस्व ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और चारदीवारियों में

परिवर्तन करते हुए तारीख 27 जुलाई, 2012 की आक्षेपित अधिसूचना जारी की । तारीख 13 सितम्बर, 2012 के आदेश द्वारा पूर्वोक्त रूप में जारी अधिसूचना के अनुपालन में, अपर जिला कलक्टर, जोधपुर ने तहसीलदार (भूमि अभिलेख), बिलारा को यह निर्देश दिया कि वह राजस्व ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और जनसंख्या के संबंध में आवश्यक परिवर्तन करे । तद्नुसार, तहसीलदार (राजस्व अभिलेख), बिलारा ने ग्राम जयरूप नगर की भौगोलिक सीमाओं में और जनसंख्या में परिवर्तन करते हुए तारीख 14 सितम्बर, 2012 का आदेश जारी किया और ग्राम बेनन में उसे सम्मिलित करते हुए, जिसमें से नए ग्राम राजस्व को सृजित किया । अतएव, यह रिट याचिका फाइल की गई ।

4. प्रत्यर्थियों की ओर से रिट याचिका में फाइल उत्तर में यह आधार लिया गया है कि ग्राम मगरान की धानी (पूर्व) के निवासी नए सृजित राजस्व ग्राम जयरूप नगर में सम्मिलित होने के पक्ष में नहीं थे और इसलिए, मौजूदा परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात्, एक नई जांच रिपोर्ट अर्थात् एस. डी. ओ., पीपर शहर द्वारा तारीख 30 जून, 2011 को प्रस्तुत की गई थी । यह निवेदन किया गया है कि सम्पूर्ण परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् ग्राम जयरूप नगर के कुछ क्षेत्र को अपवर्जित कर दिया गया था और ग्राम बेनन में पुनः स्थापित कर दिया गया । यह निवेदन किया गया है कि याची, जो नए सृजित ग्राम के निवासी हैं, कोई शिकायत उद्भूत नहीं कर सकते हैं क्योंकि उसमें आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराई गई हैं । यह निवेदन किया गया है कि अधिनियम, 1956 की धारा 16 के अधीन राज्य सरकार ग्रामों की सीमाओं के सृजन, नष्ट या परिवर्तन करने के लिए सशक्त है और इसलिए अधिसूचना, विधि के अनुसरण में जारी की गई है ।

5. प्रत्युत्तर के माध्यम से, याचियों ने पूर्वोक्त जारी संशोधित अधिसूचना को रद्द करने के लिए सिफारिश करते हुए, ग्राम पंचायत, चौढ़ा के संकल्प (उपाबंध 15) को अभिलेख पर रखा है ।

6. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि नए राजस्व ग्राम को विधि की सम्यक् प्रक्रिया का पालन करते हुए सृजित किया गया है इसलिए प्रत्यर्थियों को नए ग्राम को द्विशाखित करने और उसकी सीमाओं और चारदीवारियों को कम करने के लिए कोई कारण नहीं था । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि सभी सुविधाएं अर्थात् शासकीय स्कूल, दाह-संस्कार स्थल और ग्राम जयरूप नगर के आबादी क्षेत्र से सड़क पर

जाने आदि उन्हीं क्षेत्र में स्थित है जिन्हें अपवर्जित करने की ईप्सा की गई थी । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि नए राजस्व ग्राम को ग्राम सभा द्वारा पारित संकल्प और तहसीलदार, एस. डी. ओ., जिला कलक्टर और राजस्व बोर्ड की सिफारिशों के अनुसरण में सृजित किया गया है, तथापि, आक्षेपित अधिसूचना द्वारा नए सृजित ग्राम की सीमाओं और चारदीवारियों में परिवर्तन करते समय अपेक्षित प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि राज्य सरकार द्वारा नए ग्राम के सृजन के लिए अधिकथित मानकों के अनुसार, ग्राम की न्यूनतम जनसंख्या कम-से-कम 250 होनी चाहिए, तथापि, नए राजस्व ग्राम की सीमाओं और चारदीवारियों को परिवर्तित करते हुए ग्राम की जनसंख्या 330 से 204 तक घटाई जा सकती है । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि राज्य सरकार द्वारा सक्षम प्राधिकारियों द्वारा स्पष्टीकृत तथ्यात्मक प्रास्थिति की अवहेलना करते हुए और अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना लिया गया विनिश्चय प्रत्यक्षतः अवैध और मनमाना है । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि ग्राम की सीमाओं और चारदीवारियों के परिवर्तन के कारण ग्रामवासी सभी आधारभूत सुविधाओं से वंचित हो गए हैं और इसलिए प्रत्यर्थियों द्वारा विवेक लागू किए बिना जारी आक्षेपित अधिसूचना की कार्रवाई को कायम नहीं रखा जा सकता है ।

7. दूसरी ओर, विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि राज्य सरकार को राजस्व ग्रामों के क्षेत्रों में परिवर्तन करने की सम्पूर्ण शक्ति है और इसलिए, ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और चारदीवारियों में परिवर्तन करने के लिए राज्य सरकार का विनिश्चय और इसे मौजूद ग्राम बेनन के विनिर्दिष्ट क्षेत्र में सम्मिलित करने के निदेश को किसी भी प्रकार से गलत नहीं कहा जा सकता है । विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि विनिर्दिष्ट क्षेत्र के अपवर्जन के कारण ग्राम जयरूप नगर के निवासी किसी भी तरीके से प्रतिकूल रूप में प्रभावित नहीं होते हैं । यह निवेदन किया गया है कि मगरान की धानी के ग्रामवासियों ने नए राजस्व ग्राम में अपने क्षेत्र को सम्मिलित करने के बारे में शिकायतें की हैं और इसलिए, सभी परिस्थितियों पर विचार करते हुए, राज्य सरकार के विनिश्चय में संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

8. तर्कों के अनुक्रम के दौरान, न्यायालय के परिशीलन के लिए, तारीख 7 फरवरी, 2014 को विद्वान् अपर महाधिवक्ता को यह निर्देश दिया गया कि वे तारीख 27 जुलाई, 2012 की अधिसूचना जारी करने, तारीख 15 अप्रैल, 2008 की अधिसूचना में संशोधन करने, नए ग्राम जयरूप नगर को सृजित करने में राज्य सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं को अभिलेख पर प्रस्तुत करें । जारी निर्देशों के अनुसरण में, विद्वान् अपर महाधिवक्ता द्वारा न्यायालय के परिशीलन के लिए आक्षेपित अधिसूचना जारी करने में राज्य सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं के मूल अभिलेख प्रस्तुत किए गए और फोटोस्टेट प्रतिलिपि भी अभिलेख पर प्रस्तुत की गई ।

9. मैंने, परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया और अभिलेख पर की सामग्रियों का भी परिशीलन किया ।

10. निर्विवाद तौर पर अधिनियम, 1956 की धारा 16 राज्य सरकार को मौजूदा खंडों, जिलों, उप-जिलों, तहसीलों, उप-तहसीलों और गांवों को नए रूप में सृजित करने या नष्ट करने या उनमें से किसी की सीमाओं में परिवर्तन करने की सम्पूर्ण शक्ति प्रदत्त करती है । जैसा कि इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा मत व्यक्त किया गया है कि नए ग्राम को सृजित करने से संबंधित मामले पर इस न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता है किन्तु उसके बाद यह कथन किए बिना कि नए ग्राम को सृजित करने या उसकी सीमाओं में परिवर्तन करने का विनिश्चय लेते समय राज्य सरकार विहित प्रक्रिया का पालन करने के लिए आबद्ध है और नए ग्राम के सृजन करने में या उसकी सीमाओं में परिवर्तन करने के परिणामस्वरूप उस क्षेत्र के प्रभावित निवासियों के सभी सुसंगत पहलुओं पर विचार करने के लिए आबद्ध है । सुस्पष्टतः, नए ग्राम के सृजन के लिए अधिकथित प्रक्रिया का किसी भी तरीके से उपेक्षा नहीं की जा सकती है उस समय जबकि उसकी सीमाओं/चारदीवारियों में परिवर्तन करने का विनिश्चय लिया जाता है । राजस्व ग्राम के निवासियों को आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धता भी राज्य सरकार द्वारा नए राजस्व ग्राम सृजित करते समय या उसकी सीमाओं में परिवर्तन करते समय, विचार में लिया जाना भी सुसंगत मुद्दा है ।

11. इस न्यायालय के समक्ष यह विवादित नहीं है कि नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर का सृजन राज्य सरकार द्वारा जारी तारीख 19 मार्च, 2007 के परिपत्र द्वारा नए ग्राम के सृजन के लिए अधिकथित मानकों के बारे में समाधान होने के पश्चात् किया गया था । अधिकथित मानकों के अनुसार, साधारण क्षेत्र में सृजित करने के लिए ग्राम की न्यूनतम जनसंख्या

कम-से-कम 250 होनी चाहिए । यह भी विवादित नहीं है कि राज्य सरकार द्वारा नए राजस्व ग्राम का सृजन अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् ही किया गया है ।

12. राज्य सरकार द्वारा ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और चारदीवारियों में परिवर्तन करने का विनिश्चय लेते समय अपनाई गई प्रक्रियाओं का परिशीलन करने से यह प्रकट होता है कि ग्राम मगरान की धानी (पूर्व) के गांव वालों, निवासियों द्वारा एक अभ्यावेदन राजस्व मंत्री, राजस्थान सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और उसके उपरान्त तारीख 11 मई, 2011 के आदेश द्वारा राजस्व मंत्री ने राजस्व बोर्ड के माध्यम से कलक्टर से रिपोर्ट मंगवाई थी । पूर्वोक्त जारी निर्देशों के अनुसरण में, सम्यक् जांच के पश्चात् जिला कलक्टर, जोधपुर ने राजस्व मंत्री को सही तथ्यात्मक प्रास्थिति के बारे में अवगत कराया था । जिला कलक्टर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर सम्यक् विचार करने के पश्चात्, नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर से क्षेत्र का अपवर्जन करने और उसे राजस्व ग्राम बेनन में सम्मिलित करने के बारे में कुछ भिन्नता पाई गई थी, जो निम्नलिखित थीं :–

> "1. ग्राम जयरूप नगर में फिर कोई विद्यालय नहीं रहता ।
>
> 2. उपरोक्त मांग से सभी ग्रामवासियान सहमत नहीं थे । अतः तनाव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है ।
>
> 3. उक्त मांग मानने पर नवीन गांव जयरूप नगर में कोई शमशान हेतु भूमि नहीं रहती है ।
>
> 4. उक्त मांग मानने पर ग्राम जयरूप नगर में आबादी को जोड़ने के लिए कोई कटानी रास्ता नहीं रहेगा ।
>
> 5. भौगोलिक दृष्टि से भी नवीन प्रस्तावित सुझाव उचित नहीं पाया गया ।
>
> 6. तकनीकी रूप से भी उक्त सुझाव इसलिए मानना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि सुझाव को मानने पर जयरूप नगर की आबादी मात्र 204 रह जाएगी जबकि नीति अनुसार आबादी कम से कम 250 होनी चाहिए ।"

13. इसके पश्चात्, राजस्व मंत्री ने यह निर्देश दिया कि संबंधित तहसीलदार को आबादी भूमि के नक्शों के साथ और ग्रामों के कुटुम्बों और

जनसंख्या के विस्तार के बारे में चर्चा के लिए बुलाया जाए । तहसीलदार की रिपोर्ट प्रस्तुत करने और चर्चा करने के पश्चात् निम्नलिखित भिन्नताएं उल्लिखित की गईं थीं :–

"उक्त प्रकरण में पूर्व में भी पृष्ठ संख्या 16 से 19 तक उप-निबन्धक, राजस्व मंडल, राजस्थान अजमेर किला कलक्टर, जोधपुर एवं उप-खंड अधिकारी, पीपर शहर से पत्र प्राप्त हुए हैं । जिसमें परीक्षण कर निम्न विसंगति उत्पन्न होने की स्थिति दर्शायी है –

(1) ग्राम जयरूप नगर में फिर कोई विद्यालय नहीं रहता ।

(2) उपरोक्त मांगों से सभी ग्रामवासी सहमत नहीं थे । अतः तनाव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है ।

(3) उक्त मांग मानने पर नवीन गांव जयरूप नगर में कोइ शमशान हेतु भूमि नहीं रहती है ।

(4) उक्त मांग मानने पर ग्राम जयरूप नगर में आबादी को जोड़ने के लिए कोई कटानी रास्ता नहीं रहेगा ।

(5) भौतिक दृष्टि से भी नवीन प्रस्तावित सुझाव उचित नहीं पाया गया ।

(6) तकनीकी रूप से भी उक्त सुझाव इसलिए मानना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि सुझाव को मानने पर जयरूप नगर की आबादी मात्र 204 रह जाएगी जबकि राज्य सरकार के आदेश दिनांक 20-8-2009 के अनुसार किसी गांव की आबादी 250 होनी चाहिए ।"

14. इसके पश्चात्, तारीख 5 जून, 2012 को मुख्यमंत्री कार्यालय से संबद्ध विशेष ड्यूटी पर तैनात अधिकारी ने भी यह राय व्यक्त की कि यदि नए सृजित ग्राम जयरूप नगर के भाग को पुनः ग्राम बेनन में सम्मिलित कर दिया जाता है तो राजस्व ग्राम जयरूप नगर, ग्राम सृजित करने के लिए अधिकथित मानकों को पूरा नहीं करेगा और उसके निवासी उपलब्ध आवश्यक सुविधाओं जैसे स्कूल, दाह-संस्कार भूमि आदि से वंचित हो जाएंगे ।

15. विभिन्न स्तरों पर पूर्वोक्त रूप में अभिव्यक्त राय के पश्चात्,

राजस्व मंत्री ने इस बारे में सूचना ईप्सित की कि क्या ग्राम जयरूप नगर मरुस्थल भूमि के भीतर आता है या नहीं । उसके उपरान्त, राजस्व मंत्री के समक्ष एक नोट यह प्रस्तुत किया गया कि राजस्व ग्राम जयरूप नगर मरुस्थल या अर्ध-मरुस्थल जोन क्षेत्र के भीतर नहीं आता है । आश्चर्यजनक रूप से पूर्वोक्त रूप में विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त राय की अवहेलना करते हुए, विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त राय से असहमति के लिए कोई कारण अभिलिखित किए बिना और नए राजस्व ग्राम के सृजन के लिए अधिकथित मानकों का व्यतिक्रम करते हुए, राजस्व मंत्री ने सीधे ही एक लाइन आदेश में गांव वालों की मांग पर अभिकथित तौर पर राजस्व ग्राम की सीमाओं में संशोधन करने का निर्देश दिया, जो इस प्रकार है :–

> "पृष्ठ 25/सी पर तहसीलदार की रिपोर्ट एवं संलग्न नक्शा पृष्ठ 26/सी के अनुसार ग्रामीणों की मांग पर संशोधन की स्वीकृति प्रदान की जाती है । आदेश जारी करें ।"

16. राजस्व मंत्री द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में, नए राजस्व ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं और चारदीवारियों को परिवर्तित करने के लिए आक्षेपित अधिसूचना जारी की गई थी ।

17. राज्य सरकार द्वारा आक्षेपित अधिसूचना जारी करते समय उपर्युक्त रूप में उल्लिखित अपनाई गई प्रक्रियाओं का परिशीलन करने पर, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि राज्य सरकार द्वारा राजस्व ग्राम की सीमाओं और चारदीवारियों में परिवर्तन करने का विनिश्चय प्रथमदृष्ट्या अवैध और मनमाना है । यह सत्य है कि राज्य सरकार को नए ग्राम सृजित करने और उसकी सीमाओं और चारदीवारियों को परिवर्तित करने की संपूर्ण शक्ति है किन्तु उसके बाद भी राज्य सरकार को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग सभी अपेक्षाओं पर विचार करते हुए और उस क्षेत्र के निवासियों के बृहत्तर हित को ध्यान में रखते हुए न्यायसंगत और उचित तरीके से करना होता है । राज्य सरकार द्वारा कुछ गांव वालों की मांग को मानते हुए, सीमाओं को परिवर्तित करने के विरुद्ध विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त राय की अवहेलना करते हुए की गई कार्रवाई का, इस न्यायालय द्वारा अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता है । राजस्व मंत्री द्वारा राजस्व ग्राम की सीमाओं में परिवर्तन करने का निर्देश उस तरीके में, जिसमें आदेश पारित किया गया है, से यह प्रकट होता है कि यथाप्रस्थापित राजस्व ग्राम की सीमाओं में परिवर्तन करने के पूर्ववर्ती निष्कर्ष के साथ

कार्यवाहियां आरम्भ की गईं थीं । अभिलेख पर की सामग्रियों से यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि राजस्व ग्राम, जयरूप नगर की सीमाओं में परिवर्तन, राज्य सरकार द्वारा नए ग्राम सृजित करने के लिए अधिकथित मानकों के अतिक्रमण में किया गया है, तथापि, अधिकथित मानकों की अवहेलना में सीमाओं में परिवर्तन करने का निर्देश देते समय कोई कारण अभिलिखित नहीं किए गए हैं और इस प्रकार, विनिश्चय में विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है और राज्य सरकार के उद्देश्य प्राप्ति की प्रक्रिया में, विनिश्चय लेते समय अपेक्षित पारदर्शिता का अभाव है ।

18. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि राज्य सरकार द्वारा मौजूद ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं में परिवर्तन करने और उसके क्षेत्र के एक भाग को ग्राम बेनन में सम्मिलित करने के लिए जारी आक्षेपित अधिसूचना विधि की दृष्टि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

19. परिणामतः, रिट याचिका सफल होती है, तद्द्वारा इसे मंजूर किया जाता है । तद्द्वारा, राज्य सरकार द्वारा जारी तारीख 27 जुलाई, 2012 की आक्षेपित अधिसूचना, अपर जिला कलक्टर, जोधपुर द्वारा जारी तारीख 13 सितम्बर, 2012 के आदेश और तहसीलदार, जोधपुर द्वारा जारी तारीख 14 सितम्बर, 2012 के आदेश अभिखंडित किए जाते हैं । तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि आवश्यक हो तो उस क्षेत्र के निवासियों के बृहत्तर हित में, राज्य सरकार विधि के अनुसरण में, अधिकथित प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात् ग्राम जयरूप नगर की सीमाओं में परिवर्तन करने के बारे में नया विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र होगा । खर्चे का कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

क.

महेन्द्र कुमार कुलदीप

बनाम

राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम

तारीख 5 अगस्त, 2014

न्यायमूर्ति मोहम्मद रफ़ीक

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित आर. एस. आर. टी. सी. के मृतक कर्मचारियों के आश्रितों की अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति विनियम, 2010 का विनियम 5 और विनियम 6] – अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति – तत्समय प्रवृत्त नियमों के अनुसार आवेदन किया जाना – संशोधित नियमों के आधार पर नियुक्ति हेतु आवेदन रद्द करना – नियमों में पुनः संशोधन करना – अर्हता में परिवर्तन के कारण आवेदन पुनः रद्द करना – चुनौती – यदि तत्समय प्रवृत्त नियमों के अधीन अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति हेतु कोई आवेदन स्वीकार किया जाता है और विचारार्थ लंबित रखा जाता है और तत्पश्चात् यदि प्रवृत्त नियमों में संशोधन करके उक्त आवेदन को रद्द कर दिया जाता है तो यह मनमाना, अविधिमान्य तथा विभेदकारी माना जाएगा ।

वर्तमान मामले में, याची के पिता की मृत्यु आर. एस. आर. टी. सी. प्रत्यर्थी में कार्यरत होने के दौरान हुई थी । याची के ज्येष्ठ पुत्र ने तत्समय आर. एस. टी. सी. के मृतक कर्मचारियों के आश्रितों की अनुकम्पा के आधार पर सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया । उसके आवेदन के लंबित रहने के दौरान उक्त विनियम 5 में संशोधन करके सहायक यातायात निरीक्षक के पद को विनियम 5 के विस्तार क्षेत्र से हटा दिया गया था । याची को चालक, कंडक्टर ; आर्टीज़न ग्रेड-III के पद का प्रस्ताव किया गया, किंतु अपेक्षित चालक अनुज्ञप्ति/अर्हता न होने के कारण नियुक्ति के आवेदन को रद्द कर दिया गया । उसके कुछ समय पश्चात् पुनः उक्त विनियम 5 का संशोधन करके सहायक यातायात निरीक्षक के पद को उसमें सम्मिलित किया गया, किंतु उस पद के लिए अर्हता को, जो पूर्व में केवल स्नातक की डिग्री थी,

परिवर्तित करके एम. बी. ए. या बी. बी. ए. या पी. जी. डी. एम. कर दिया गया । याची के पास पूर्वोक्त में से कोई अर्हता न होने के कारण पुनः उसे नियुक्ति देने से इनकार कर दिया गया । इससे व्यथित होकर, याची ने उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की । न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दो अविवादित तथ्य यह हैं कि याची के पिता की मृत्यु के समय और याची द्वारा अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति हेतु आवेदन प्रस्तुत किए जाने के समय पर सहायक यातायात निरीक्षक का पद, 2010 के विनियमों में सम्मिलित था । अब पुनः सहायक यातायात निरीक्षक के पद को सम्मिलित कर लिया गया है जबकि इस रिट याचिका का विनिश्चय किया जाना है । प्रत्यर्थियों ने याची के इस प्राख्यान से इनकार नहीं किया है कि उमेश नागर को, जिसके पिता की मृत्यु तारीख 9 अक्तूबर, 2010 को हुई थी, तारीख 2 दिसंबर, 2011 के आदेश द्वारा सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था । याची के पिता की मृत्यु, उमेश नागर के पिता की मृत्यु से मात्र एक मास पश्चात् तारीख 12 दिसंबर, 2010 को हुई थी । यद्यपि, सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए याची के आवेदन को लंबित रखा गया था और नियमों में परिवर्तन हुआ तो तारीख 24 अप्रैल, 2012 की संसूचना द्वारा उसके आवेदन को नामंजूर कर दिया गया । उसके आवेदन को, तारीख 18 जनवरी, 2012 को निगम के बोर्ड द्वारा किए गए विनिश्चय सं. 13/2012 के आधार पर पारित तारीख 30 जनवरी, 2012 के आदेश का अवलंब लेते हुए नामंजूर किया गया है, जिसके द्वारा अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए पूर्व में प्रस्थापित सात पदों को घटा कर केवल चार कर दिया गया था और सहायक यातायात निरीक्षक के पद को उसमें से हटा दिया गया था । स्पष्टतया, याची के आवेदन को इसलिए नामंजूर किया गया था क्योंकि वह चालक और कंडक्टर के पद के लिए अपेक्षित अनुज्ञप्ति प्रस्तुत करने में असफल रहा था । याची को आर्टीज़न ग्रेड-III के पद पर भी नियुक्त नहीं किया जा सका था क्योंकि उसके पास आई. टी. आई. डिप्लोमा की अर्हता नहीं थी । संभवतः, प्रत्यर्थी इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकते कि अब बोर्ड के निगम के तारीख 30 जुलाई, 2013 के विनिश्चय सं. 55/13 के अनुसरण में सहायक यातायात

निरीक्षक के पद को पुनः 2010 के विनियमों के विनियम 5 में सम्मिलित कर लिया गया है और अब वह निगम बोर्ड के तारीख 30 जुलाई, 2013 के विनिश्चय सं. 55/13 के अनुसरण में अनुकम्पा के आधार नियुक्ति के लिए उपलब्ध है । किंतु इस समय, सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता अर्हता को, जो पूर्व में केवल साधारण स्नातक थी, अब परिवर्तित करके एम. बी. ए., बी. बी. ए., पी. जी. डी. एम. कर दिया गया है । न्यायालय को याची की यह दलील स्वीकार्य नहीं है कि प्रत्यर्थियों ने पक्षपात करते हुए उमेश नागर के अनुरोध को केवल इसलिए स्वीकार किया था और उसे सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति प्रदान की थी क्योंकि वह उच्च जाति का है और याची को इस कारण से नियुक्त करने से इनकार कर दिया था क्योंकि वह अनुसूचित जाति का है । किंतु फिर भी प्रत्यर्थियों द्वारा उसके प्रति किया गया भेदभाव उनके आचार से स्पष्ट है । उमेश नागर के पिता की मृत्यु तारीख 9 अक्तूबर, 2010 को हुई और उसे तारीख 2 दिसंबर, 2011 को नियुक्त किया गया था । और याची के पिता की मृत्यु उसके मात्र एक मास पश्चात् तारीख 22 नवंबर, 2010 को हुई थी । याची ने अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन तारीख 13 दिसंबर, 2011 को अर्थात् उमेश नागर की नियुक्ति से मात्र 10 दिन पश्चात् किया था । प्रत्यर्थियों के पास उस समय लागू नियमों के अधीन याची के आवेदन पर कार्यवाही न करने का कोई उचित कारण नहीं था । याची के आवेदन को निगम के बोर्ड के तारीख 18 जनवरी, 2012 के निर्णय का अवलंब लेते हुए नामंजूर किया गया है । याची द्वारा आवेदन प्रस्तुत करने के समय लागू नियमों के अनुसार कार्यवाही की जानी चाहिए थी और अब जब पुनः सहायक यातायात निरीक्षक के पद को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए सम्मिलित कर लिया गया है तो प्रत्यर्थियों को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे याची के मामले पर, उसके द्वारा मूल रूप से आवेदन प्रस्तुत किए जाने के समय धारित अर्हता के आधार पर विचार करने से इनकार करें । मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, याची के मामले में याची द्वारा आवेदन प्रस्तुत करने के समय लागू अर्हता ही लागू होगी । तथापि, किसी अन्य ऐसे अभ्यर्थी की दशा में, जिसने तारीख 6 अगस्त, 2013 के पश्चात् जब सहायक यातायात निरीक्षक के पद को पुनः 2010 के विनियमों के विनियम 5 में सम्मिलित किया गया था, अनुकम्पा के

आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया है, प्रत्यर्थियों द्वारा विहित नई अर्हता, अर्थात् एम. बी. ए., बी. बी. ए., पी. जी. डी. एम. लागू होगी । अतः, प्रत्यर्थियों की कार्रवाई अविधिमान्य, मनमाना, विभेदकारी घोषित की जाती है और यह भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करता है । (पैरा 8)

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 2013 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 11739.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री महेन्द्र कुमार कुलदीप

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एच. आर. ढाका, कनिष्ठ विधि अधिकारी

न्यायमूर्ति मोहम्मद रफ़ीक – यह रिट याचिका, याची महेन्द्र कुमार कुलदीप द्वारा फाइल की गई है, जिसमें उसने प्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2012 को जारी संसूचना को चुनौती दी है और प्रत्यर्थियों को यह निदेश देने का अनुरोध किया है कि वे उसे अनुकम्पा के आधार पर सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्त करें ।

2. याची के पिता, अर्थात् श्री काना राम रैगर, जो केन्द्रीय कार्यशाला, जयपुर में वेल्डर ग्रेड-I के पद पर कार्यरत थे, की तारीख 22 नवंबर, 2010 को कार्य करते हुए मृत्यु हो गई थी । वो अपने पीछे अपनी विधवा पत्नी मंगली देवी, चार पुत्रों, और तीन पुत्रियों को छोड़ गए थे । याची मृतक कर्मचारी का ज्येष्ठ पुत्र है । प्रत्यर्थी-निगम ने, तारीख 25 जून, 2010 द्वारा आर. एस. आर. टी. सी. के मृतक कर्मचारियों के आश्रितों की अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति विनियम, 2010 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "2010 के विनियम" कहा गया है) प्रख्यापित किए थे और उन्हें तुरंत प्रभाव से प्रभावी किया गया था । 2010 के विनियमों के विनियम 5 के अनुसार अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति की प्रस्थापना के लिए छः पदों की पहचान की गई थी, अर्थात् सहायक यातायात निरीक्षक; संगणक, उप-भंडार निरीक्षक; चालक; कंडक्टर; आर्टीज़न ग्रेड-III । 2010 के विनियमों के विनियम 6 के अनुसार, किसी अभ्यर्थी के पास आवेदन प्रस्तुत करते समय ऐसे पदों पर नियुक्ति के लिए पात्रता होनी चाहिए । इन छः पदों को

कार्यालय ज्ञापन, 2005 में भी सम्मिलित किया गया था, जो 2010 के विनियमों के प्रख्यापन से पूर्व अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति मंजूर करने के लिए आधार था । उक्त कार्यालय ज्ञापन को, निगम के बोर्ड के विनिश्चय सं. 19/2008 के आधार पर पारित तारीख 16 जून, 2008 के एक अन्य आदेश द्वारा अधिक्रांत किया गया था, जिसमें अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए कुल सात पदों की पहचान की गई थी । ऊपर निर्दिष्ट छः पदों के अलावा, कनिष्ठ अभियन्ता, ग्रेड ख के पद को भी सम्मिलित किया गया था ।

3. याची के पास बी. ए. की अर्हता के अलावा, दो स्नातकोत्तर डिग्रियां, अर्थात् एम. ए., एल-एल. बी. और साथ ही पत्रकारिता (जन संपर्क) का स्नातक का प्रमाणपत्र भी था । उसने तारीख 13 दिसंबर, 2011 को सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया था । सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए निगम के बोर्ड के विनिश्चय सं. 52/2011, जिसे तारीख 8 जुलाई, 2011 को अनुमोदित किया गया था और तारीख 29 अगस्त, 2011 के आदेश द्वारा अधिसूचित किया गया था, द्वारा यथाअधिकथित अर्हता किसी मान्यताप्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री थी । याची द्वारा यह दलील दी गई है कि अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए उसके द्वारा आवेदन किए जाने के समय सहायक यातायात निरीक्षक के पद के लिए पात्रता की अर्हता स्नातक की डिग्री थी और याची उस पद पर नियुक्ति के लिए अर्हित था । तथापि, प्रत्यर्थियों ने उसके दावे को असफल करने के विचार से, उसके पश्चात् तारीख 30 जनवरी, 2012 को एक आदेश जारी किया जिसके द्वारा सहायक यातायात निरीक्षक, संगणक और उप-भंडार निरीक्षक के पदों को 2010 के विनियमों के विनियम 5 से हटा दिया गया था । इस आदेश को अधिक से अधिक भविष्यलक्षी प्रकृति का माना जा सकता था और इसे भूतलक्षी प्रभाव से लागू नहीं किया जा सकता है । जब तारीख 22 नवंबर, 2010 को याची के पिता की मृत्यु हुई थी, उस समय सहायक यातायात निरीक्षक का पद, 2010 के विनियमों के विनियम 5 में सम्मिलित था । याची द्वारा अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन तारीख 13 दिसंबर, 2011 को फाइल किया गया था, उस तारीख को भी उक्त पद, 2010 के विनियमों के विनियम 5 में सम्मिलित था ।

अतः याची के मामले पर उस समय लागू नियमों के अनुसार विचार किया जाना चाहिए था ।

4. याची ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थियों ने समय-समय पर भिन्न-भिन्न आदेश जारी किए हैं जिनके द्वारा अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए कतिपय पदों को 2010 के विनियमों के विस्तार क्षेत्र से बाहर किया गया था और कुछ समय पश्चात् पुनः ऐसे पदों को उसमें सम्मिलित कर लिया गया था । याची ने अभिलेख पर तारीख 30 जुलाई, 2013 का एक पश्चात्वर्ती आदेश रखा है, जिसे निगम के बोर्ड के विनिश्चय सं. 55/2013 के आधार पर पारित किया गया था । इस बार पुनः सहायक यातायात निरीक्षक और साथ ही संगणक, उप-भंडार निरीक्षक और श्रेणी 4 के कर्मचारियों को 2010 के विनियमों के विनियम 5 के विस्तार क्षेत्र में सम्मिलित किया गया था । याची ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थियों ने अब सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हता के रूप में एम. बी. ए., बी. बी. ए., पी. जी. डी. एम. को उपबंधित किया है । अब प्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 6 जुलाई, 2013 के आदेश में भिन्न अर्हता विहित करना उसकी नियुक्ति को बाधित नहीं कर सकता क्योंकि उसके पिता के मृत्यु के समय और उस समय भी जब उसने नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया था, सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए अर्हता स्नातक की डिग्री थी, जिसे याची पूरा करता है । अन्यथा भी, याची उच्च अर्हता प्राप्त है, उसके पास स्नातक की डिग्री के अलावा दो स्नातकोत्तर डिग्रियां और एल-एल. बी. भी है । यह दलील दी गई है कि वह आर्थिक संकट में फंसा है । याची मृतक का ज्येष्ठ पुत्र है और उस पर अपनी माता, तीन छोटे भाइयों और तीन छोटी बहनों के भरणपोषण का दायित्व है । याची बेरोजगार है, इसलिए उसके लिए कुटुम्ब का भरण-पोषण करना बहुत कठिन है ।

5. यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थियों ने अपनी तारीख 16 मार्च, 2012 की संसूचना द्वारा याची को चालक, कंडक्टर और आर्टीज़न ग्रेड-III के पद पर नियुक्ति देने का प्रस्ताव किया था और उससे यह अपेक्षा की थी कि वह चालक और कंडक्टर के पद के लिए चालक अनुज्ञप्ति और आर्टीज़न ग्रेड-III के पद के लिए आई. टी. आई. में डिप्लोमा प्रमाणपत्र की प्रति प्रस्तुत करे । याची के पास इनमें से कुछ भी नहीं था, अतः वह उन्हें

प्रस्तुत नहीं कर सकता था । प्रत्यर्थियों ने उस आधार पर, अपनी तारीख 24 अप्रैल, 2012 की संसूचना के द्वारा अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए उसके आवेदन को नामंजूर कर दिया था । याची ने यह दलील दी है कि समान परिस्थितियों के अधीन, उमेश नागर को, जिसके पिता श्री लक्ष्मी नारायण की मृत्यु तारीख 9 अक्तूबर, 2010 को हुई थी, तारीख 2 दिसम्बर, 2011 के आदेश द्वारा सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्त किया गया है । याची के पिता की मृत्यु भी मात्र उसके एक मास पश्चात् हुई थी । इस प्रकार, प्रत्यर्थियों ने मनमाने ढंग से चुनने की पद्धति अपनाई है और मनमाने ढंग से याची के आवेदन को नामंजूर कर दिया है । याची समाज के कमजोर वर्ग से है और उस पर एक बड़े कुटुम्ब के भरणपोषण का उत्तरदायित्व है, जिसमें मृतक की एक विधवा, चार पुत्र और तीन पुत्रियां सम्मिलित हैं, अतः प्रत्यर्थियों को उसके साथ भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिए था । यद्यपि, उमेश नागर को, जो उच्च जाति का है, अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति प्रदान की गई है, वहीं याची, जो अनुसूचित जाति का है, के साथ भेदभाव किया गया है ।

6. श्री एच. आर. ढाका, कनिष्ठ विधि अधिकारी, प्रत्यर्थी आर. एस. आर. टी. सी. के प्रतिनिधि ने यह दलील दी है कि अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति नियमों का अपवाद है और उसके लिए अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है । किसी मृतक कर्मचारी का कोई आश्रित अपनी इच्छा से किसी विशिष्ट पद पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता है । प्रत्यर्थियों ने याची को चालक, कंडक्टर या आर्टीज़न ग्रेड-III के पद पर नियुक्ति का प्रस्ताव किया था । यदि याची ने इन पदों पर नियुक्ति को स्वीकार करने का विकल्प नहीं लिया या उसके पास इन पदों पर नियुक्ति के लिए पात्रता नहीं है तो प्रत्यर्थियों की उसके अनुरोध को नामंजूर करने की कार्रवाई को अनुचित या असंगत नहीं कहा सकता है । अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति देने का एकमात्र प्रयोजन यह है कि उस कुटुंब को, जिसके एकमात्र कमाने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो गई है, आकस्मिक वित्तीय संकट का सामना करने में समर्थ बनाया जा सके । याची के पिता की मृत्यु को लगभग चार वर्ष हो गए हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि मृतक का कुटुब किसी वित्तीय संकट का सामना कर रहा है । जिस समय याची के मामले का विनिश्चय किया गया था, तब

सहायक यातायात निरीक्षक का पद अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के विस्तार क्षेत्र के अंतर्गत नहीं था । यह तर्क दिया गया है कि तारीख 18 जनवरी, 2012/30 जनवरी, 2012 का विनिश्चय, अनुकम्पा के आधार नियुक्ति के लिए विचारार्थ लंबित सभी आवेदनों को लागू किया गया था । चूंकि, याची का आवेदन उस समय लंबित था, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस विनिश्चय को भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया गया था । यद्यपि, अब उसके पश्चात् तारीख 6 अगस्त, 2013 के आदेश के द्वारा उस पद को पुनः सम्मिलित कर लिया गया है किंतु याची पुनः उस पद के लिए पात्रता मानदंड को पूरा नहीं करता क्योंकि उसके पास एम. बी. ए., बी. बी. ए. या पी. जी. डी. एम. की डिग्री नहीं है । यह और तर्क दिया गया है कि उमेश नागर का मामला पूर्णतया भिन्न था । उसे तारीख 2 दिसंबर, 2011 को, उस समय लागू नियमों और विनियमों के अनुसार सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति प्रदान की गई थी । याची का आवेदन उस समय लंबित था और इस पर कोई विनिश्चय नहीं किया गया था, जब निगम के बोर्ड ने तारीख 18 जनवरी, 2012 को विनियमों का संशोधन किया था ।

7. मैंने परस्पर विरोधी दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और अभिलेख पर की सामग्रियों का परिशीलन किया ।

8. दो अविवादित तथ्य यह हैं कि याची के पिता की मृत्यु के समय और याची द्वारा अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति हेतु आवेदन प्रस्तुत किए जाने के समय पर सहायक यातायात निरीक्षक का पद, 2010 के विनियमों में सम्मिलित था । अब पुनः सहायक यातायात निरीक्षक के पद को सम्मिलित कर लिया गया है जबकि इस रिट याचिका का विनिश्चय किया जाना है । प्रत्यर्थियों ने याची के इस प्राख्यान से इनकार नहीं किया है कि उमेश नागर को, जिसके पिता की मृत्यु तारीख 9 अक्तूबर, 2010 को हुई थी, तारीख 2 दिसंबर, 2011 के आदेश द्वारा सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था । याची के पिता की मृत्यु, उमेश नागर के पिता की मृत्यु से मात्र एक मास पश्चात् तारीख 12 दिसंबर, 2010 को हुई थी । यद्यपि, सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए याची के आवेदन को लंबित रखा गया था और नियमों में परिवर्तन हुआ तो तारीख 24 अप्रैल, 2012 की संसूचना द्वारा

उसके आवेदन को नामंजूर कर दिया गया । उसके आवेदन को, तारीख 18 जनवरी, 2012 को निगम के बोर्ड द्वारा किए गए विनिश्चय सं. 13/2012 के आधार पर पारित तारीख 30 जनवरी, 2012 के आदेश का अवलंब लेते हुए नामंजूर किया गया है, जिसके द्वारा अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए पूर्व में प्रस्थापित सात पदों को घटा कर केवल चार कर दिया गया था और सहायक यातायात निरीक्षक के पद को उसमें से हटा दिया गया था । स्पष्टतया, याची के आवेदन को इसलिए नामंजूर किया गया था क्योंकि वह चालक और कंडक्टर के पद के लिए अपेक्षित अनुज्ञप्ति प्रस्तुत करने में असफल रहा था । याची को आर्टीज़न ग्रेड-III के पद पर भी नियुक्त नहीं किया जा सका था क्योंकि उसके पास आई. टी. आई. डिप्लोमा की अर्हता नहीं थी । संभवतः, प्रत्यर्थी इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकते कि अब बोर्ड के निगम के तारीख 30 जुलाई, 2013 के विनिश्चय सं. 55/13 के अनुसरण में सहायक यातायात निरीक्षक के पद को पुनः 2010 के विनियमों के विनियम 5 में सम्मिलित कर लिया गया है और अब वह निगम बोर्ड के तारीख 30 जुलाई, 2013 के विनिश्चय सं. 55/13 के अनुसरण में अनुकम्पा के आधार नियुक्ति के लिए उपलब्ध हैं । किंतु इस समय, सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता अर्हता को, जो पूर्व में केवल साधारण स्नातक थी, अब परिवर्तित करके एम. बी. ए., बी. बी. ए., पी. जी. डी. एम. कर दिया गया है । न्यायालय को याची की यह दलील स्वीकार्य नहीं है कि प्रत्यर्थियों ने पक्षपात करते हुए उमेश नागर के अनुरोध को केवल इसलिए स्वीकार किया था और उसे सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति प्रदान की थी क्योंकि वह उच्च जाति का है और याची को इस कारण से नियुक्त करने से इनकार कर दिया था क्योंकि वह अनुसूचित जाति का है । किंतु फिर भी प्रत्यर्थियों द्वारा उसके प्रति किया गया भेदभाव उनके आचार से स्पष्ट है । उमेश नागर के पिता की मृत्यु तारीख 9 अक्तूबर, 2010 को हुई और उसे तारीख 2 दिसंबर, 2011 को नियुक्त किया गया था और याची के पिता की मृत्यु उसके मात्र एक मास पश्चात् तारीख 22 नवंबर, 2010 को हुई थी । याची ने अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन तारीख 13 दिसंबर, 2011 को अर्थात् उमेश नागर की नियुक्ति से मात्र 10 दिन पश्चात् किया था । प्रत्यर्थियों के पास उस समय लागू नियमों के अधीन याची के आवेदन पर कार्यवाही न

करने का कोई उचित कारण नहीं था । याची के आवेदन को निगम के बोर्ड के तारीख 18 जनवरी, 2012 के निर्णय का अवलंब लेते हुए नामंजूर किया गया है । याची द्वारा आवेदन प्रस्तुत करने के समय लागू नियमों के अनुसार कार्यवाही की जानी चाहिए थी और अब जब पुनः सहायक यातायात निरीक्षक के पद को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए सम्मिलित कर लिया गया है तो प्रत्यर्थियों को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे याची के मामले पर, उसके द्वारा मूल रूप से आवेदन प्रस्तुत किए जाने के समय धारित अर्हता के आधार पर विचार करने से इनकार करें । मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, याची के मामले में याची द्वारा आवेदन प्रस्तुत करने के समय लागू अर्हता ही लागू होगी । तथापि, किसी अन्य ऐसे अभ्यर्थी की दशा में, जिसने तारीख 6 अगस्त, 2013 के पश्चात् जब सहायक यातायात निरीक्षक के पद को पुनः 2010 के विनियमों के विनियम 5 में सम्मिलित किया गया था, अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया है, प्रत्यर्थियों द्वारा विहित नई अर्हता, अर्थात् एम. बी. ए., बी. बी. ए., पी. जी. डी. एम. लागू होगी । अतः, प्रत्यर्थियों की कार्रवाई अविधिमान्य, मनमाना, विभेदकारी घोषित की जाती है और यह भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करता है ।

9. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका मंजूर किए जाने योग्य है और इसे मंजूर किया जाता है । प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाता है कि वह अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति हेतु याची के मामले पर विचार करें और इस आदेश की प्रति उनके समक्ष रखे जाने की तारीख से दो मास के भीतर याची को अनुकम्पा के आधार पर सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्ति प्रदान करें ।

याचिका मंजूर की गई ।

पु./क.

महाप्रबन्धक और अन्य

बनाम

श्रीमती नसीब देवी और अन्य

तारीख 22 मई, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति ए. एम. खानविल्कर

लेटर्स पेटेन्ट – खंड 10 [सपठित भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1)(2)(3) और धारा 4 तथा 11] – भूमि अर्जन के एवज में प्रतिकर – तत्समय प्रवृत्त समुचित विधि के अधीन लाभ प्राप्त करना – अवशिष्ट व्यक्तियों को लाभ प्राप्त करने का एक अवसर देने के लिए तत्समय प्रवृत्त समुचित विधि में संशोधन करना – सभी व्यक्तियों द्वारा पुनः लाभ प्राप्त करने का दावा करना – संशोधित विधि अवशिष्ट व्यक्तियों को लाभ प्राप्त करने का एक अवसर देने मात्र के लिए अधिनियमित होना – इन परिस्थितियों में संशोधित विधि का लाभ उन्हीं व्यक्तियों को मिल सकता है जो किन्हीं युक्तियुक्त कारणों से संशोधन-पूर्व समुचित विधि के अधीन अवसर का लाभ उठाने से वंचित रह गए थे ।

वर्तमान मामले में, हिमाचल प्रदेश राज्य ने नांगल बांध से तलवाड़ा तक बी. जी. रेलवे लाइन बिछाने के लिए ग्राम तब्बा, तहसील और जिला ऊना, हिमाचल प्रदेश में स्थित कतिपय भूमि खंडों जिनमें अपीलों में के प्रत्यर्थियों तथा सी. एम. पी. एम. ओ. में के याचियों की भूमि सम्मिलित है, को अर्जित करने के लिए तारीख 20 अक्तूबर, 1984 को एक अधिसूचना जारी की । भूमि अर्जन कलक्टर ने तारीख 15 मई, 1986 को अधिनिर्णय उद्घोषित किया और विभिन्न प्रकार की भूमियों का निम्नलिखित बाजार मूल्य नियत किया – (क) बरानी और आबादी भूमि के लिए 4,000/- रुपए प्रति कनाल । (ख) बंजर कादिम भूमि के लिए 2,000/- रुपए प्रति कनाल । (ग) गैर मुमकिन भूमि के लिए 1,000/- रुपए प्रति कनाल । विभिन्न भूमि स्वामियों के अलावा इसमें के दावेदारों ने विभिन्न आधारों पर उच्चतर प्रतिकर का दावा करते हुए, अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश आवेदन फाइल किया । सभी छह मामलों को 1987 की भूमि निर्देश आवेदन सं. 22, 14, 16, 24, 25 और 27 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया और जिला न्यायाधीश द्वारा इन सभी मामलों को तारीख 27 मई,

1988 के अधिनिर्णय द्वारा विनिश्चित किया गया, जिन्होंने क्षतिपूर्ति और ब्याज के कानूनी संदाय के अतिरिक्त भूमि का निम्नलिखित पुनर्निर्धारण किया – (क) बरानी और आबादी भूमि के लिए 8,000/- रुपए प्रति कनाल । (ख) बंजर कादिम भूमि के लिए 4,000/- रुपए प्रति कनाल । (ग) गैर मुमकिन भूमि के लिए 2,000/- रुपए प्रति कनाल । इसमें के दावेदारों ने अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन 1987 के निर्देश आवेदन सं. 22 में पारित तारीख 27 मई, 1988 के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर बढ़ाने का दावा करते हुए आवेदन फाइल किया । इसमें के दावेदारों द्वारा प्रस्तुत आवेदनों को मंजूर करते हुए अधिनिर्णीत रकम को बढ़ा दिया गया जिसके द्वारा उन्हें न्यायालय के अधिनिर्णय के निबंधनों में बढ़े हुए प्रतिकर अधिनिर्णीत किए गए । तथापि, तारीख 27 मई, 1988 के अधिनिर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की गईं जिसे तारीख 16 मई, 1997 के निर्णय द्वारा विनिश्चित किया गया । इस न्यायालय ने उक्त अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया और मामले पर पुनर्विचार करने के लिए जिला न्यायाधीश के पास वापस भेज दिया । निर्देश मिलने के पश्चात् जिला न्यायाधीश द्वारा विभिन्न तारीखों पर पृथक्-पृथक् रूप से निर्देश आवेदन विनिश्चित किए गए । तारीख 1 अगस्त, 1998 का अंतिम निर्णय जो उसी अधिसूचना से उद्भूत हुआ था, को जिला न्यायाधीश द्वारा 1987 की भूमि निर्देश संख्या 82 शीर्षक लक्ष्मण दास बनाम कलक्टर, विनिश्चित किया गया । तारीख 1 अगस्त, 1998 के उक्त अधिनिर्णय के निबंधनों में विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा निम्नलिखित रूप में प्रतिकर रकम बढ़ा दी गई थी – (क) बरानी और आबादी भूमि के लिए 10,000/- रुपए प्रति कनाल । (ख) बंजर कादिम भूमि के लिए 5,000/- रुपए प्रति कनाल । (ग) गैर मुमकिन भूमि के लिए 2,500/- रुपए प्रति कनाल । इसमें के दावेदारों ने तारीख 1 अगस्त, 1998 के पश्चात्वर्ती अधिनिर्णय का उत्तर कलक्टर के समक्ष प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने और प्रतिकर रकम बढ़ाने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन नए आवेदन/आवेदनों को फाइल किया । इसमें के दावेदारों द्वारा फाइल द्वितीय आवेदन को कलक्टर द्वारा तारीख 22 मार्च, 2003 के आक्षेपित आदेश के निबंधनों में इस आधार पर खारिज कर दिया कि द्वितीय आवेदन कायम रखे जाने योग्य नहीं है । इससे व्यथित होकर, इसमें के दावेदारों ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल कीं । इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा इन सभी रिट याचिकाओं को एकसाथ सुना गया

और तारीख 31 जुलाई, 2007 के एक ही निर्णय द्वारा निपटाया गया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इसमें के दावेदारों के पक्ष में प्रश्न का उत्तर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले के तथ्यों में उन्हें प्रतिकर का पुनः अवधारण करने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय आवेदन/आवेदनों को फाइल करने का विकल्प अन्य दावेदारों के मामले में पारित नए अधिनिर्णय को ध्यान में रखते हुए, खुला है, जो उनके लिए अधिक लाभकारी है । इस मत को ध्यान में रखते हुए विवाद्यक को सही किया जाए । ये मामले मई, 2013 माह के लिए चकबन्दी सूची में क्रम सं. 4 पर अधिसूचित किए गए । मामले की सुनवाई के लिए तारीख 2 मई, 2013 नियत की गई और कुछ भाग की सुनवाई की गई । तारीख 3 मई, 2013 को तर्क दिए जाने थे । इन दोनों तारीखों पर इसमें के दावेदारों की ओर से हाजिर होने वाले अधिवक्ता उपस्थित नहीं हुए । परिणामस्वरूप, न्यायालय में विद्वान् महाधिवक्ता से अपील के अधीन सामान्य निर्णय में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के समर्थन में इसमें के उपलब्ध दावेदरों को अंकित करने के लिए निवेदन किया । विद्वान् महाधिवक्ता ने इसके अतिरिक्त, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा कथित सिद्धांत को इंगित किया, यह भी इंगित किया कि अधिनियम, 1894 की धारा 28क के उपबंध दावेदारों के पक्ष में सृजित अधिकारों के लिए एक हितकारी उपबंध है और धारा 4 की अधिसूचना के अन्तर्गत आने वाले एक अन्य दावेदार के मामले में इस न्यायालय के अत्यधिक हितकारी अधिनिर्णय के आधार पर दावेदारों को प्रतिकर का पुनः अवधारण कराने के लिए आवेदन करने का उपचार उपलब्ध है । उन्होंने यह इंगित किया कि न्यायालय के पूर्ववर्ती अधिनिर्णय को अपास्त करने के पश्चात् जो इसमें के दावेदारों द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 23क(1) के अधीन फाइल प्रथम आवेदन के आधार पर दिया गया था, विधि में, उक्त अधिनिर्णय को प्रभावित करेगा और जिसके कारण न्यायालय के नए अधिनिर्णय को पारित करने के पश्चात् उसे वापस ले लिया जाता है जो इसमें के दावेदारों को वैकल्पिक रूप में द्वितीय आवेदन फाइल करने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन नया वाद हेतुक उद्भूत करता है । इस मामले में, इसमें के दावेदारों ने पूर्व में न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर के पुनः अवधारण के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन पहले ही आवेदन देकर इस उपचार का अवलंब ले लिया है । उस आवेदन में, इसमें के दावेदारों के पक्ष में विनिश्चय किया गया था । तथापि, बाद में इस न्यायालय के अधिनिर्णय को, जिसके आधार पर इसमें के

दावेदारों को अनुतोष मंजूर किया गया था, उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया और मामले को निर्देश न्यायालय के पास नए सिरे से विचार करने के लिए वापस भेज दिया गया था । प्रतिप्रेषण के पश्चात् निर्देश न्यायालय ने अन्य दावेदारों के पक्ष में अधिनिर्णय पारित किया और उन दावेदारों के प्रतिकर बढ़ाने को मंजूरी प्रदान कर दी थी जिसके मुकाबले इसमें के दावेदारों में से एक का अधिनिर्णय उसके द्वारा फाइल धारा 28क(1) के अधीन पूर्व आवेदन पर दिया गया था । इसलिए, इसमें के दावेदारों ने पुनः तारीख 1 अगस्त, 1998 के न्यायालय के नए अधिनिर्णय के आधार पर द्वितीय आवेदन फाइल करते हुए धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब लिया । न्यायालय द्वारा लेटर्स पेटेन्ट अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रश्न यह है कि क्या न्यायालय का पश्चात्वर्ती अधिनिर्णय अधिनियम की धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब लिया जा सकता है, इसमें के दावेदारों के पक्ष में नए अधिकारों को पुनर्जीवित कर सकता है ? न्यायालय की राय में, धारा 28क के मूल परिशीलन से यह सुस्पष्ट होता है कि इस उपबंध की स्कीम उन दावेदारों को मात्र एक अवसर देने का है जो अधिनियम, 1894 की धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अधीन अन्य दावेदारों को प्रतिकर बढ़ाने के लिए उपबंध करते हुए, न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण कराने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश करते हुए कलक्टर के समक्ष आवेदन करने में असफल रहे थे । उपधारा (1) के अधीन ऐसा आवेदन प्राप्त करने के पश्चात्, कलक्टर जांच कराने के लिए बाध्य है । उपधारा (2) के निबंधनों में, कलक्टर सभी हितबद्ध व्यक्तियों को नोटिस देने के लिए बाध्य है और आवेदकों को देय प्रतिकर की रकम अवधारण करने के लिए "अधिनिर्णय करने" के पूर्व सभी हितबद्ध व्यक्तियों को युक्तियुक्त सुनवाई का अवसर उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है । इस प्रकार, कलक्टर का उक्त विनिश्चय, अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन अपने पूर्ववर्ती अधिनिर्णय के प्रतिस्थापन में, अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन दिया गया एक अधिनिर्णय है । इस प्रकार, यह अधिनियम, 1894 के भाग III के अधीन दिया गया एक अधिनिर्णय है । उपधारा (3) अभिव्यक्त तौर पर आवेदक/आवेदकों की ओर से किए गए निवेदन पर न्यायालय में निर्देश के माध्यम से कलक्टर द्वारा भाग III के अधीन दिए गए अधिनिर्णय के विरुद्ध उपचार के लिए

उपबंध करता है । दूसरे शब्दों में, दावेदार के पास यह विकल्प है कि वह अधिनियम की धारा 28क(2) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय को स्वीकार कर ले अथवा कलक्टर के अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 28क(3) के अधीन उपचार का अवलंब लेते हुए निर्देश आवेदन फाइल करें । इससे न ही अधिक और न ही कम । आवेदक जो अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय को स्वीकार करता है तो निर्देश न्यायालय द्वारा मामले में माफी देने की उच्च न्यायालय की आकस्मिक परिस्थिति और धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अधीन अन्य दावेदारों के पक्ष में प्रतिकर रकम बढ़ाने के लिए निर्देश न्यायालय द्वारा पुनः विचार करने के कारण वह अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन उपचार को वापस नहीं कर सकता है । साथ ही इस निर्वचन को धारा 28क(1) की स्पष्ट भाषा से भी बल मिलता है । धारा 28क(1) के अधीन उपबंधित उपचार के लिए धारा 11 के अधीन कलक्टर द्वारा मंजूर प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने के लिए आवेदन करना होता है और न कि अधिनियम, 1894 की धारा 28क (2) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध या उसके परिणामस्वरूप आवेदन करना होता है । ऐसे मामले इस सिद्धांत द्वारा ही शासित होते हैं मात्र इस कारण से कि कुछ अन्य कार्यवाहियों में न्यायालय द्वारा धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अन्तर्गत आने वाले भूमि के संबंध में कुछ अन्य दावेदारों के पक्ष में पारित अधिनिर्णय अत्यधिक लाभकारी होता है । उसी आधार पर, तृतीय पक्षकार/दावेदार दूसरी बार के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब नहीं ले सकता है, यद्यपि, ऐसे मामले विचाराधीन होते हैं फिर भी दावेदार धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय आवेदन का अवलंब नहीं ले सकता है । अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन उपचार के लिए मात्र उसी दावेदार को एक अवसर मिलता है जो अधिनियम, 1894 की धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अन्तर्गत आने वाली भूमि में हितबद्ध होता है और अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन कलक्टर द्वारा उसके मामले में पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश करने के उपचार का अवलंब लेने में असफल रहा था । अविवादित तौर पर अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अधीन विधान एक स्वतः पूर्ण संहिता है और यह उन हितबद्ध व्यक्तियों को उपचार के लिए उपबंध करता है जो अपनी उन भूमियों के संबंध में जो अधिनियम, 1894 की धारा 4

के अधीन उसी अधिसूचना के अन्तर्गत आती हैं, अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश का उपचार लेने में असफल रहे हैं जिन्होंने अन्य दावेदारों के मामले में न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय का अवलंब लेते हुए प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने के लिए आवेदन किया था । जब एक बार ऐसा व्यक्ति धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब ले लेता है और अधिनियम, 1894 के भाग III के अधीन कलक्टर द्वारा अधिनिर्णय पारित करने पर वह व्यक्ति, अधिनियम, 1894 के अधीन उस उपबंध की उपधारा (3) को ध्यान में रखते हुए मात्र निर्देश के उपचार का ही अवलंब ले सकता है । इस प्रकार, यह समझा जा सकता है कि धारा 28क(1) के अधीन क्रमशः आवेदन ग्रहण करने का कोई प्रश्न नहीं रह जाता है मात्र जिस अनुतोष के आधार पर न्यायालय का अधिनिर्णय पारित किया गया जिसमें धारा 28क के अधीन आवेदक को अनुतोष मंजूर किया गया था जिसे प्रतिप्रेषण के पश्चात् बाद में अपास्त कर दिया गया था और न्यायालय द्वारा नया अधिनिर्णय पारित किया गया था जो उसके लिए और अधिक फायदेमंद था । इसका अनुमोदन नहीं किया जा सकता है । उपबंध, जैसा कि अधिनियमित है, अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन अधिनिर्णय के पश्चात् कलक्टर के समक्ष दावेदारों को मात्र एक बार उपचार उपलब्ध कराता है यद्यपि उसने उस अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश के उपचार का अवलंब नहीं लिया था । यदि दावेदारों द्वारा प्रस्तुत निर्वचन को स्वीकार कर लिया जाता है तो उसी व्यक्ति की प्रेरणा पर पूर्ववर्ती अवसर पर अधिनियम, 1894 के भाग III में धारा 28क(2) के अधीन पारित कलक्टर के स्वयं अपने अधिनिर्णय के लिए प्रदत्त पुनरीक्षण के अधिकार का प्रभाव अवश्यंभावी हो जाता है और यद्यपि वह व्यक्ति धारा 28क(3) के निबंधनों में विधि द्वारा उपबंधित रूप से उसे चुनौती देने में असफल हो जाता है । दूसरे शब्दों में, धारा 28क(2) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय अंतिम हो जाता है और उस आवेदक पर बाध्यकारी हो जाता है जिसकी प्रेरणा पर उसे किया गया है । इससे भिन्न मत अपनाने का परिणाम धारा 28क को पुनः लिखना होगा और उस संबंधित व्यक्ति के लिए और उपचार अन्तःस्थापित करना होगा जो धारा 11 के अधीन अधिनिर्णय के पश्चात् अपने विकल्प को पहले ही समाप्त कर चुका है और जो धारा 28क(2) के अधीन किए गए अधिनिर्णय के

परिणामस्वरूप अधिनियम, 1894 की धारा 28क(3) के अधीन उपलब्ध अभिव्यक्त उपचार की अवहेलना कर चुका है । इस जटिल पहलू को इसमें के दावेदारों द्वारा महत्व कम कर दिया गया है जिन्होंने द्वितीय आवेदन का अवलंब लिया है । जैसा कि उपर्युक्त, अधिनियम, 1894 की उपधारा (3) में यथाअन्तर्विष्ट है, धारा 28क(2) के अधीन पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध "उपचार के लिए उपबंध" के अभिव्यक्त उपबंध का अवलंब व्यथित आवेदक मात्र निर्देश के उपचार का अवलंब ले सकता है और न कि धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय आवेदन फाइल करने के लिए । दावेदारों का तर्क तारीख 27 मई, 1988 के न्यायालय के पूर्व अधिनिर्णय को अपास्त करने का वही प्रभाव होगा और कोई उपभोग नहीं होगा । उन्हीं आवेदकों द्वारा उसके लिए फाइल पूर्ववर्ती आवेदन पर अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय का कोई स्वतः परिणाम नहीं होगा । निःसंदेह, "उपचार" संविधि का एक सृजन है । ऐसे उपचार की उपलब्धता में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और इतना ही नहीं, धारा 28क की भाषा से और विशिष्टतया इसकी उपधारा (3) की भाषा से साधारणतया यह स्पष्ट होता है कि उस अधिनिर्णय के विरुद्ध आवेदक को मात्र निर्देश करने का अवलंब लेने का विकल्प ही उपलब्ध होता है । इसलिए, इसमें के दावेदारों के तर्क को स्वीकार करते हुए भी उपबंध को पुनः लिखने और विधायी आशय का विरोध करने का कोई औचित्य नहीं है । (पैरा 13, 14, 15 और 16)

वर्तमान मामले में, कलक्टर द्वारा उस विकल्प को पुनः स्थापित किया जा सकता था जब इसमें के दावेदारों द्वारा धारा 28क(1) के अधीन प्रथम आवेदन फाइल किया गया था । तथापि, कलक्टर ने उच्च न्यायालय के अंतिम निर्णय और डिक्री की प्रतीक्षा किए बिना धारा 28क(1) के अधीन पूर्ववर्ती आवेदन पर विनिश्चय करने की कार्यवाही की । उच्च न्यायालय ने तारीख 16 मई, 1997 को अंतिम निर्णय और डिक्री पारित की जिसके परिणामस्वरूप मामले में निर्देश न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय को अपास्त करते हुए मामले को निर्देश न्यायालय के पास वापस भेज दिया गया था । यदि कलक्टर द्वारा रिट याचियों द्वारा प्रस्तुत धारा 28क के अधीन आवेदन को लम्बित रखा गया होता तो इसमें के दावेदारों को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होता । उस कृत्य या लोप के कारण, इसमें के दावेदारों को कोई लाभ नहीं हो सकता था । जैसा कि पूर्ववर्ती उल्लेख किया जा चुका है, धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय या उत्तरवर्ती आवेदन

उसी आवेदक की प्रेरणा पर कायम रखे जाने योग्य नहीं है । उस आवेदक को एकमात्र उपचार निर्देश का अवलंब लेना ही उपलब्ध है जैसा कि अधिनियम की धारा 28क(3) में प्रतिपादित है । यह मत व्यक्त करना पर्याप्त है कि इसमें के दावेदारों को अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन अधिनिर्णय को अंतिम कराने का अधिकार है और इतना ही नहीं एक बार का उपचार भी समाप्त हो जाता है, हमारी राय में, उसी आवेदक द्वारा धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय या उत्तरवर्ती आवेदन विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है । इसलिए, मामले के संपूर्ण मताभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय कलक्टर द्वारा अभिलिखित इस राय से सहमत है कि उसी आवेदक/रिट याचियों द्वारा फाइल द्वितीय या उत्तरवर्ती आवेदन विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं था । परिणामस्वरूप, न्यायालय विद्वान् एकल न्यायाधीश की राय को उलटता है । तद्नुसार, सभी लेटर्स पेटेंट अपीलें सफल होती हैं । (पैरा 21, 23, 24 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 8 एस. सी. सी. 457 : **गुरप्रीत सिंह** बनाम **भारत संघ** ;	23
[2006]	(2006) 4 एस. सी. सी. 538 : **भारत संघ** बनाम **मुंशी राम और अन्य** ;	24
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 421 : **त्रिपुरा राज्य और एक अन्य** बनाम **रूपचन्द दास और अन्य** ;	22
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 273 : **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **हनसोली देवी और अन्य** ;	17
[1995]	(1995) 2 एस. सी. सी. 736 : **भारत संघ** बनाम **प्रदीप कुमारी** ;	18
[1995]	(1995) 2 एस. सी. सी. 689 : **बबूआ राम और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ।	20

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की लेटर्स पेटेन्ट अपील सं. 112, 113, 115, 116, 117, 118, 119, 120, 123, 124 और 125 तथा 2002 की सी. एम. पी. एम. ओ. सं. 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 44, 45, 60, 80 और 109.

लेटर्स पेटेन्ट के खंड 10 के अधीन अपील ।

सभी लेटर्स पेटेन्ट अपीलों में अपीलार्थियों की ओर से तथा सभी सी. एम. पी. एम. ओ. में प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री आनन्द शर्मा, अधिवक्ता
सभी सी. एम. पी. एम. ओ. में याचियों की ओर से	सर्वश्री हिम्मत नेगी के साथ अजय शर्मा, अधिवक्ता
सभी लेटर्स पेटेन्ट अपीलों में राज्य-प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री श्रवण डोगरा, महाधिवक्ता के साथ जे. के. वर्मा, उप-महाधिवक्ता

मुख्य न्यायमूर्ति ए. एम. खानविल्कर – इन सभी मामलों में सामान्य प्रश्न अन्तर्वलित है । परिणामस्वरूप इन्हें एक ही सामान्य निर्णय द्वारा निपटाया जाना है । प्रश्न यह है कि क्या भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 28क(1) के अधीन उसी दावेदार द्वारा फाइल क्रमशः आवेदन कायम रखे जाने योग्य हैं ?

2. इन मामलों के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं ।

3. हिमाचल प्रदेश राज्य ने नांगल बांध से तलवाड़ा तक बी. जी. रेलवे लाइन बिछाने के लिए ग्राम तब्बा, तहसील और जिला ऊना, हिमाचल प्रदेश में स्थित कतिपय भूमि खंडों जिनमें अपीलों में के प्रत्यर्थियों तथा सी. एम. पी. एम. ओ. में के याचियों (संक्षेप में इसमें के दावेदारों) की भूमि सम्मिलित है, को अर्जित करने के लिए तारीख 20 अक्तूबर, 1984 को एक अधिसूचना जारी की । भूमि अर्जन कलक्टर ने तारीख 15 मई, 1986 को अधिनिर्णय उद्घोषित किया और विभिन्न प्रकार की भूमियों का निम्नलिखित बाजार मूल्य नियत किया :–

(क) बरानी और आबादी भूमि के लिए 4,000/- रुपए प्रति कनाल ।

(ख) बंजर कादिम भूमि के लिए 2,000/- रुपए प्रति कनाल ।

(ग) गैर मुमकिन भूमि के लिए 1,000/- रुपए प्रति कनाल ।

4. विभिन्न भूमि स्वामियों के अलावा इसमें के दावेदारों ने विभिन्न आधारों पर उच्चतर प्रतिकर का दावा करते हुए, अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश आवेदन फाइल किया । सभी छह मामलों को 1987 की भूमि निर्देश आवेदन सं. 22, 14, 16, 24, 25 और 27 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया और जिला न्यायाधीश द्वारा इन सभी मामलों को तारीख 27 मई, 1988 के अधिनिर्णय द्वारा विनिश्चित किया गया, जिन्होंने क्षतिपूर्ति और ब्याज के कानूनी संदाय के अतिरिक्त भूमि का निम्नलिखित पुनर्निर्धारण किया :–

(क) बरानी और आबादी भूमि के लिए 8,000/- रुपए प्रति कनाल ।

(ख) बंजर कादिम भूमि के लिए 4,000/- रुपए प्रति कनाल ।

(ग) गैर मुमकिन भूमि के लिए 2,000/- रुपए प्रति कनाल ।

5. इसमें के दावेदारों ने अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन 1987 के निर्देश आवेदन सं. 22 में पारित तारीख 27 मई, 1988 के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर बढ़ाने का दावा करते हुए आवेदन फाइल किया । इसमें के दावेदारों द्वारा प्रस्तुत आवेदनों को मंजूर करते हुए अधिनिर्णीत रकम को बढ़ा दिया गया जिसके द्वारा उन्हें न्यायालय के अधिनिर्णय के निबंधनों में बढ़े हुए प्रतिकर अधिनिर्णीत किए गए ।

6. तथापि, तारीख 27 मई, 1988 के अधिनिर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की गईं जिसे तारीख 16 मई, 1997 के निर्णय द्वारा विनिश्चित किया गया । इस न्यायालय ने उक्त अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया और मामले पर पुनर्विचार करने के लिए जिला न्यायाधीश के पास वापस भेज दिया ।

7. निर्देश मिलने के पश्चात् जिला न्यायाधीश द्वारा विभिन्न तारीखों पर पृथक्-पृथक् रूप से निर्देश आवेदन विनिश्चित किए गए । तारीख 1 अगस्त, 1998 का अंतिम निर्णय जो उसी अधिसूचना से उद्भूत हुआ था, को जिला न्यायाधीश द्वारा 1987 की भूमि निर्देश संख्या 82 शीर्षक लक्ष्मण

दास बनाम कलक्टर, विनिश्चित किया गया । तारीख 1 अगस्त, 1998 के उक्त अधिनिर्णय के निबंधनों में विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा निम्नलिखित रूप में प्रतिकर रकम बढ़ा दी गई थी :–

(क) बरानी और आबादी भूमि के लिए 10,000/- रुपए प्रति कनाल ।

(ख) बंजर कादिम भूमि के लिए 5,000/- रुपए प्रति कनाल ।

(ग) गैर मुमकिन भूमि के लिए 2,500/- रुपए प्रति कनाल ।

8. इसमें के दावेदारों ने तारीख 1 अगस्त, 1998 के पश्चात्वर्ती अधिनिर्णय का उत्तर कलक्टर के समक्ष प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने और प्रतिकर रकम बढ़ाने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन नए आवेदन/आवेदनों को फाइल किया । इसमें के दावेदारों द्वारा फाइल द्वितीय आवेदन को कलक्टर द्वारा तारीख 22 मार्च, 2003 के आक्षेपित आदेश के निबंधनों में इस आधार पर खारिज कर दिया कि द्वितीय आवेदन कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

9. इससे व्यथित होकर, इसमें के दावेदारों ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल कीं । इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा इन सभी रिट याचिकाओं को एकसाथ सुना गया और तारीख 31 जुलाई, 2007 के एक ही निर्णय द्वारा निपटाया गया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इसमें के दावेदारों के पक्ष में प्रश्न का उत्तर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले के तथ्यों में उन्हें प्रतिकर का पुनः अवधारण करने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय आवेदन/आवेदनों को फाइल करने का विकल्प अन्य दावेदारों के मामले में पारित नए अधिनिर्णय को ध्यान में रखते हुए, खुला है, जो उनके लिए अधिक लाभकारी है । इस मत को ध्यान में रखते हुए विवाद्यक को सही किया जाए ।

10. ये मामले, मई, 2013 माह के लिए चकबन्दी सूची में क्रम सं. 4 पर अधिसूचित किए गए । मामले की सुनवाई के लिए तारीख 2 मई, 2013 नियत की गई और कुछ भाग की सुनवाई की गई । तारीख 3 मई, 2013 को तर्क दिए जाने थे । इन दोनों तारीखों पर इसमें के दावेदारों की ओर से हाजिर होने वाले अधिवक्ता उपस्थित नहीं हुए । परिणामस्वरूप, हमने विद्वान् महाधिवक्ता से अपील के अधीन सामान्य निर्णय में विद्वान्

एकल न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के समर्थन में इसमें के उपलब्ध दावेदरों को अंकित करने के लिए निवेदन किया । विद्वान् महाधिवक्ता ने इसके अतिरिक्त, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा कथित सिद्धांत को इंगित किया, यह भी इंगित किया कि अधिनियम, 1894 की धारा 28क के उपबंध दावेदारों के पक्ष में सृजित अधिकारों के लिए एक हितकारी उपबंध है और धारा 4 की अधिसूचना के अन्तर्गत आने वाले एक अन्य दावेदार के मामले में इस न्यायालय के अत्यधिक हितकारी अधिनिर्णय के आधार पर दावेदारों को प्रतिकर का पुनः अवधारण कराने के लिए आवेदन करने का उपचार उपलब्ध है । उन्होंने यह इंगित किया कि न्यायालय के पूर्ववर्ती अधिनिर्णय को अपास्त करने के पश्चात् जो इसमें के दावेदारों द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 23क(1) के अधीन फाइल प्रथम आवेदन के आधार पर दिया गया था, विधि में, उक्त अधिनिर्णय को प्रभावित करेगा और जिसके कारण न्यायालय के नए अधिनिर्णय को पारित करने के पश्चात् उसे वापस ले लिया जाता है जो इसमें के दावेदारों को वैकल्पिक रूप में द्वितीय आवेदन फाइल करने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन नया वाद हेतुक उद्भूत करता है ।

11. हम कार्यवाही करने के पूर्व, अधिनियम, 1894 की धारा 28क को उद्धृत करना समुचित समझते हैं, जो इस प्रकार है :–

> "28क. **न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर की राशि का पुनः अवधारण** – (1) जहां इस भाग के अन्तर्गत अधिनिर्णय में न्यायालय, धारा 11 के अन्तर्गत कलक्टर के द्वारा अधिनिर्णीत राशि से अधिक कोई प्रतिकर की राशि आवेदक को अनुज्ञात करता है तो धारा 4 उपधारा (1) के अन्तर्गत उसी अधिसूचना के द्वारा समावेशित अन्य सभी जमीन में हित रखने वाले व्यक्ति और **जो कलक्टर के अधिनिर्णय से व्यथित भी हो**, धारा 18 के अन्तर्गत कलक्टर को उन्होंने आवेदन नहीं दिया हो तो भी, न्यायालय के अधिनिर्णय की तारीख से तीन माह के अन्दर, कलक्टर को लिखित आवेदन पेश कर यह अपेक्षा कर सकता है कि उन्हें देय प्रतिकर की राशि, न्यायालय के द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर की राशि के आधार पर पुनः अवधारित की जाए :
>
> परन्तु तीन माह की अवधि जिसके अन्दर इस उपधारा के

अन्तर्गत कलक्टर को आवेदन पर दिया जाएगा, उसकी गणना में, दिनांक जिसमें अधिनिर्णय घोषित किया गया और अधिनिर्णय की प्रतिलिपि प्राप्त करने के लिए अपेक्षित समय को अपवर्जित किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) के अन्तर्गत आवेदन प्राप्त होने पर कलक्टर, सभी हितबद्ध व्यक्तियों को नोटिस देने के बाद और उन्हें सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान करने के बाद जांच करेगा और आवेदकों को देय प्रतिकर की राशि को अवधारित करते हुए अधिनिर्णय देगा ।

(3) उपधारा (2) के अन्तर्गत अधिनिर्णय को जिस व्यक्ति ने स्वीकार नहीं किया है वह कलक्टर के लिखित आवेदन के द्वारा अपेक्षा कर सकता है कि कलक्टर के द्वारा मामला न्यायालय के अवधारण के लिए निर्देशित किया जाए और धारा 18 से 28 के प्रावधान यथाशक्य ऐसे निर्देश को लागू होंगे जैसे कि वे धारा 18 के अन्तर्गत निर्देश को लागू होते हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

12. इस उपबंध के अधीन कोई और अनिर्णीत विषय नहीं है । यह सुस्थिर है कि यह उपबंध "एक स्वतःपूर्ण संहिता" है जो न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर रकम का पुनः अवधारण करने के लिए उपचार उपलब्ध कराता है । तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कई मामलों में विचार किया है जिसमें दावेदारों ने उसी अधिसूचना से संबंधित न्यायालय द्वारा पारित पृथक् अधिनिर्णयों के आधार पर अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब लिया है । तथापि, वर्तमान मामले में, विवाद्यक कुछ भिन्न हैं । इस मामले में, इसमें के दावेदारों ने पूर्व में न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर के पुनः अवधारण के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन पहले ही आवेदन देकर इस उपचार का अवलंब ले लिया है । उस आवेदन में, इसमें के दावेदारों के पक्ष में विनिश्चय किया गया था । तथापि, बाद में इस न्यायालय के अधिनिर्णय को, जिसके आधार पर इसमें के दावेदारों को अनुतोष मंजूर किया गया था, उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया और मामले को निर्देश न्यायालय के पास नए सिरे से विचार करने के लिए वापस भेज दिया गया था । प्रतिप्रेषण के पश्चात् निर्देश न्यायालय ने अन्य दावेदारों के पक्ष में अधिनिर्णय पारित किया और उन दावेदारों के प्रतिकर

बढ़ाने को मंजूरी प्रदान कर दी थी जिसके मुकाबले इसमें के दावेदारों में से एक का अधिनिर्णय उसके द्वारा फाइल धारा 28क(1) के अधीन पूर्व आवेदन पर दिया गया था । इसलिए, इसमें के दावेदारों ने पुनः तारीख 1 अगस्त, 1998 के न्यायालय के नए अधिनिर्णय के आधार पर द्वितीय आवेदन फाइल करते हुए धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब लिया ।

13. प्रश्न यह है कि क्या न्यायालय का पश्चात्वर्ती अधिनिर्णय अधिनियम की धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब लिया जा सकता है, इसमें के दावेदारों के पक्ष में नए अधिकारों को पुनर्जीवित कर सकता है ? हमारी राय में, धारा 28क के मूल परिशीलन से यह सुस्पष्ट होता है कि इस उपबंध की स्कीम उन दावेदारों को मात्र एक अवसर देने का है जो अधिनियम, 1894 की धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अधीन अन्य दावेदारों को प्रतिकर बढ़ाने के लिए उपबंध करते हुए, न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण कराने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश करते हुए कलक्टर के समक्ष आवेदन करने में असफल रहे थे । उपधारा (1) के अधीन ऐसा आवेदन प्राप्त करने के पश्चात्, कलक्टर जांच कराने के लिए बाध्य है । उपधारा (2) के निबंधनों में, कलक्टर सभी हितबद्ध व्यक्तियों को नोटिस देने के लिए बाध्य है और आवेदकों को देय प्रतिकर की रकम अवधारण करने के लिए "अधिनिर्णय करने" के पूर्व सभी हितबद्ध व्यक्तियों को युक्तियुक्त सुनवाई का अवसर उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है । इस प्रकार, कलक्टर का उक्त विनिश्चय, अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन अपने पूर्ववर्ती अधिनिर्णय के प्रतिस्थापन में, अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन दिया गया एक अधिनिर्णय है । इस प्रकार, यह अधिनियम, 1894 के भाग III के अधीन दिया गया एक अधिनिर्णय है । उपधारा (3) अभिव्यक्त तौर पर आवेदक/आवेदकों की ओर से किए गए निवेदन पर न्यायालय में निर्देश के माध्यम से कलक्टर द्वारा भाग III के अधीन दिए गए अधिनिर्णय के विरुद्ध उपचार के लिए उपबंध करता है । दूसरे शब्दों में, दावेदार के पास यह विकल्प है कि वह अधिनियम की धारा 28क(2) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय को स्वीकार कर ले अथवा कलक्टर के अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 28क(3) के अधीन उपचार का अवलंब लेते हुए निर्देश

आवेदन फाइल करें । इससे न ही अधिक और न ही कम । आवेदक जो अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय को स्वीकार करता है तो निर्देश न्यायालय द्वारा मामले में माफी देने की उच्च न्यायालय की आकस्मिक परिस्थिति और धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अधीन अन्य दावेदारों के पक्ष में प्रतिकर रकम बढ़ाने के लिए निर्देश न्यायालय द्वारा पुनः विचार करने के कारण वह अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन उपचार को वापस नहीं कर सकता है । साथ ही इस निर्वचन को धारा 28क(1) की स्पष्ट भाषा से भी बल मिलता है । धारा 28क(1) के अधीन उपबंधित उपचार के लिए धारा 11 के अधीन कलक्टर द्वारा मंजूर प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने के लिए आवेदन करना होता है और न कि अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध या उसके परिणामस्वरूप आवेदन करना होता है । ऐसे मामले इस सिद्धांत द्वारा ही शासित होते हैं मात्र इस कारण से कि कुछ अन्य कार्यवाहियों में न्यायालय द्वारा धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अन्तर्गत आने वाले भूमि के संबंध कुछ अन्य दावेदारों के पक्ष में पारित अधिनिर्णय अत्यधिक लाभकारी होता है । उसी आधार पर, तृतीय पक्षकार/दावेदार दूसरी बार के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब नहीं ले सकता है, यद्यपि, ऐसे मामले विचाराधीन होते हैं फिर भी दावेदार धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय आवेदन का अवलंब नहीं ले सकता है । अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन उपचार के लिए मात्र उसी दावेदार को एक अवसर मिलता है जो अधिनियम, 1894 की धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अन्तर्गत आने वाली भूमि में हितबद्ध होता है और अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन कलक्टर द्वारा उसके मामले में पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश करने के उपचार का अवलंब लेने में असफल रहा था ।

14. अविवादित तौर पर अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अधीन विधान एक स्वतः पूर्ण संहिता है और यह उन हितबद्ध व्यक्तियों को उपचार के लिए उपबंध करता है जो अपनी उन भूमियों के संबंध में जो अधिनियम, 1894 की धारा 4 के अधीन उसी अधिसूचना के अन्तर्गत आती हैं, अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश का

उपचार लेने में असफल रहे हैं जिन्होंने अन्य दावेदारों के मामले में न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय का अवलंब लेते हुए प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने के लिए आवेदन किया था । जब एक बार ऐसा व्यक्ति धारा 28क(1) के अधीन उपचार का अवलंब ले लेता है और अधिनियम, 1894 के भाग III के अधीन कलक्टर द्वारा अधिनिर्णय पारित करने पर वह व्यक्ति, अधिनियम, 1894 के अधीन उस उपबंध की उपधारा (3) को ध्यान में रखते हुए मात्र निर्देश के उपचार का ही अवलंब ले सकता है । इस प्रकार, यह समझा जा सकता है कि धारा 28क(1) के अधीन क्रमशः आवेदन ग्रहण करने का कोई प्रश्न नहीं रह जाता है मात्र जिस अनुतोष के आधार पर न्यायालय का अधिनिर्णय पारित किया गया जिसमें धारा 28क के अधीन आवेदक को अनुतोष मंजूर किया गया था जिसे प्रतिप्रेषण के पश्चात् बाद में अपास्त कर दिया गया था और न्यायालय द्वारा नया अधिनिर्णय पारित किया गया था जो उसके लिए और अधिक फायदेमंद था । इसका अनुमोदन नहीं किया जा सकता है । उपबंध, जैसा कि अधिनियमित है, अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन अधिनिर्णय के पश्चात् कलक्टर के समक्ष दावेदारों को मात्र एक बार उपचार उपलब्ध कराता है यद्यपि उसने उस अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश के उपचार का अवलंब नहीं लिया था ।

15. यदि दावेदारों द्वारा प्रस्तुत निर्वचन को स्वीकार कर लिया जाता है तो उसी व्यक्ति की प्रेरणा पर पूर्ववर्ती अवसर पर अधिनियम, 1894 के भाग III में धारा 28क(2) के अधीन पारित कलक्टर के स्वयं अपने अधिनिर्णय के लिए प्रदत्त पुनरीक्षण के अधिकार का प्रभाव अवश्यंभावी हो जाता है और यद्यपि वह व्यक्ति धारा 28क(3) के निबंधनों में विधि द्वारा उपबंधित रूप से उसे चुनौती देने में असफल हो जाता है । दूसरे शब्दों में, धारा 28क(2) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय अंतिम हो जाता है और उस आवेदक पर बाध्यकारी हो जाता है जिसकी प्रेरणा पर उसे किया गया है । इससे भिन्न मत अपनाने का परिणाम धारा 28क को पुनः लिखना होगा और उस संबंधित व्यक्ति के लिए और उपचार अन्तःस्थापित करना होगा जो धारा 11 के अधीन अधिनिर्णय के पश्चात् अपने विकल्प को पहले ही समाप्त कर चुका है और जो धारा 28क(2) के अधीन किए गए अधिनिर्णय के परिणामस्वरूप अधिनियम, 1894 की धारा 28क(3) के अधीन उपलब्ध अभिव्यक्त उपचार

की अवहेलना कर चुका है । इस जटिल पहलू को इसमें के दावेदारों द्वारा महत्व कम कर दिया गया है जिन्होंने द्वितीय आवेदन का अवलंब लिया है ।

16. जैसा कि उपर्युक्त, अधिनियम, 1894 की उपधारा (3) में यथाअन्तर्विष्ट है, धारा 28क(2) के अधीन पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध "उपचार के लिए उपबंध" के अभिव्यक्त उपबंध का अवलंब व्यथित आवेदक मात्र निर्देश के उपचार का अवलंब ले सकता है और न कि धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय आवेदन फाइल करने के लिए । दावेदारों का तर्क तारीख 27 मई, 1988 के न्यायालय के पूर्व अधिनिर्णय को अपास्त करने का वही प्रभाव होगा और कोई उपभोग नहीं होगा । उन्हीं आवेदकों द्वारा उसके लिए फाइल पूर्ववर्ती आवेदन पर अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय का कोई स्वतः परिणाम नहीं होगा । निःसंदेह, "उपचार" संविधि का एक सृजन है । ऐसे उपचार का उपलब्धता में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और इतना ही नहीं, धारा 28क की भाषा से और विशिष्टतया इसकी उपधारा (3) की भाषा से साधारणतया यह स्पष्ट होता है कि उस अधिनिर्णय के विरुद्ध आवेदक को मात्र निर्देश करने का अवलंब लेने का विकल्प ही उपलब्ध होता है । इसलिए, इसमें के दावेदारों के तर्क को स्वीकार करते हुए भी उपबंध को पुनः लिखने और विधायी आशय का विरोध करने का कोई औचित्य नहीं है ।

17. अब हम उस विनिश्चय के प्रति निर्देश कर सकते हैं जिसपर विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया था । **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **हनसोली देवी और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ को इसे निर्दिष्ट करते हुए दो प्रश्नों का उत्तर देना था जो इस प्रकार है :–

> "1. (क) क्या विलम्ब के आधार पर धारा 18 के अधीन निर्देश की ईप्सा करने वाले आवेदन का खारिज किया जाना, भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अर्थान्तर्गत 'आवेदन फाइल नहीं करने' की कोटि में आता है ?
>
> (ख) क्या एक व्यक्ति जिसके, भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन आवेदन को विलम्ब या किसी अन्य तकनीकी आधार पर खारिज कर दिया जाता है तो वह भूमि अर्जन अधिनियम,

---

[1] (2002) 7 एस. सी. सी. 273.

1894 की धारा 28क के अधीन आवेदन कायम रखने का हकदार होता है ?

2. क्या एक व्यक्ति जो भूमि अर्जन कलक्टर के अधिनिर्णय के अनुसरण में विरोध किए बिना प्रतिकर प्राप्त कर लेता है और धारा 18 के अधीन निर्देश की ईप्सा करते हुए आवेदन फाइल नहीं करता है तो वह धारा 28क के अर्थान्तर्गत 'एक व्यथित व्यक्ति' होता है ?"

18. इन प्रश्नों पर विचार करते हुए, न्यायालय ने अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अधीन एक आवेदन कायम रखने के लिए **भारत संघ** बनाम **प्रदीप कुमारी**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा परिगणित शर्तों को उल्लिखित किया । उस विनिश्चय में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा उल्लिखित शर्तों में से एक शर्त यह है कि एक आवेदक द्वारा प्रतिकर के पुनः अवधारण कराने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अधीन मात्र एक आवेदन ही फाइल किया जा सकता है । उस मामले में, आवेदक ने अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश की ईप्सा नहीं की थी । अन्य दावेदारों ने अपने मामलों में अधिनिर्णय के विरुद्ध धारा 18 के अधीन निर्देश का अवलंब लिया था । न्यायालय द्वारा कुछ निर्देशों का तारीख 24 सितम्बर, 1984 के पूर्व निपटारा कर दिया गया था किन्तु कुछ निर्देशों का न्यायालय द्वारा संशोधित अधिनियम, 1894 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् निपटारा किया गया । उस मामले में, पश्चात्वर्ती अधिनिर्णय का अवलंब लेते हुए प्रत्यर्थी सं. 1 ने न्यायालय के तारीख 21 फरवरी, 1987 के अधिनिर्णय के आधार पर फायदे का दावा करते हुए, धारा 28क के अधीन एक आवेदन फाइल किया । कलक्टर ने धारा 28क(2) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय के अधिनिर्णय के अनुसरण में उक्त पक्षकार को अतिरिक्त प्रतिकर अधिनिर्णीत किया । उस विनिश्चय के विरुद्ध, भारत संघ ने इस उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की । उस मामले में उसके बाद प्रत्यर्थी सं. 2 ने 1977 की आर. एफ. ए. सं. 166 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय के आधार पर फायदे का दावा करते हुए, अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अधीन एक आवेदन किया । कलक्टर द्वारा उसके आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि धारा 28क के अधीन उपचार

[1] (1995) 2 एस. सी. सी. 736.

मात्र निर्देश न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर उपलब्ध है और प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण उच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर अनुज्ञेय नहीं था । उस विनिश्चय के विरुद्ध, प्रत्यर्थी सं. 2 ने स्वतंत्र तौर पर एक रिट याचिका फाइल की जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रार्थना की कि उसे निर्देश न्यायालय द्वारा तारीख 10 नवम्बर, 1986 को किए गए अधिनिर्णय के आधार पर धारा 28क के अनुसार फायदा दिया जाए । इस परिप्रेक्ष्य में, न्यायालय ने विवाद्यक मुद्दों का उत्तर दिया और उसी समय पर अधिनियम, 1894 की धारा 28क अधीन आवेदन कायम रखने के लिए पूरा करने वाली शर्तों को उल्लिखित किया जो इस प्रकार हैं :–

> "(i) धारा 28क के प्रवर्तन में आने के पश्चात् भाग III के अधीन न्यायालय द्वारा एक अधिनिर्णय किया गया हो,
>
> (ii) उक्त अधिनिर्णय द्वारा प्रतिकर की रकम, उस संदर्भ में आवेदक को कलक्टर द्वारा धारा 11 के अधीन अधिनिर्णीत रकम से अधिक होना चाहिए,
>
> (iii) धारा 28क के अधीन आवेदन करने वाला व्यक्ति धारा 4क के अधीन उसी अधिसूचना द्वारा आच्छादित अन्य भूमि में हितबद्ध होना चाहिए जिससे उक्त अधिनिर्णय संबंधित है,
>
> (iv) आवेदन करने वाले व्यक्ति ने धारा 18 के अधीन कलक्टर के समक्ष आवेदन नहीं किया हो,
>
> (v) आवेदन, उस अधिनिर्णय की तारीख से 3 मास के भीतर किया गया हो जिसके आधार पर प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण किया जाना ईप्सित है, और
>
> (vi) आवेदक द्वारा प्रतिकर का पुनः अवधारण कराने के लिए धारा 28क के अधीन मात्र एक ही आवेदन किया जा सकता है ।"
>
> (रेखांकन जोर देने के लिए किया गया)

19. अविवादित रूप से, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त विनिश्चय में अधिनियम, 1894 की धारा 28क का निर्वचन किया । उक्त निर्वचन को संविधान, 1950 के अनुच्छेद 141 के अधीन पूर्व-निर्णय के रूप में आबद्धकर माना जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) ऐसा उपबंध नहीं है जो अधिनियम, 1894 की धारा

28क(1) के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय के पश्चात् उपचार सृजित करता हो । यह अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय और विहित शर्तों को पूरा करने के पश्चात् एक ही बार का उपचार है ।

20. उसके बाद, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **बबूआ राम और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का उल्लेख किया । माननीय उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों के न्यायपीठ ने अभिव्यक्ति 'हितबद्ध व्यक्ति' और 'व्यथित व्यक्ति' के अर्थान्वयन और परिसीमा अवधि की गणना के तरीके के बारे में अधिनियम, 1894 की धारा 28क के विस्तार की परीक्षा की थी । पैराग्राफ 36 में इस प्रश्न की परीक्षा करते समय न्यायालय ने उस व्यक्ति के विरुद्ध जिसके विरुद्ध विनिश्चय अंतिम हो जाता है, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 के अधीन प्राग-न्याय के सिद्धांत का उल्लेख किया । उसके बाद पैराग्राफ 36 में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि पक्षकार धारा 28क की उपधारा (1) के अधीन अधिकार और उपचार से पीछे नहीं हट सकता है क्योंकि यह लोक नीति के रूप में परिकल्पित है इसलिए, ऐसा पक्षकार अपने अधिकार को दुबारा नहीं उठा सकता है । वस्तुतः, यह मताभिव्यक्ति इस शर्त के संदर्भ में है कि धारा 28क के अधीन उपचार उस व्यथित व्यक्ति द्वारा ही उपभोग किया जा सकता है जिसने अपने विरुद्ध पारित अधिनिर्णय के बारे में अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन संदर्भ के उपचार का अवलंब ले लिया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस विनिश्चय में माननीय उच्चतम न्यायालय की युक्ति पर जोर दिया जो अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अधिनियमित होने के पूर्व उसके उद्देश्य और कारण और वित्तीय ज्ञापन के प्रति निर्देश करता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस विनिश्चय में यह भी मत व्यक्त किया जो कलक्टर को अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अधीन आवेदन को स्वीकार करने के लिए निर्दिष्ट करता है जो अपील फोरम के प्रतिक्षारत विनिश्चय की परिसीमा अवधि के भीतर फाइल प्रतिकर के पुनः अवधारण तथा अंतिम निर्णय और डिक्री के आधार पर प्रतिकर के पुनः अवधारण के लिए लम्बित है ।

21. वर्तमान मामले में, कलक्टर द्वारा उस विकल्प को पुनः स्थापित

---

[1] (1995) 2 एस. सी. सी. 689.

किया जा सकता था जब इसमें के दावेदारों द्वारा धारा 28क(1) के अधीन प्रथम आवेदन फाइल किया गया था । तथापि, कलक्टर ने उच्च न्यायालय के अंतिम निर्णय और डिक्री की प्रतीक्षा किए बिना धारा 28क(1) के अधीन पूर्ववर्ती आवेदन पर विनिश्चय करने की कार्यवाही की । उच्च न्यायालय ने तारीख 16 मई, 1997 को अंतिम निर्णय और डिक्री पारित की जिसके परिणामस्वरूप मामले में निर्देश न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय को अपास्त करते हुए मामले को निर्देश न्यायालय के पास वापस भेज दिया गया था । यदि कलक्टर द्वारा रिट याचियों द्वारा प्रस्तुत धारा 28(क) के अधीन आवेदन को लम्बित रखा गया होता तो इसमें के दावेदारों को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होता । उस कृत्य या लोप के कारण, इसमें के दावेदारों को कोई लाभ नहीं हो सकता था । जैसा कि पूर्ववर्ती उल्लेख किया जा चुका है, धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय या उत्तरवर्ती आवेदन उसी आवेदक की प्रेरणा पर कायम रखे जाने योग्य नहीं है । उस आवेदक को एकमात्र उपचार निर्देश का अवलंब लेना ही उपलब्ध है जैसा कि अधिनियम की धारा 28क(3) में प्रतिपादित है ।

22. उसके बाद, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **त्रिपुरा राज्य और एक अन्य** बनाम **रूपचन्द दास और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय का उल्लेख किया । इस विनिश्चय में अधिनियम, 1894 की धारा 28क के अधीन उपबंधित परिसीमा अवधि के प्रश्न पर विचार किया गया था और इस बात पर विचार किया गया था कि क्या उपचार का अवलंब लिया जा सकता है जबकि उसी अधिसूचना द्वारा आच्छादित भूमि के संबंध में विभिन्न तारीखों पर अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश न्यायालय द्वारा एक से अधिक अधिनिर्णय पारित किया गया हो । इसलिए, यह विनिश्चय इस प्रतिपादना पर एक प्राधिकार है कि परिसीमा अवधि की गणना न्यायालय के नवीनतम अधिनिर्णय की तारीख से की जा सकती है जिसके आधार पर पुनः अवधारण की ईप्सा की गई है न कि पूर्ववर्ती अधिनिर्णय की तारीख से । वर्तमान मामले की तथ्यात्मक परिस्थितियों में इसका लाभ नहीं उठाया गया है ।

23. उसके बाद, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **गुरप्रीत सिंह** बनाम

---

[1] (2003) 1 एस. सी. सी. 421.

भारत संघ[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ के निर्णय का उल्लेख किया जिसमें न्यायालय ने यह उल्लेख किया है कि जब निर्देश न्यायालय या अपील न्यायालय ने प्रतिकर बढ़ाने का अधिनिर्णय किया हो तो उस न्यायालय का प्रतिकर बढ़ाने का अधिनिर्णय ही प्रवर्तित होता है और विलयन का यह सिद्धांत है कि उस अपील न्यायालय की डिक्री ही प्रवर्तित होगी । हमें यह भय है कि इस विनिश्चय का धारा 28क की अभिव्यक्त भाषा के प्रकाश में कोई लाभ नहीं होगा जिसमें प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने के लिए मात्र एक बार उपचार के लिए आवेदन करना परिकल्पित है और उस आवेदन पर कलक्टर का विनिश्चय अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन एक अधिनिर्णय हो जाता है । दूसरे शब्दों में, वर्तमान मामले में, यद्यपि तारीख 27 मई, 1988 के न्यायालय के अधिनिर्णय को उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 16 मई, 1997 के अधिनिर्णय द्वारा अपास्त कर दिया गया था और अन्य दावेदारों के मामले में तारीख 1 अगस्त, 1988 को निदेश न्यायालय द्वारा नया अधिनिर्णय पारित किया गया था जिसका लाभ इसमें के उन दावेदारों को उपलब्ध नहीं होगा जिन्होंने अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन अपने उपचार को पहले ही समाप्त कर दिया है और उसपर तारीख 15 जनवरी, 1992 के कलक्टर के विनिश्चय को अपनाया है । कलक्टर का विनिश्चय धारा 28क(2) के अधीन एक अधिनिर्णय होने के नाते और धारा 28(क) की उपधारा (3) के अधीन उपलब्ध उपचार के बावजूद अधिनिर्णय अंतिम हो जाने के नाते इसमें के दावेदारों को यह विकल्प खुला नहीं रह जाता है कि वे तारीख 1 अगस्त, 1998 के न्यायालय द्वारा नया अधिनिर्णय पारित करने के कारण ही अधिनियम, 1894 की धारा 28क(1) के अधीन उपचार का पुनः अवलंब ले सकें । पश्चात्वर्ती अधिनिर्णय में न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय के विलयन के सिद्धांत अथवा यद्यपि न्यायालय का पश्चात्वर्ती अधिनिर्णय, उच्च न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती अधिनिर्णय के विलोपन के कारण नए अधिनिर्णय के रूप में समझे जाने से भी इसमें उपदर्शित कारणों से इसमें के दावेदारों को कोई लाभ उपलब्ध नहीं होगा ।

24. उसके बाद, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **भारत संघ** बनाम **मुंशी राम और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के दो

---

[1] (2006) 8 एस. सी. सी. 457.

[2] (2006) 4 एस. सी. सी. 538.

न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय का उल्लेख किया । इस विनिश्चय का लाभ भी इसमें के दावेदारों को उपलब्ध नहीं होता । वस्तुतः, इस विनिश्चय के पैराग्राफ 7 के उद्धृत भाग में, न्यायालय ने ऐसी बेतुकी स्थिति का उल्लेख किया है जिससे यह निकलता है कि जब एक व्यक्ति जिसने कलक्टर के अधिनिर्णय को चुनौती नहीं दी है और अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन निर्देश के लिए आवेदन नहीं दिया है तो वह उस व्यक्ति के मुकाबले उच्चतर प्रतिकर प्राप्त करता है जिसने निर्देश द्वारा कलक्टर के अधिनिर्णय को चुनौती दी थी किन्तु जिनके मामलों में निर्देश न्यायालय द्वारा उच्चतर प्रतिकर अवधारित किया गया था और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घटा दिया गया था तो यह मत व्यक्त करना पर्याप्त है कि इसमें के दावेदारों को अधिनियम, 1894 की धारा 28क(2) के अधीन अधिनिर्णय को अंतिम कराने का अधिकार है और इतना ही नहीं एक बार का उपचार भी समाप्त हो जाता है, हमारी राय में, उसी आवेदक द्वारा धारा 28क(1) के अधीन द्वितीय या उत्तरवर्ती आवेदन विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

25. इसलिए, मामले के संपूर्ण मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए, हम कलक्टर द्वारा अभिलिखित इस राय से सहमत हैं कि उसी आवेदक/रिट याचियों द्वारा फाइल द्वितीय या उत्तरवर्ती आवेदन विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं था । परिणामस्वरूप, हम विद्वान् एकल न्यायाधीश की राय को उलटते हैं ।

26. तद्नुसार, सभी लेटर्स पेटेंट अपीलें सफल होती हैं और क्रमशः अपीलों में आक्षेपित निर्णय अभिखंडित और अपास्त किए जाते हैं और संबंधित रिट याचिका भी खारिज समझी जाए । उन्हीं कारणों से इसके साथ की सी. एम. पी. एम. ओ. भी गुणागुण रहित होने के कारण खारिज किए जाते हैं । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

लेटर्स पेटेंट अपीलें मंजूर की गईं ।

क.

———

कर्नल विश्वनाथ सिंह राणा

बनाम

ले. कर्नल पुष्पेन्दर सिंह राणा

तारीख 2 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 24, 151 – दूरी और वृद्धावस्था के आधार पर वाद अन्तरित करने का विरोध करना – साक्षियों का उसी स्थान का निवासी होना जहां वाद हेतुक उद्‌भूत हआ है – वाद अन्तरित होने से न्याय असफल होने की संभावना नहीं होना – यदि अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं है कि वाद अन्तरित करने से न्याय असफल हो जाएगा तो दूरी और वृद्धावस्था के आधार पर वाद अन्तरित नहीं करने का आवेदन खारिज करना सही, समुचित और न्यायोचित है ।

वर्तमान मामले में, 2012 की सिविल वाद सं. 88 को आर्थिक अधिकारिता में बढ़ोतरी के पश्चात् विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला में अन्तरित कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर वादी ने इस न्यायालय के समक्ष रिट आवेदन फाइल किया । न्यायालय द्वारा रिट आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री जी. डी. वर्मा ने यह जोरदार तर्क दिया कि उनका मुवक्किल 69 वर्ष का है । वह पेशे से चिकित्सक है । धर्मशाला तक की यात्रा करना कठिन है । उसकी पत्नी भी अस्वस्थ है । उसके मुवक्किल का कोई पुत्र नहीं है और मात्र दो पुत्रियां हैं । आर्थिक अधिकारिता में 30 लाख रुपए तक की बढ़ोतरी होने के पश्चात् वाद अन्तरित कर दिया गया था । सिविल वाद को सही ही विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला के न्यायालय में अन्तरित किया गया है । विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला के न्यायालय से इस न्यायालय में अन्तरित करने के लिए कोई आधार नहीं बताया गया है । मामला क्षेत्रीय और आर्थिक अधिकारिता के अनुसार विचारित किया जाता है, जहां वाद हेतुक उद्‌भूत होता है । इस मामले में, वाद हेतुक, जिला कांगड़ा की

क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर उद्भूत हुआ है और विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला को 2012 की सिविल वाद सं. 88 का विचारण करने की क्षेत्रीय और आर्थिक अधिकारिता है । वाद को इस न्यायालय में अन्तरित करने का आदेश नहीं दिया जा सकता है मात्र इस आधार पर कि याची 69 वर्ष का है और उसकी पत्नी अस्वस्थ है । वर्तमान मामले में, वादी का मात्र 250 किलोमीटर अधिक की यात्रा करना ही विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला से इस न्यायालय में मामला अन्तरित करने का आधार नहीं हो सकता है । इसके अतिरिक्त, अभिलेख जिला कांगड़ा के क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर उपलब्ध हैं । साक्षियों में से अधिकतर साक्षी जिला कांगड़ा से हैं क्योंकि वाद हेतुक जिला कांगड़ा में ही उद्भूत हुआ है । इस बारे में कोई आधार नहीं बताया गया है कि न्याय असफल हो जाएगा यदि वाद अन्तरित नहीं किया जाता है, जैसी कि प्रार्थना की गई है । (पैरा 3, 4 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2003]	ए. आई. आर. 2003 उड़ीसा 129 : **दीनबन्धु पात्रो** बनाम **स्टेट बैंक आफ इंडिया** ;	9
[1990]	(1990) 1 एस. सी. सी. 4 : **डा. सुब्रमणियम स्वामी** बनाम **रामकृष्ण हेगड़े** ;	8
[1980]	[1980] 2 उम. नि. प. 732 = (1979) 4 एस. सी. सी. 358 : **इंडियन ओवरसीज बैंक, मद्रास** बनाम **केमिकल्स कंस्ट्रक्शन कम्पनी और अन्य** ;	6
[1979]	ए. आई. आर. 1979 मध्य प्रदेश 50 : **जगतगुरु श्री शंकराचार्य ज्योतिष पीठाधीश्वर श्री स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती** बनाम **रामजी त्रिपाठी और अन्य** ;	7
[1951]	ए. आई. आर. (38) 1951 कलकत्ता 239 : **बाबू राम अग्रवाल** बनाम **जमुनादास रामजी एण्ड कम्पनी** ।	5

सिविल (प्रकीर्ण) अधिकारिता : 2013 की सी. एम. पी. एम. ओ. सं. 4212.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के साथ धारा 24 के अधीन आवेदन ।

आवेदक की ओर से सर्वश्री जी. डी. वर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ वी. सी. वर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह आवेदन, वादी की ओर से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के साथ धारा 24 के अधीन 2012 की सिविल वाद सं. 88, शीर्षक कर्नल विश्वनाथ सिंह राणा बनाम ले. कर्नल पुष्पेन्दर सिंह राणा को विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला से इस न्यायालय में अन्तरण करने की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया है ।

2. इस आवेदन का अधिनिर्णयन करने के लिए आवश्यक मुख्य तथ्य यह हैं कि आवेदक/वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "वादी" कहा गया है) ने इस न्यायालय के समक्ष हक के आधार पर घोषणा की डिक्री और व्यादेश मंजूर करने के लिए भी वाद फाइल किया था । तारीख 19 सितम्बर, 2012 को प्रतिवादियों की तामीली के लिए नोटिसें जारी की गईं थीं । अधिकतर प्रतिवादियों पर नोटिसें तामील हो गईं थीं । वादी द्वारा प्रतिवादी सं. 7 की तामीली के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 5 के नियम 20 के अधीन आवेदन फाइल किया गया था । प्रतिवादी सं. 1 और 2 की ओर से लिखित कथन फाइल किए गए थे । 2012 की सिविल वाद सं. 88 को आर्थिक अधिकारिता में बढ़ोतरी के पश्चात् विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला में अन्तरित कर दिया गया था ।

3. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री जी. डी. वर्मा ने यह जोरदार तर्क दिया कि उनका मुवक्किल 69 वर्ष का है । वह पेशे से चिकित्सक है । धर्मशाला तक की यात्रा करना कठिन है । उसकी पत्नी भी अस्वस्थ है । उसके मुवक्किल का कोई पुत्र नहीं है और मात्र दो पुत्रियां हैं ।

4. आर्थिक अधिकारिता में 30 लाख रुपए तक की बढ़ोतरी होने के पश्चात् वाद अन्तरित कर दिया गया था । सिविल वाद को सही ही विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला के न्यायालय में अन्तरित किया गया

है । विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला के न्यायालय से इस न्यायालय में अन्तरित करने के लिए कोई आधार नहीं बताया गया है । मामला क्षेत्रीय और आर्थिक अधिकारिता के अनुसार विचारित किया जाता है, जहां वाद हेतुक उद्भूत होता है । इस मामले में, वाद हेतुक, जिला कांगड़ा की क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर उद्भूत हुआ है और विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला को 2012 की सिविल वाद सं. 88 का विचारण करने की क्षेत्रीय और आर्थिक अधिकारिता है । वाद को इस न्यायालय में अन्तरित करने का आदेश नहीं दिया जा सकता है मात्र इस आधार पर कि याची 69 वर्ष का है और उसकी पत्नी अस्वस्थ है ।

5. विद्वान् एकल न्यायाधीश, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **बाबू राम अग्रवाल** बनाम **जमुनादास रामजी एण्ड कम्पनी**[1] वाले मामले में सुविधा का संतुलन अवधारित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धांत अधिकथित किया है :–

> "14. अभिव्यक्ति 'सुविधा का संतुलन' गंभीर विधिक विचार उद्भूत करता है और इसकी कई तरह से न्यायिक निर्वचन किए जाने अपेक्षित हैं । दूसरे शब्दों में, साधारण निबंधनों में यह प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न होता है । सुविधा का संतुलन न केवल एकमात्र वादी की सुविधा है न ही एकमात्र प्रतिवादी की अपितु यह दोनों के लिए सुविधा का संतुलन होता है । एक वाद का विचारण करने के लिए सुविधा का संतुलन अवधारित करने में, न्यायालय को निम्नलिखित बातों को विचार में लेना चाहिए (1) वादी की सुविधा या असुविधा और वादी को अपना स्वयं का फोरम चुनने का अधिकार (2) प्रतिवादी की सुविधा या असुविधा (3) वाद का समुचित विचारण के लिए अपेक्षित साक्षियों की सुविधा या असुविधा (4) वाद में अन्तर्ग्रस्त मुख्य मुद्दे पर साक्ष्य की प्रकृति के बारे में विचारण करने के विशिष्ट स्थान की सुविधा या असुविधा और (5) वाद में विवाद्यक की प्रकृति ।"

6. **इंडियन ओवरसीज बैंक, मद्रास** बनाम **केमिकल्स कंस्ट्रक्शन कम्पनी और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पक्षकारों में से एक की बेहतर असुविधा या खर्चे या कारक के रूप में विचारित किए जा सकते हैं, किन्तु वाद अन्तरित करने के लिए एकमात्र आधार नहीं हो सकता है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] ए. आई. आर. (38) 1951 कलकत्ता 239.

[2] [1980] 2 उम. नि. प. 732 = (1979) 4 एस. सी. सी. 358.

"16. संहिता की धारा 24 के अधीन अन्तरण और प्रत्याहरण की सामान्य शक्ति को शासित करने वाला सिद्धान्त यह है कि वादी एक वाद स्वामी के रूप में होता है और इस कारण वह अपना वाद किसी भी अदालत में, जिसके लिए विधि उसे अनुज्ञा देती हो, फाइल करने के लिए हकदार हैं । न्यायालय को सरलता से उस अदालत को बदलना नहीं चाहिए और दूसरे न्यायालय में जाने के लिए उस पर इस प्रकार दबाव नहीं डालना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप उसके वाद के अभियोजन में असुविधा और व्यय में वृद्धि हो । दूसरे न्यायालय में कार्यवाहियां करने में तनिक अधिक सुविधा मात्र होना यद्यपि एक महत्वपूर्ण तथ्य है फिर भी अन्तरण को न्यायोचित ठहराने के लिए सदैव यह कोई निश्चित आधार नहीं है ।

19. यहां दोनों वादों, एक जिला न्यायालय सियोनी, मध्य प्रदेश में और दूसरा याची द्वारा फाइल किया गया मद्रास उच्च न्यायालय में, पक्षकार वे ही हैं, सिवाय मद्रास वाले वाद में 5 अन्य व्यक्तियों के जिन्हें यहां प्रथम प्रत्यर्थी के भागीदारों के रूप में अभिकथित किया गया है और जिसमें से दो ने साम्पार्श्विक प्रतिभूतियां दी हैं और प्रत्यर्थियों के रूप में भी सम्मिलित हुए हैं । इसके अतिरिक्त, दोनों वादों में महत्वपूर्ण विवाद्यक समान हैं या परस्पर निर्भर हैं । उदाहरण के तौर पर सियोनी वाद में विवाद्यक संख्या 14 मुख्यतया वैसा ही है जैसा याची द्वारा फाइल किए गए वाद में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा विरचित विवाद्यक संख्या 7 है । अन्य बातों के साथ-साथ सियोनी वाद में विवाद्यक संख्या 9, 10, 12, 18, 19 और 20 मद्रास उच्च न्यायालय में विरचित विवाद्यक सं. 1, 2, 6, 8, 9 और 10 के विनिश्चयों पर बहुत अधिक आधारित है । इन दोनों वादों में से प्रत्येक में उत्पन्न होने वाला एक ही मुख्य प्रश्न द्वितीय प्रत्यर्थी और चतुर्थ प्रत्यर्थी के क्रमशः विनिमय-पत्रों के प्रतिगृहीता और प्रत्याभूति-दावा के रूप में संदाय करने के लिए और उन पत्रों के अधीन देय संदाय करने के दायित्व से संबंधित है । यदि इन दोनों वादों को उनकी मूल अदालत में जारी रखने की इजाजत दी जाती है तो मियादी बिलों के अधीन और प्रत्याभूति के अधीन दायित्व के प्रश्न पर निष्कर्षों के विपरीत होने की संभावना है । इस बात में कोई विवाद नहीं है (हम से यह कहा गया है) कि याची बैंक को बिलों का संदाय मद्रास में किया जाना था । दोनों वादों में साक्ष्य ज्यादातर समान होगा और मद्रास में स्थानीय रूप से उपलब्ध होगा । मद्रास उच्च न्यायालय में

सियोनी वाद का अन्तरण समान विवाद्यकों के विचारण में बाहुल्य को दूर करेगा और विरोधी विनिश्चयों के खतरे से बचाएगा । इन परिस्थितियों के अधीन स्पष्ट रूप से 'न्याय के हित में यह समीचीन हैं' कि दोनों वादों का विचारण मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा उसकी मूल शाखा में उसी न्यायाधीश/न्यायाधीशों द्वारा किया जाना चाहिए ।"

7. **जगतगुरु श्री शंकराचार्य ज्योतिष पीठाधीश्वर श्री स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती** बनाम **रामजी त्रिपाठी और अन्य**[1] वाले मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान् खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अन्तरण करने के लिए पर्याप्त आधारों को सिद्ध करने का भार गंभीर रूप से आवेदक पर होता है । सुविधा के संतुलन की प्रबलता, वाद अंतरण करने के लिए मुख्य रूप से विचारणीय होता है । विद्वान् खंड न्यायपीठ ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"11. वादी, वाद में वास्तविकतः और प्रत्यक्षतः पक्षकार के रूप में हितबद्ध होने के नाते, को अपनी पसंद का फोरम चुनने का अधिकार होता है और उस अधिकार में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए सिवाय अत्यधिक मजबूत आधारों पर । खोज, न्याय की होनी चाहिए और न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि पक्षकारों के बीच अत्यधिक न्याय हो सकेगा जब वादी को उसकी पसन्द के फोरम में अपना वाद जारी रखना मंजूर करने से इनकार किया जाता है । अन्तरण करने के लिए पर्याप्त आधारों को सिद्ध करने का अत्यधिक भार आवेदक पर होता है । यह सर्वसम्मत राय है कि सुविधा के संतुलन की प्रबलता, वाद अंतरण करने के लिए मुख्य रूप से विचारणीय होता है । इसलिए, पक्षकारों की सुविधा अन्तरण का वैध आधार होता है, यद्यपि, अन्तरण के लिए इसका तात्विक आधार होने के बारे में कोई सर्वसम्मति नहीं है । [देखें – राम कुमार **बनाम** तुला राम (ए. आई. आर. 1920 पटना 138 (2), ठाकुर सिंह **बनाम** ठकुराइन शिव रतन कौर (ए. आई. आर. 1923 अवध 30), सरोज बशिनी **बनाम** गिरजा प्रसाद (ए. आई. आर. 1926 कलकत्ता 326), फर्म कन्हैयालाल **बनाम** जुमेरलाल (ए. आई. आर. 1940 नागपुर 145), बसन्ती देवी **बनाम** श्रीमती सहोदरा (ए. आई. आर. 1935 इलाहाबाद 979), जी. एम. रजुला **बनाम** गोविन्दन् नायर (ए. आई. आर. 1938 मद्रास 745), वमन **बनाम** रघुनाथ (ए. आई. आर. 1949

[1] ए. आई. आर. 1979 मध्य प्रदेश 50.

बाम्बे 263), पूर्णा चन्द्र **बनाम** सामंत (ए. आई. आर. 1953 उड़ीसा 46), सदायन्दी नाडर **बनाम** वेणुगोपाल (ए. आई. आर. 1960 केरल 91), ज्योत्सना राजे **बनाम** जगपाल सिंह (ए. आई. आर. 1961 पंजाब 560), सुन्दरदास **बनाम** एच. सी. मिल्स (ए. आई. आर. 1971 कलकत्ता 398) और कुमारगुरुबारा मंदिर **बनाम** के. एस. मुदालियर (ए. आई. आर. 1977 मद्रास 27)] । फर्म कन्हैयालाल (उपर्युक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

> 'इस प्रश्न का विनिश्चय करने में कि क्या वाद का अन्तरण आदेश करने के लिए यह समीचीन होता है कि उन पक्षकारों की सुविधा एक आवश्यक कारक है जो पक्षकार के रूप में अन्तर्वलित है किन्तु यह सुस्पष्ट है कि दोनों पक्षकारों की सुविधा का महत्व होता है और मामला अन्ततोगत्वा सुविधा के संतुलन पर निर्भर हो जाता है ।'

इस न्यायालय ने लक्ष्मीकांत **बनाम** गोविन्दराव (ए. आई. आर. 1927 नागपुर 219) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां विभाजन वाद में संपत्ति का एक बड़ा भाग स्थित है, यह उस जिले में विचारित किया जाएगा । के. एल. दफ्तरी **बनाम** के. एल. दुबे (ए. आई. आर. 1955 नागपुर 44) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

> 'चूंकि, दोनों वाद एक ही संव्यवहार से संबंधित हैं और उनमें एक ही तथ्य का प्रश्न अन्तर्वलित है इसलिए यह अपेक्षनीय है कि उनका उसी न्यायाधीश द्वारा विचारण किया जाना चाहिए ।'

डेविड **बनाम** जेम्स आर्थर (ए. आई. आर. 1958 केरल 82) वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि वादी ने प्रतिवादी को तंग करने के दुराशय से विशिष्ट न्यायालय का चुनाव किया है तो वाद को अन्तरित कर देना चाहिए ।

12. एक अन्य कारक यह है कि न्याय के हित को भी विचार में लिया जाना चाहिए । एक मामला अन्तरित किया जा सकता है यदि वाद के एक पक्षकार को यह युक्तियुक्त आशंका हो कि उसे उस न्यायालय से न्याय प्राप्त नहीं होगा जहां वाद लम्बित है । यह इस कारण से कि विचारण न्यायाधीश प्रतिकूल है अथवा इस कारण से कि मौजूदा हालात में उस स्थान पर ऋजु विचारण की संभाव्यता नहीं

है । इस न्यायालय ने रघुनन्दन **बनाम** जी. एच. चावला [1963 एम. पी. एल. जे. (नोट्स) 117] में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

> 'विद्वान् जिला न्यायाधीश को इस अतिमान्यताप्राप्त प्रास्थिति को नहीं भूलना चाहिए कि क्या आवेदक को इस बात की आशंका है कि उसे एक विशिष्ट न्यायाधीश के हाथों से न्याय प्राप्त नहीं हो सकता है जिसके लिए युक्तियुक्त आशंका थी या ऐसी सामग्रियों को अवधारित नहीं किया जा सकता है जो अभिलेख पर हैं और संबंधित न्यायाधीश के स्पष्टीकरण पर भी आशंका है । अन्तरण के लिए पर्याप्त आधारों को सिद्ध करने का भार गंभीर रूप से आवेदक पर होता है । मात्र काल्पनिक संदेह या मनगढ़ंत विश्वास, अन्तरण के लिए आधार उद्भूत नहीं कर सकता है । इस दृष्टिकोण से, अभिलेख पर की परिस्थितियों में, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा अपना गया मत स्वेच्छाचारी था क्योंकि अन्तरण की ईप्सा आवेदक द्वारा की गई थी ।'

13. गुणागुणों पर, हम विद्वान् एकल न्यायाधीश के इस मत से पूर्णरूपेण सहमत हैं कि अधिसंभाव्यता की प्रबलता इलाहाबाद में वाद का विचारण करने के पक्ष में है । वाद के सभी प्रतिवादी उत्तर प्रदेश के रहने वाले हैं । पूर्ववर्ती कार्यवाहियों में वादी ने भी अपना निवास स्थान बनारस उत्तर प्रदेश में दर्शित किया था । ज्योतिषपीठ की अधिकतर संपत्तियां उत्तर प्रदेश में स्थित हैं । स्वयं वादी के अनुसार उत्तर प्रदेश में स्थित संपत्तियों का कुल मूल्य 7,12,000/- रुपए है जबकि मध्य प्रदेश में स्थित संपत्तियों का मूल्य मात्र 61,000/- रुपए हैं । पूर्ववर्ती वाद में मूल्यांकन मात्र 13,500/- रुपए किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 1 ने मूल्यांकन को चुनौती दी है और यह प्राख्यान किया है कि मात्र उत्तर प्रदेश में स्थित अचल संपत्तियों का मूल्य ही 8 लाख रुपए से कम नहीं हो सकता है । वादी ने संशोधन करते हुए, जबलपुर, मध्य प्रदेश में स्थित संपत्तियों का मूल्य 500/- रुपए से 5 लाख रुपए तक की बढ़ोतरी करते हुए मध्य प्रदेश में स्थित संपत्तियों के मूल्यांकन में 5 लाख रुपए तक की बढ़ोतरी की है । जो भी हो सियोनी में स्थित संपत्ति मात्र 25,060/- रुपए तक ही मूल्यांकित की गई है । सियोनी में यह वाद फाइल करने के लिए फोरम चुनने हेतु वादी की सुविधा के सिवाय और कोई वैध कारण नहीं है जबकि पूर्ववर्ती मुकदमे इलाहाबाद और बनारस न्यायालयों में फाइल किए गए थे । वर्तमान वाद फाइल करने के लिए वाद हेतुक और विषयवस्तु,

सिविल वाद सं. 3/63 के ही समान है । इस वाद की सम्पत्तियों की सूची को पूर्ववर्ती वाद में सम्पत्तियों की सूची से अन्तरित कर लिया गया है । वादी ने अपने अभिवचन में यह स्वीकार किया है कि पूर्ववर्ती वाद लम्बित है । हम इस बात से संबंधित नहीं हैं कि क्यों वादी ने स्वामी कृष्ण बोध आश्रम के विधिक प्रतिनिधि के रूप में उस वाद को जारी रखा या जारी नहीं रखा और क्या वर्तमान वाद सक्षम है या नहीं । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन पूर्ववर्ती वाद में परीक्षा किए गए सभी साक्षी उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे । वर्तमान मामले में, वाद हेतुक तारीख 7 दिसम्बर, 1973 को शंकराचार्य के रूप में वादी का पीठासीन होना दर्शित किया गया है । सुस्पष्टतः, यह बनारस में था । वादी ने प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में निष्पादित तारीख 18 दिसम्बर, 1952 के विल को भी चुनौती दी है । इस बारे में, कोई संदेह नहीं हो सकता है कि विल को साबित करने के लिए और शंकराचार्य के रूप में वादी के पीठासीन होने को भी साबित करने के लिए, साक्षियों में से अधिकतर साक्षी उस स्थान से होने चाहिए जहां इन घटनाओं का होना तात्पर्यित है । इसलिए, सियोनी में वाद विचारित होना पक्षकारों के लिए सुविधाजनक नहीं होगा । दोनों पक्षकारों के स्थायी काउंसेल इलाहाबाद से हैं और वे इस कार्यवाही में उपस्थित हुए हैं । इसलिए, इस वाद में यह बेहतर होगा यदि मामला इलाहाबाद में विचारित किया जाए । वादी ने वादपत्र में यह दर्शित किया है कि वाद हेतुक का एक भाग सियोनी में उद्भूत हुआ है क्योंकि ज्योषितपीठ की संपत्तियों का कुछ भाग सियोनी में स्थित है किन्तु, उन अन्य मौजूद कारकों में से इस कारक को महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता है कि जो यह अपेक्षा करते हैं कि वाद, इलाहाबाद में विचारित होना चाहिए । यदि वादी सफल होता है तो डिक्री के निष्पादन को उत्तर प्रदेश में प्रभावी बनाया जा सकता है । अपीलार्थी ने इस बारे में कोई सबूत नहीं दिया है कि उसे इलाहाबाद में ऋजु विचारण नहीं मिल सकता है । सम्पूर्ण विचार-विमर्श और मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, मामले को सही ही जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद में अन्तरित किया गया है ।"

8. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **डा. सुब्रमणियम स्वामी** बनाम **रामकृष्ण हेगड़े**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 25 के अधीन मामले के अन्तरण के लिए

[1] (1990) 1 एस. सी. सी. 4.

सर्वोच्च विचार न्याय की आवश्यकता होनी चाहिए । पक्षकारों या उनमें से किसी पक्षकार को मात्र सुविधा ही इस शक्ति के प्रयोग के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है अपितु यह भी दर्शित होना चाहिए कि चुने गए फोरम में विचारण का परिणाम न्याय से इनकार करना होगा । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "8. पुरानी धारा के अधीन राज्य सरकार उस राज्य के उच्च न्यायालय में लम्बित वाद, अपील या अन्य कार्यवाही का अन्तरण उस वाद का विचारण या सुनवाई करने वाले न्यायाधीश से यह रिपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात् कि ऐसा अन्तरण करने के लिए युक्तियुक्त आधार मौजूद हैं, परन्तु उस राज्य की राज्य सरकार जिसमें अन्य उच्च न्यायालय स्थित हैं अन्तरण करने की अपनी मूल सहमति दे देती है । वर्तमान धारा 25 माननीय उच्चतम न्यायालय को अन्तरण करने की शक्ति प्रदत्त करती है और इसका व्यापक विस्तार भी है । वर्तमान उपबंध के अधीन माननीय उच्चतम न्यायालय किसी भी प्रक्रम पर किसी वाद, अपील या अन्य कार्यवाही का अन्तरण एक राज्य में स्थित उच्च न्यायालय या अन्य सिविल न्यायालय से अन्य राज्य के उच्च न्यायालय या अन्य सिविल न्यायालय में कर सकता है यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा आदेश करना न्याय उद्देश्य के लिए समीचीन है । इस धारा के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए आधारभूत सिद्धांत यह हैं कि वाद, अपील या अन्य कार्यवाही का अन्तरण न्याय के उद्देश्य की मांग है । अत्यावश्यकता का प्रश्न प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है किन्तु इस शक्ति का प्रयोग करने के लिए सर्वोच्च विचार न्याय के उद्देश्य की प्राप्ति होनी चाहिए । यह सत्य है कि यदि वाद का विचारण करने के लिए संहिता के अधीन एक से अधिक न्यायालय की अधिकारिता है तो वाद में पक्षकार के रूप में प्रत्यक्षतः या वास्तविकतः हितबद्ध होने के नाते वादी को न्यायालय चुनने का अधिकार होता है और प्रतिवादी यह मांग नहीं कर सकता है कि वाद का विचारण उसके लिए सुविधाजनक किसी विशिष्ट न्यायालय में किया जाना चाहिए । मात्र पक्षकारों या उनमें से किसी पक्षकार की मात्र सुविधा ही इस शक्ति का प्रयोग करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है अपितु यह भी दर्शित होना चाहिए कि चुने हुए न्यायालय में विचारण के परिणामस्वरूप न्याय से इनकार करना होगा । मामले वहां अज्ञात नहीं होते हैं जहां एक पक्षकार चुने हुए फोरम में न्याय की ईप्सा करता है जबकि ऋजु विचारण की ईप्सा करने वाला अन्य पक्षकार प्रतिकूल

रूप से अत्यधिक असुविधा के कारण न्याय से वंचित हो जाता है । इसलिए, संसद् ने इस न्यायालय में इस निर्देश के साथ अन्तरण की शक्ति निहित की है कि एक न्यायालय से अन्य न्यायालय में मामले अन्तरित किए जा सकते हैं यदि न्याय के उद्देश्य के लिए ऐसा करना समीचीन हो । न्याय के उद्देश्य के लिए शब्द अत्यधिक व्यापक हैं – जिसके लिए माननीय उच्चतम न्यायालय ने मामले में विवेक का प्रयोग करने के लिए सलाह दी है क्योंकि इस शक्ति का प्रयोग करने के लिए सभी अपेक्षित परिस्थितियों को प्रकट करना या न्यायोचित ठहराना संभाव्य नहीं है । किन्तु, इस शक्ति का प्रयोग करने के लिए सर्वोच्च विचार यह देखने के लिए होना चाहिए कि विधि के अनुसार न्याय हुआ है, यदि यह प्राप्त करने के लिए कि मामले के अन्तरण का उद्देश्य सकारात्मक है, तो मामले का अन्तरण करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए यद्यपि यह वादी को कुछ असुविधा कारित कर सकता है । मामले का अन्तरण करने के लिए याची के अभिवाक् का परीक्षण इस कसौटी पर कसना चाहिए ।

10. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह इंगित किया कि याची की मात्र सुविधा और प्रत्यर्थी को प्रतिकूलता कारित होने की संभावना का अभाव होना ही न्यायालय के लिए यह भार नहीं होना चाहिए कि बाम्बे उच्च न्यायालय से कर्नाटक में स्थित सिविल न्यायालय में वाद अन्तरित करने का निर्देश दे सकता है । हम पहले ही इस बात पर जोर दे चुके हैं कि संहिता की धारा 25 के अधीन मामले का अन्तरण करने के लिए सर्वोच्च विचार न्याय की आवश्यकता होना चाहिए । यदि, न्याय के उद्देश्य की ऐसी मांग है तो इस उपबंध के अधीन अन्तरण किया जा सकता है इस बात के होते हुए भी कि वाद में प्रत्यक्षतः और वास्तिवकतः हितबद्ध होने के नाते वादी को फोरम चुनने का अधिकार और वादी की सुविधा आदि न्याय की आवश्यकता का ग्रहण नहीं कर सकता है । न्याय किसी भी कीमत पर होना चाहिए, यदि मामले का एक न्यायालय से अन्य न्यायालय में अन्तरण करने की आवश्यकता हो । भारत संघ **बनाम** सिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति [1986] 3 एस. सी. आर. 472 = ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 1896 वाले मामले में इस न्यायालय ने यह उल्लेख करते समय यह सावधानी बरती कि इस शक्ति का प्रयोग इस परिस्थिति में किया जाना चाहिए कि न्यायालय को ऐसा कार्य करने में कोई हिचकिचाहट नहीं हो यदि समुचित मामले में न्याय के उद्देश्य की ऐसी मांग है ।'

9. **दीनबन्धु पात्रो** बनाम **स्टेट बैंक आफ इंडिया**[1] वाले मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि "विचारण या उसका निपटारा करने की क्षमता" शब्द से अभिप्राय उस न्यायालय की अपेक्षित दोनों आर्थिक और क्षेत्रीय अधिकारिता की क्षमता से है । अन्तरण करने के लिए अभिवाक् या याचिका में ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि किस प्रकार आवेदक का अन्तरण करने की ईप्सा करने में हित उस स्थान से वाद का अन्तरण करने में बेहतर होगा जहां अन्तरण करने की ईप्सा की गई है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "9. वर्तमान मामले में, यह प्रतीत होता है कि वाद उस आस्का न्यायालय में संस्थित किया गया है जिसमें दोनों आर्थिक अधिकारिता के साथ ही क्षेत्रीय अधिकारिता निहित है और न तो अभिवाक् में या न ही याचिका में यह उपदर्शित करने के लिए कुछ है कि किस प्रकार प्रतिवादी का हित उस मामले को ब्रह्मपुर न्यायालय में अन्तरित करने से बेहतर होगा । आस्का न्यायालय के पास वाद का विचारण करने की आर्थिक और क्षेत्रीय अधिकारिता है, मैं विद्वान् जिला न्यायालय, गंजम्म गजपत, ब्रह्मपुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त करने के लिए कोई न्यायोचितता नहीं पाता हूं ।"

10. वर्तमान मामले में, वादी का मात्र 250 किलोमीटर अधिक की यात्रा करना ही विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला से इस न्यायालय में मामला अन्तरित करने का आधार नहीं हो सकता है । इसके अतिरिक्त, अभिलेख जिला कांगड़ा के क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर उपलब्ध हैं । साक्षियों में से अधिकतर साक्षी जिला कांगड़ा से हैं क्योंकि वाद हेतुक जिला कांगड़ा में ही उद्भूत हुआ है । इस बारे में कोई आधार नहीं बताया गया है कि न्याय असफल हो जाएगा यदि वाद अन्तरित नहीं किया जाता है, जैसी कि प्रार्थना की गई है ।

11. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त विश्लेषण और चर्चा को ध्यान में रखते हुए, याचिका में कोई गुणागुण नहीं है और इसे खारिज किया जाता है । आवेदन/आवेदनों यदि कोई हों, भी खारिज हो जाएंगे । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट आवेदन खारिज किया गया ।

क.

---

[1] ए. आई. आर. 2003 उड़ीसा 129.

मस्त राम

बनाम

कान्ता देवी और अन्य

तारीख 10 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 और 91] – विल का निष्पादन – आक्षेप – संदेहास्पद परिस्थितियों का समाधान नहीं होना – मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों से निष्पादन साबित नहीं होना – निष्पादन अकृत, अवैध और शून्य पाया जाना – इसका नामांतरण खारिज होना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि विल का निष्पादन अकृत, अवैध और शून्य है तो ऐसे विल के आधार पर की गई सभी कार्यवाहियां जैसे नामांतरण आदि भी अकृत, अवैध और शून्य होगी ।

वर्तमान मामले में, विवाद्य विषयवस्तु, मोहल सोले बनेर, मौजा लाम्बागांव, तहसील जयसिंहपुर, जिला कांगड़ा में स्थित खाता सं. 10, खतौनी सं. 23, खसरा सं. किट 14, माप 1-35-18 हेक्टेयर भूमि है । प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 वाद भूमि के स्वामी मृतक झांगू राम की पुत्रियां हैं जबकि अपीलार्थी मस्त राम और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 बालक राम और जगत राम तथा प्रोफार्मा प्रत्यर्थी सं. 4 प्रभी देवी (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "प्रत्यर्थी" कहा गया है), वाद भूमि के स्वामी मृतक झांगू राम के क्रमशः पुत्र और विधवा हैं । वादियों के अनुसार, उनके पिता स्वर्गीय श्री झांगू राम ने वाद भूमि के संबंध में कभी भी कोई विल निष्पादित नहीं की थी और उनकी मृत्यु पर उनकी सम्पत्तियां उनके पक्ष में और अपीलार्थी-प्रतिवादी मस्त राम तथा प्रोफार्मा प्रत्यर्थियों के पक्ष में उत्तराधिकार के लिए खुली थीं । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने उसका प्रथम श्रेणी विधिक उत्तराधिकारी होने के नाते तारीख 1 जुलाई, 1984 का एक विल प्रतिपादित किया और यह अभिवाक् किया कि विल के अनुसार, वाद भूमि अन्य प्रतिवादियों और झांगू राम की द्वितीय विधवा श्रीमती मलकान देवी के साथ उसके द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त कर ली गई थी । उसके अनुसार, वाद भूमि का

नामांतरण मंजूर कर लिया गया था और यह वादियों की उपस्थिति में उनके पक्ष में सहायक कलक्टर, द्वितीय ग्रेड द्वारा प्रमाणित किया गया था । इसलिए, उसके अनुसार वादी वर्तमान वाद फाइल करने से अपने कार्य, विलेख और आचरण द्वारा विबंधित है और परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित भी है और उन्हें वाद फाइल करने के लिए सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है, यह कायम रखे जाने योग्य भी नहीं है । तथापि, श्री बालक राम, जगत राम और प्रभी देवी क्रमशः प्रतिवादी सं. 1, 2, 4 ने अपने हित-पूर्वाधिकारी स्वर्गीय श्री झांगू राम द्वारा अपने जीवनकाल के दौरान विल के निष्पादन से इनकार किया और इस प्रकार, वादियों द्वारा उद्भूत दलीलों का समर्थन किया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 3 का सकारात्मक उत्तर देते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि मृतक झांगू राम ने अपने जीवनकाल के दौरान एक वैध विल निष्पादित की थी और वाद भूमि के नामांतरण को मंजूर और उसके आधार पर उसके अनुप्रमाणन को विधिक और विधिमान्य अभिनिर्धारित किया । इसलिए, पक्षकार, वाद भूमि के कब्जे सहित संयुक्त स्वामी नहीं पाए गए और विवाद्यक सं. 1 और 2 का उत्तर वादियों के विरुद्ध दिया गया जबकि विवाद्यक सं. 3 का उत्तर अपीलार्थी-प्रतिवादी के पक्ष में दिया गया । यह निष्कर्ष निकाला गया कि वादी वाद फाइल करने से विबंधित है और यह भी कि उन्हें कभी भी सुने जाने का कोई भी अधिकार नहीं था न ही वाद फाइल करने के लिए उनके पास कोई वाद हेतुक था । विवाद्यक सं. 6 का उत्तर भी अपीलार्थी-प्रतिवादी के पक्ष में दिया गया क्योंकि निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए मलकान देवी आवश्यक पक्षकार थी और क्योंकि उसे इस प्रकार सूचीबद्ध नहीं किया गया था, इसलिए, वाद आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है । यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि वादियों की उपस्थिति में लेखबद्ध तारीख 5 जुलाई, 1984 के विल के आधार पर अपीलार्थी-प्रतिवादी और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के पक्ष में वाद भूमि का नामांतरण मंजूर और अनुप्रमाणित था और इस प्रकार, वाद, तीन वर्षों की अवधि के पश्चात् फाइल किए जाने के कारण परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित भी अभिनिर्धारित किया गया । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 10 का उत्तर अपीलार्थी-प्रतिवादी के पक्ष में पुनः देते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि वाद, वादियों और प्रोफार्मा प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों के बीच दुरभिसंधि होने के नाते दूषित है । तथापि, वाद को न्यायालय शुल्क और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए समुचित तौर पर मूल्यांकित अभिनिर्धारित किया गया और यह भी कि वाद कायम रखे जाने योग्य हैं । विचारण न्यायालय द्वारा सभी

विवाद्यकों पर अभिलिखित निष्कर्षों के समेकित प्रभाव के परिणामस्वरूप वाद खारिज कर दिया गया । अपील में, विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया और वाद डिक्री कर दिया । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा इस प्रकार पारित निर्णय और डिक्री को कतिपय आधारों पर वर्तमान अपील में चुनौती दी गई, तथापि, जिसमें मुख्यतः यह है कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का सही परिप्रेक्ष्य में वह भी प्रत्येक विवाद्यक पर अभिलिखित निष्कर्षों का उल्लेख किए बिना मूल्यांकन करने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा पारित सकारण निर्णय और डिक्री को नहीं उलट सकता था । तथापि, निचले न्यायालय ने विबंधन, सुने जाने का अधिकार और आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन तथा वाद में दुरभिसंधि के बारे में विवाद्यक पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को अभिकथित रूप से उल्लेख नहीं किया है । इसलिए, मात्र इस कारण से ही आक्षेपित निर्णय और डिक्री को विधिक तौर पर कायम नहीं रखे जाने के नाते अभिखंडित और अपास्त किए जाने की ईप्सा की गई है । विल की असलियत और प्रमाणिकता के बारे में विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के उलटे जाने को इस आधार पर भी चुनौती दी गई है कि ऐसा करते समय, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 91 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों को त्रुटिपूर्ण तौर पर जोर दिया गया है । विल को उसके कब्जे में नहीं होने के नाते साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया जा सका था और उसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11, नियम 14 के अधीन तथा साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन भी प्रस्तुत आवेदनों को खारिज कर दिया गया था । इसलिए, वह प्रश्नगत विल के लेखक और पार्श्विक साक्षियों को ही साक्ष्य में प्रस्तुत कर सका जिसे उसने प्रस्तुत किया और उन्होंने विल के निष्पादन का समर्थन भी किया, तथापि, साक्ष्य जिसे अभिलेख पर लाया गया है, उनकी त्रुटिपूर्ण तरीके से उपेक्षा की गई है । राजस्व अभिकरण द्वारा वादियों की उपस्थिति में नामांतरण का अनुप्रमाणन और वाद भूमि का विभाजन, पहले ही किया जा चुका है, इसलिए, वादी न तो विधिक तौर पर घोषणा की ईप्सा करने के हकदार हैं न ही उन्हें कोई अनुतोष मंजूर किया जा सकता है क्योंकि उन्होंने न तो नामांतरण के आदेश को आक्षेपित किया है न ही विभाजन के आदेश को आक्षेपित किया है । इसलिए, वाद किसी भी तरीके से कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं और इस कारण से ही वादियों ने नए सिरे से वाद फाइल करने की आरक्षित स्वतंत्रता के साथ वाद वापस लेने की अनुज्ञा की ईप्सा

करते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23, नियम 1 के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया । तथापि, उस आवेदन को भी विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर द्वितीय अपील फाइल की गई । द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय के समक्ष विधि के सारवान् प्रश्नों का अवधारण करने के लिए प्रश्न यह है कि क्या दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में तथा अभिलेख पर के साक्ष्य से भी अभिवचनों में यथाअनुध्यात वैध विल का निष्पादन साबित होता है या नहीं । यह सुस्थिर है कि विल का निष्पादन सभी संदेहास्पद परिस्थितियों के अभाव में, स्वयं वसीयतकर्ता की वसीयती क्षमता और हस्ताक्षर के सबूत, स्वयं इसके सम्यक् निष्पादन को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं, तथापि, जहां संदेहास्पद परिस्थितियां होती हैं वहां इसके प्रतिपादक पर यह भार होता है कि वह न्यायालय के समक्ष विल के बारे में समाधानप्रद स्पष्टीकरण दें । वर्तमान मामले में, तारीख 30 जून, 1984 को निष्पादित तथाकथित विल का, प्रतिपादक अर्थात् अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत नहीं किए जाने के कारण अवलोकन नहीं किया जा सकता है । निस्संदेह, उसने यह दावा किया है कि विल को संबंधित पटवारी के समक्ष तारीख 5 जुलाई, 1984 को नामांतरण का अनुप्रमाणन करते समय प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी, जगत राम द्वारा प्रस्तुत किया गया था, तथापि, उक्त श्री जगत राम और उस मामले के लिए शेष प्रोफार्मा प्रत्यर्थी श्री बालक राम और श्रीमती प्रभी देवी ने वाद में फाइल लिखित कथन में मृतक झांगू राम द्वारा ऐसे किसी विल का निष्पादन करने से इनकार किया है । पूर्वोक्त श्री जगत राम ने साक्षी कठघरे में साक्ष्य देते समय अपने पिता मृतक झांगू राम द्वारा किसी विल के निष्पादन से भी इनकार किया है । उसने उसके आधार पर नामांतरण के अनुप्रमाणन के लिए पटवारी के समक्ष उसके द्वारा ऐसा कोई विल प्रस्तुत करने से भी इनकार किया है और बल्कि उसके बयान के अनुसार उसे तारीख 4 जुलाई, 1984 को अपने पिता झांगू राम की मृत्यु के बारे में जानकारी हुई और वह तारीख 5 जुलाई, 1984 को सायंकाल में ही अपने ग्राम पहुंच सका था । उसकी प्रतिपरीक्षा से इस न्यायालय को यह राय बनाने के लिए कुछ भी नहीं है कि उसने मिथ्या अभिसाक्ष्य दिया है । इसी प्रकार, साक्ष्य, जैसा कि युद्धवीर सिंह, अभि. सा. 1 प्रत्यर्थी-वादी, सिमरो देवी का मुख्तारनामा और प्रत्यर्थी-वादी कान्ता देवी के साथ ही अभि. सा. 3 रघुनाथ के परिसाक्ष्य के माध्यम से अभिलेख पर लाया गया है, से यह स्पष्ट होता है कि न तो वादी ही ऐसे तथाकथित विल के आधार पर वाद भूमि के

नामांतरण की मंजूरी और अनुप्रमाणन के समय पर सहायक कलक्टर के समक्ष मौजूद थे । निस्संदेह, प्रतिवादी साक्षी 7 श्री एस. बी. रावत, तत्कालीन सहायक कलक्टर, द्वितीय ग्रेड ने यह कथन किया है कि वादी और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर मौजूद थे, तथापि, उनके परिसाक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि वे व्यक्तिगत रूप से उनमें से किसी को भी नहीं जानते थे जिसके कारण अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण वाद नष्ट हो जाता है । उनमें से किसी की भी अर्थात् वादी और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की तथाकथित विल के आधार पर नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर तारीख 5 जुलाई, 1984 को उपस्थित रहने की संभाव्यता या उनमें से कोई भी अपीलार्थी-प्रत्यर्थी की ओर से उनके स्थान पर उपस्थित था, से इस कारण से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अभि. सा. 1 से 3 के परिसाक्ष्य और प्रत्यर्थी-प्रतिवादी जगत राम के परिसाक्ष्य के माध्यम से अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य से कोई भी तर्कपूर्ण और विश्वसनीय साक्ष्य प्रकट नहीं होता है कि वे अपने पिता झांगू राम की मृत्यु के बारे में जानकारी होने के पश्चात् ग्राम में नहीं पहुंचे थे । रपट रोजनामचा प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए का बलपूर्वक अवलंब लिया गया है, से यह दर्शित होता है कि विल को प्रत्यर्थी-प्रतिवादी, जगत राम द्वारा पटवारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था । यह दस्तावेज आमुख पर ही गलत है क्योंकि इस पर झांगू राम की मृत्यु की तारीख 2 जुलाई, 1984 के रूप में अभिलिखित पाई गई है जबकि पक्षकारों के स्वीकृत पक्षकथन के अनुसार, उसकी मृत्यु तारीख 1 जुलाई, 1984 को हुई थी । अन्यथा भी, साक्षी कठघरे में साक्ष्य देते समय जगत राम के बयान से यह प्रकट होता है कि तारीख 4 जुलाई, 1984 को जब यह रपट रोजनामचा में प्रविष्ट की गई थी तो वह ग्राम में उपस्थित नहीं था और जब उसे तारीख 4 जुलाई, 1984 को अपने पिता की मृत्यु के बारे में जानकारी हुई तब ही वह तारीख 5 जुलाई, 1984 की सायंकाल में ही ग्राम में पहुंच सका था । निस्संदेह, प्रतिवादी-साक्षी 3 मदन सिंह, पटवारी ने रपट रोजनामचा प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए को साबित किया है और यह कथन किया है कि विल को प्रत्यर्थी-प्रतिवादी, जगत राम द्वारा प्रस्तुत किया गया था, तथापि, इसमें दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों पर उपर्युक्त रूप में चर्चा करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि उसने अपीलार्थी-प्रतिवादी की सहायता से मिथ्या अभिसाक्ष्य दिया है । अन्यथा भी, यदि जगत राम द्वारा विल प्रस्तुत किया जाता तो वह रपट रोजनामचा पर उसके हस्ताक्षर लिए होते । यह कथित किया जाता है कि विधि के नियम के अनुसार, लोक सेवक द्वारा अपने कार्यालय कर्तव्यों के निर्वहन में रखे गए अभिलेख सत्य होने माने जाते हैं, तथापि, अपवाद

हमेशा ही होते हैं और वर्तमान मामले में दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में जब तथाकथित विल निष्पादक की मृत्यु के एक दिन पूर्व निष्पादित की गई थी और उसके आधार पर अभिकथित नामांतरण का अनुप्रमाणन दो-तीन दिनों के भीतर किया गया था तो रपट रोजनामचा प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए की संभाव्यता की कूटरचना से और अपीलार्थी-प्रतिवादी की सहायता से छेड़छाड़ की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । निःसंदेह, नामांतरण प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 7/ए का आदेश नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर वादियों और प्रोफार्मा प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों की उपस्थिति के बारे में बताता है, तथापि, सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, ऐसी नोटिस, यदि कोई जारी की गई है और नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर सहायक कलक्टर, प्रतिवादी साक्षी 7 के समक्ष शेष उपस्थित पक्षकारों पर तामील की गई है और यह दर्शित करने के लिए कोई समकालीन अभिलेख नहीं है कि उन्हें तथाकथित विल के आधार पर तारीख 5 जुलाई, 1984 को नामांतरण के अनुप्रमाणन की जानकारी थी या अपीलार्थी-प्रतिवादी में से किसी की प्रार्थना या विल के अधीन कोई अन्य विल का हिताधिकारी सहायक कलक्टर के समक्ष मौजूद था, नामांतरण प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 7/ए के आदेश में उनके नामों का मात्र उल्लेख, यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि वे नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर सहायक कलक्टर प्रतिवादी साक्षी 7 के समक्ष उपस्थित थे । उपर्युक्त सभी से, स्वर्गीय श्री झांगू राम द्वारा विल का निष्पादन संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा होना दर्शित होता है, इस कारण से कि प्रथमतः यह कि उसे (विल) प्रतिपादक अर्थात् अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा साबित नहीं किया गया है और द्वितीयतः, तारीख 30 जून, 1984 को उसका निष्पादन, उक्त श्री झांगू राम की मृत्यु के एक दिन पूर्व हुआ था, जिसकी मृत्यु स्वीकृततः तारीख 1 जुलाई, 1984 को हो गई थी और यदि इसे तारीख 4 जुलाई, 1984 अर्थात् उसके अंतिम संस्कार होने के ठीक पूर्व संबंधित पटवारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और इस दस्तावेज को उसकी मृत्यु के तीन दिनों के ठीक पश्चात् दिया गया था तो यह अत्यधिक संदेहास्पद हो जाता है । हमारी सामाजिक व्यवस्था में, पुत्र या पुत्रियां और उस मामले के लिए अन्य विधिक उत्तराधिकारी अपने हित-पूर्वाधिकारी का अंतिम संस्कार होने के ठीक पूर्व उसके द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति पर तत्काल दावा नहीं करते हैं । इसलिए, सामान्य अनुक्रम में, न तो वादी अथवा न ही अपीलार्थी-प्रतिवादी अथवा न ही प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ऐसी किसी विल पर कार्य किए होंगे जिसे कि उनके हित-पूर्वाधिकारी मृतक झांगू राम द्वारा वह भी अपनी मृत्यु के तीन-चार दिनों के भीतर निष्पादित किया गया था ।

यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-प्रतिवादियों ने राजस्व प्राधिकारियों की मौन सहमति से इस एवज में एक कहानी गढ़ी है और नामांतरण प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 7/ए का अनुप्रमाणन भी मिथ्या तौर पर कराया है । जब विल को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे कि न्यायालय का यह समाधान हो सके कि विल का निष्पादन मृतक झांगू राम द्वारा किया गया है, साक्ष्य, जैसा कि प्रतिवादी साक्षी 4 अमीन चन्द, तथाकथित लेखक के परिसाक्ष्य के माध्यम से अभिलेख पर लाया गया है और प्रतिवादी साक्षी 5 कुलदीप सिंह के साथ ही प्रतिवादी साक्षी 6 होशियार सिंह, तथाकथित अनुप्रमाणन साक्षीगण ने साधारणतया इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने न तो उसकी अन्तर्वस्तुओं को उनके समक्ष रखा जा सका था न ही उन्होंने उस पर निष्पादक को हस्ताक्षर करते देखा था और न ही उस पर उन्होंने स्वयं अपने हस्ताक्षर किए थे । जब एक बार विधिक और विधिमान्य विल का निष्पादन सिद्ध नहीं हो पाता है और विवाद्यक सं. 3 पर निकाले गए निष्कर्ष को विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया जाता है तो सुस्पष्टतः उस वाद भूमि के आवश्यक पक्षकारों को पक्षकार बनाना आवश्यक हो जाता है जो उस वाद के संयुक्त पक्षकार हैं और श्रीमती मलकान देवी, मृतक झांगू राम की द्वितीय विधवा, की प्रास्थिति को इस प्रकार न तो वादियों द्वारा न ही अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा और उस मामले के लिए न ही प्रोफार्मा प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों द्वारा विवादित किया जा सकता है । नामांतरण प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 7/ए की मंजूरी और तथाकथित विल के आधार पर अनुप्रमाणन भी अवैध होने के नाते अकृत और शून्य हो जाता है । इसलिए, विवाद्यक सं. 1 और 2 पर अभिलिखित प्रतिकूल निष्कर्ष स्वतः ही उलट जाते हैं । (पैरा 11, 12, 13, 14, 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2000] 2000 (2) शिमला एल. जे. 1722 :
श्रीमती लीला उर्फ **बाली देवी** बनाम **श्रीमती दुम्पति देवी** ; 12

[1990] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 396 :
कल्याण सिंह बनाम **श्रीमती छोटी और अन्य** ; 11

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1055 :
ग्यारसी बाई और अन्य बनाम **धनसुख लाल और अन्य** । 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2001-डी की नियमित द्वितीय अपील सं. 290.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री भूपेन्द्र गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ जनेश गुप्ता, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 की ओर से श्री वीरेन्द्र सिंह राठौर, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 4 से 6 की ओर से श्री अश्वनी पाठक, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी – वर्तमान अपील में, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (I), कांगड़ा, धर्मशाला द्वारा सिविल अपील सं. 2-पी/98 में तारीख 17 मार्च, 2001 को पारित निर्णय और डिक्री को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा उन्होंने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी (न्यायालय सं. II), पालमपुर द्वारा सिविल वाद सं. 270/88 में तारीख 26 सितम्बर, 1997 को पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया था ।

2. वर्तमान वाद में, विवाद्य विषयवस्तु, मोहल सोले बनेर, मौजा लाम्बागांव, तहसील जयसिंहपुर, जिला कांगड़ा में स्थित खाता सं. 10, खतौनी सं. 23, खसरा सं. किट 14, माप 1-35-18 हेक्टेयर भूमि (जिसे इसमें इसके पश्चात् "वाद भूमि" कहा गया है) है । प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "वादी" कहा गया है), वाद भूमि के स्वामी मृतक झांगू राम की पुत्रियां हैं जबकि अपीलार्थी मस्त राम और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 बालक राम और जगत राम तथा प्रोफार्मा प्रत्यर्थी सं. 4 प्रभी देवी (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "प्रत्यर्थी" कहा गया है), वाद भूमि के स्वामी मृतक झांगू राम के क्रमशः पुत्र और विधवा हैं । वादियों के अनुसार, उनके पिता स्वर्गीय श्री झांगू राम ने वाद भूमि के संबंध में कभी भी कोई विल निष्पादित नहीं की थी और उनकी मृत्यु पर उनकी सम्पत्तियां उनके पक्ष में और अपीलार्थी-प्रतिवादी मस्त राम तथा प्रोफार्मा प्रत्यर्थियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "प्रतिवादी" कहा गया है), के पक्ष में उत्तराधिकार के लिए खुली थीं । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने उसका प्रथम श्रेणी विधिक उत्तराधिकारी होने के नाते तारीख 1 जुलाई, 1984 का एक विल प्रतिपादित किया और यह अभिवाक् किया कि विल के अनुसार, वाद भूमि अन्य प्रतिवादियों और झांगू राम की द्वितीय विधवा श्रीमती मलकान देवी के साथ उसके द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त कर ली गई थी । उसके अनुसार, वाद भूमि का

नामांतरण मंजूर कर लिया गया था और यह वादियों की उपस्थिति में उनके पक्ष में सहायक कलक्टर, द्वितीय ग्रेड द्वारा प्रमाणित किया गया था । इसलिए, उसके अनुसार वादी वर्तमान वाद फाइल करने से अपने कार्य, विलेख और आचरण द्वारा विबंधित है और परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित भी है और उन्हें वाद फाइल करने के लिए सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है, यह कायम रखे जाने योग्य भी नहीं है । तथापि, श्री बालक राम, जगत राम और प्रभी देवी क्रमशः प्रतिवादी सं. 1, 2, 4 ने अपने हित-पूर्वाधिकारी स्वर्गीय श्री झांगू राम द्वारा अपने जीवनकाल के दौरान विल के निष्पादन से इनकार किया और इस प्रकार, वादियों द्वारा उद्भूत दलीलों का समर्थन किया ।

3. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर तारीख 2 नवम्बर, 1989 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

(1) क्या वादी और प्रतिवादी वाद भूमि के कब्जे सहित संयुक्त स्वामी हैं, जैसा कि अभिकथित है ?

(2) क्या प्रतिवादियों के पक्ष में विल के आधार पर मंजूर तारीख 5 जुलाई, 1984 का नामांतरण सं. 41 गलत और अवैध है, जैसा कि अभिकथित है ?

(3) क्या श्री झांगू राम ने एक वैध विल निष्पादित की थी, जैसा कि अभिकथित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव (आक्षेप के प्रति भार) ?

(4) क्या वादी अपने कार्य और आचरण द्वारा वर्तमान वाद फाइल करने से विबंधित हैं, जैसा कि अभिकथित है ?

(5) क्या वादियों को न तो सुने जाने का अधिकार है न ही इन्होंने कोई वाद हेतुक प्राप्त किया है, जैसा कि अभिकथित है ?

(6) क्या वाद, आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है, जैसा कि अभिकथित है ?

(7) क्या वाद कायम रखे जाने योग्य नहीं है, जैसा कि अभिकथित है ?

(8) क्या वाद परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है ?

(9) क्या वाद न्यायालय शुल्क और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए समुचित तौर पर मूल्यांकित नहीं है ?

(10) क्या वाद में दुरभिसंधि है, जैसा कि प्रतिवादी सं. 3 द्वारा अपने प्रारम्भिक आक्षेप सं. 7 में कथित किया गया है ?

(11) अनुतोष ।

4. दोनों ओर के पक्षकारों ने क्रमशः अपनी दलीलों के समर्थन में मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया ।

5. विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 3 का सकारात्मक उत्तर देते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि मृतक झांगू राम ने अपने जीवनकाल के दौरान एक वैध विल निष्पादित की थी और वाद भूमि के नामांतरण को मंजूर और उसके आधार पर उसके अनुप्रमाणन को विधिक और विधिमान्य अभिनिर्धारित किया । इसलिए, पक्षकार, वाद भूमि के कब्जे सहित संयुक्त स्वामी नहीं पाए गए और विवाद्यक सं. 1 और 2 का उत्तर वादियों के विरुद्ध दिया गया जबकि विवाद्यक सं. 3 का उत्तर अपीलार्थी-प्रतिवादी के पक्ष में दिया गया । यह निष्कर्ष निकाला गया कि वादी वाद फाइल करने से विबंधित है और यह भी कि उन्हें कभी भी सुने जाने का कोई भी अधिकार नहीं था न ही वाद फाइल करने के लिए उनके पास कोई वाद हेतुक था । विवाद्यक सं. 6 का उत्तर भी अपीलार्थी-प्रतिवादी के पक्ष में दिया गया क्योंकि निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए मलकान देवी आवश्यक पक्षकार थी और क्योंकि उसे इस प्रकार सूचीबद्ध नहीं किया गया था, इसलिए, वाद आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है । यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि वादियों की उपस्थिति में लेखबद्ध तारीख 5 जुलाई, 1984 के विल के आधार पर अपीलार्थी-प्रतिवादी और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के पक्ष में वाद भूमि का नामांतरण मंजूर और अनुप्रमाणित था और इस प्रकार, वाद, तीन वर्षों की अवधि के पश्चात् फाइल किए जाने के कारण परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित भी अभिनिर्धारित किया गया । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 10 का उत्तर अपीलार्थी-प्रतिवादी के पक्ष में पुनः देते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि वाद, वादियों और प्रोफार्मा प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों के बीच दुरभिसंधि होने के नाते दूषित है । तथापि, वाद को न्यायालय शुल्क और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए समुचित तौर पर मूल्यांकित अभिनिर्धारित किया गया और यह भी कि वाद कायम रखे जाने योग्य हैं । विचारण न्यायालय द्वारा सभी विवाद्यकों पर अभिलिखित निष्कर्षों के समेकित प्रभाव के परिणामस्वरूप वाद खारिज कर दिया गया ।

6. अपील में, विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय

द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया और वाद डिक्री कर दिया । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा इस प्रकार पारित निर्णय और डिक्री को कतिपय आधारों पर वर्तमान अपील में चुनौती दी गई, तथापि, जिसमें मुख्यतः यह है कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का सही परिप्रेक्ष्य में वह भी प्रत्येक विवाद्यक पर अभिलिखित निष्कर्षों का उल्लेख किए बिना मूल्यांकन करने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा पारित सकारण निर्णय और डिक्री को नहीं उलट सकता था । तथापि, निचले न्यायालय ने विबंधन, सुने जाने का अधिकार और आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन तथा वाद में दुरभिसंधि के बारे में विवाद्यक पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को अभिकथित रूप से उल्लेख नहीं किया है । इसलिए, मात्र इस कारण से ही आक्षेपित निर्णय और डिक्री को विधिक तौर पर कायम नहीं रखे जाने के नाते अभिखंडित और अपास्त किए जाने की ईप्सा की गई है । विल की असलियत और प्रमाणिकता के बारे में विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के उलटे जाने को इस आधार पर भी चुनौती दी गई है कि ऐसा करते समय, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 91 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों को त्रुटिपूर्ण तौर पर जोर दिया गया है । विल को उसके कब्जे में नहीं होने के नाते साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया जा सका था और उसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11, नियम 14 के अधीन तथा साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन भी प्रस्तुत आवेदनों को खारिज कर दिया गया था । इसलिए, वह प्रश्नगत विल के लेखक और पार्श्विक साक्षियों को ही साक्ष्य में प्रस्तुत कर सका जिसे उसने प्रस्तुत किया और उन्होंने विल के निष्पादन का समर्थन भी किया, तथापि, साक्ष्य जिसे अभिलेख पर लाया गया है, उनकी त्रुटिपूर्ण तरीके से उपेक्षा की गई है । राजस्व अभिकरण द्वारा वादियों की उपस्थिति में नामांतरण का अनुप्रमाणन और वाद भूमि का विभाजन, पहले ही किया जा चुका है, इसलिए, वादी न तो विधिक तौर पर घोषणा की ईप्सा करने के हकदार हैं न ही उन्हें कोई अनुतोष मंजूर किया जा सकता है क्योंकि उन्होंने न तो नामांतरण के आदेश को आक्षेपित किया है न ही विभाजन के आदेश को आक्षेपित किया है । इसलिए, वाद किसी भी तरीके से कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं और इस कारण से ही वादियों ने नए सिरे से वाद फाइल करने की आरक्षित स्वतंत्रता के साथ वाद वापस लेने की अनुज्ञा की ईप्सा करते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23, नियम 1 के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया । तथापि, उस आवेदन को भी विद्वान्

निचले अपील न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था ।

7. तथापि, अपीलार्थी-प्रतिवादी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलटे जाने के बारे में इस आधार पर कथन किया कि झांगू राम, पक्षकारों के हित-पूर्वाधिकारी द्वारा वैध विल का निष्पादन साबित नहीं किया गया है, जबकि अपीलार्थी-प्रतिवादी के अनुसार, विद्वान् निचले अपील न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह प्रत्येक विवाद्यक पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों का उल्लेख करे और उन्हें उलटे बिना विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त नहीं किया जा सकता है ।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-वादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री का समर्थन करते हुए, बलपूर्वक यह दलील दी कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की सहायता से प्रत्येक विवाद्यक पर विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों पर चर्चा की है और इसके पश्चात् ही उन्होंने इस प्रकार अभिलिखित निष्कर्षों को उलटा और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अभिखंडित किया । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, जब विल का निष्पादन किसी भी प्रकार से साबित नहीं हुआ है तो सभी कार्रवाईयों अर्थात् नामांतरण की मंजूरी और अनुप्रमाणन तथा अपीलार्थी-प्रतिवादी और वादियों तथा प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के बीच भूमि विभाजन के बारे में विभाजन कार्यवाहियां अपनी विश्वसनीयता खो देती हैं और अन्यथा भी वादियों को जानकारी नहीं होने के नाते भी मुश्किल से ही इसके कोई परिणाम हो सकते हैं ।

9. तर्कों के दौरान पक्षकारों की ओर से क्रमशः उद्भूत दलीलों का उल्लेख करने के पूर्व, उन सारवान् विधि प्रश्नों के प्रति निर्देश करना अपेक्षित है जिन पर यह अपील स्वीकार की गई है । यह इस प्रकार हैं :–

> "(1) क्या निचले अपील न्यायालय ने यह गलत तौर पर अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थी-वादियों द्वारा परिसीमा अवधि के भीतर वाद फाइल किया गया है, जबकि प्रतिवादियों में से एक अर्थात् जगतराम द्वारा प्रस्तुत विल के आधार पर राजस्व प्राधिकारियों द्वारा मंजूर स्वर्गीय झांगू की संपदा में अपीलार्थी-प्रतिवादी के पक्ष में उत्तराधिकार के नामांतरण की मंजूरी के समय वादी उपस्थित थे ?
>
> (2) क्या प्रथम अपील न्यायालय ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम,

1872 की धारा 65 और 91 के उपबंधों को गलत तौर पर समझा और लागू किया गया है ?

(3) क्या प्रथम अपील न्यायालय राजस्व प्राधिकारियों द्वारा प्रभावी किए गए विभाजन के तथ्यों का मूल्यांकन करने में असफल रहा, जिससे वाद निष्फल हो गया ?''

10. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 और 91 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों तथा अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत विल जो अभिलेख पर नहीं है, को ध्यान में रखते हुए वर्तमान वाद में सक्षम राजस्व अधिकारी द्वारा की गई विभाजन कार्यवाहियों और पारित विभाजन आदेश के प्रभाव पर इस न्यायालय द्वारा दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों के साथ ही लागू विधि के अधीन अवधारित किया जाना है ।

11. हमारे समक्ष विधि के सारवान् प्रश्नों का अवधारण करने के लिए प्रश्न यह है कि क्या दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में तथा अभिलेख पर के साक्ष्य से भी अभिवचनों में यथाअनुध्यात वैध विल का निष्पादन साबित होता है या नहीं । वैध विल क्या है और इसके निष्पादन को सिद्ध करने के लिए किस प्रकृति के सबूत प्रस्तुत किए जाने अपेक्षित हैं, पर चर्चा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **कल्याण सिंह** बनाम **श्रीमती छोटी और अन्य**[1] वाले मामले में की गई है, जो इस प्रकार है :–

"विधि में 'विल' अत्यधिक पवित्र रूप से ज्ञात दस्तावेजों में से एक है । विल के निष्पादक द्वारा विल के निष्पादन से इनकार करना या उन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण करने से इनकार करना नहीं कहा जा सकता है जिसमें इसे निष्पादित किया गया था । इसलिए, यह आवश्यक है कि विश्वसनीय और अनाक्षेपनीय साक्ष्य को विल की असलियत और प्रमाणिकता को सिद्ध करने के लिए न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए । यह कथित किया जाना चाहिए कि विल के निष्पादन और वैधता को प्रतिपादक द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य मात्र पर ही विचार करते हुए अवधारित नहीं किया जा सकता है । साक्षियों की विश्वसनीयता के अनुक्रम में या न्यायनिर्णयन करने में तथा इसकी सत्यता को मिथ्या से मुक्त करने के लिए न्यायालय को मात्र उसके परिसाक्ष्य और आचरण तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए । न्यायालय के लिए यह खुला होता है कि वह साक्ष्य में प्रस्तुत

[1] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 396.

परिस्थितियों पर विचार करें या उन पर विचार करें जिनसे स्वयं दस्तावेज की प्रकृति और अन्तर्वस्तुएं प्रकट होती हैं । न्यायालय के लिए यह भी खुला होता है कि वह पक्षकार द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की प्रकृति पर समुचित निष्कर्ष निकालने के लिए मामले की सभी परिस्थितियों के साथ ही अन्तर्निहित संभाव्यताओं पर भी विचार करें ।"

12. यह भी सुस्थिर है कि विल का निष्पादन सभी संदेहास्पद परिस्थितियों के अभाव में, स्वयं वसीयतकर्ता की वसीयती क्षमता और हस्ताक्षर के सबूत, स्वयं इसके सम्यक् निष्पादन को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं, तथापि, जहां संदेहास्पद परिस्थितियां होती हैं वहां इसके प्रतिपादक पर यह भार होता है कि वह न्यायालय के समक्ष विल के बारे में समाधानप्रद स्पष्टीकरण दें । इस न्यायालय के समन्वय न्यायपीठ ने **श्रीमती लीला** उर्फ **बाली देवी** बनाम **श्रीमती दुम्पति देवी**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि विधिक और विधिमान्य विल निष्पादन के बारे में निष्कर्ष तभी निकाला जाना चाहिए, जबकि विल लेखबद्ध हो और यह निष्पादक द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित होने के साथ ही कम से कम दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित होना चाहिए । यह भी कि इसका निष्पादन, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के मानदंडों के भीतर अभिलेख पर साबित होना चाहिए । वर्तमान मामले में, तारीख 30 जून, 1984 को निष्पादित तथाकथित विल का, प्रतिपादक अर्थात् अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत नहीं किए जाने के कारण अवलोकन नहीं किया जा सकता है । निःसंदेह, उसने यह दावा किया है कि विल को संबंधित पटवारी के समक्ष तारीख 5 जुलाई, 1984 को नामांतरण का अनुप्रमाणन करते समय प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी, जगत राम द्वारा प्रस्तुत किया गया था, तथापि, उक्त श्री जगत राम और उस मामले के लिए शेष प्रोफार्मा प्रत्यर्थी श्री बालक राम और श्रीमती प्रभी देवी ने वाद में फाइल लिखित कथन में मृतक झांगू राम द्वारा ऐसे किसी विल का निष्पादन करने से इनकार किया है । पूर्वोक्त श्री जगत राम ने साक्षी कठघरे में साक्ष्य देते समय अपने पिता मृतक झांगू राम द्वारा किसी विल के निष्पादन से भी इनकार किया है । उसने उसके आधार पर नामांतरण के अनुप्रमाणन के लिए पटवारी के समक्ष उसके द्वारा ऐसा कोई विल प्रस्तुत करने से भी इनकार किया है और बल्कि उसके बयान के अनुसार उसे तारीख 4

[1] 2000 (2) शिमला एल. जे. 1722.

जुलाई, 1984 को अपने पिता झांगू राम की मृत्यु के बारे में जानकारी हुई और वह तारीख 5 जुलाई, 1984 को सायंकाल में ही अपने ग्राम पहुंच सका था । उसकी प्रतिपरीक्षा से इस न्यायालय को यह राय बनाने के लिए कुछ भी नहीं है कि उसने मिथ्या अभिसाक्ष्य दिया है ।

13. इसी प्रकार, साक्ष्य, जैसा कि युद्धवीर सिंह, अभि. सा. 1 प्रत्यर्थी-वादी, सिमरो देवी का मुख्तारनामा और प्रत्यर्थी-वादी कन्ता देवी के साथ ही अभि. सा. 3 रघुनाथ के परिसाक्ष्य के माध्यम से अभिलेख पर लाया गया है, से यह स्पष्ट होता है कि न तो वादी ही ऐसे तथाकथित विल के आधार पर वाद भूमि के नामांतरण की मंजूरी और अनुप्रमाणन के समय पर सहायक कलक्टर के समक्ष मौजूद थे । निःसंदेह, प्रतिवादी साक्षी 7 श्री एस. बी. रावत, तत्कालीन सहायक कलक्टर, द्वितीय ग्रेड ने यह कथन किया है कि वादी और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर मौजूद थे, तथापि, उनके परिसाक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि वे व्यक्तिगत रूप से उनमें से किसी को भी नहीं जानते थे जिसके कारण अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण वाद नष्ट हो जाता है । उनमें से किसी की भी अर्थात् वादी और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की तथाकथित विल के आधार पर नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर तारीख 5 जुलाई, 1984 को उपस्थित रहने की संभाव्यता या उनमें से कोई भी अपीलार्थी-प्रत्यर्थी की ओर से उनके स्थान पर उपस्थित था, से इस कारण से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अभि. सा. 1 से 3 के परिसाक्ष्य और प्रत्यर्थी-प्रतिवादी जगत राम के परिसाक्ष्य के माध्यम से अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य से कोई भी तर्कपूर्ण और विश्वसनीय साक्ष्य प्रकट नहीं होता है कि वे अपने पिता झांगू राम की मृत्यु के बारे में जानकारी होने के पश्चात् ग्राम में नहीं पहुंचे थे ।

14. रपट रोजनामचा प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए का बलपूर्वक अवलंब लिया गया है, से यह दर्शित होता है कि विल को प्रत्यर्थी-प्रतिवादी, जगत राम द्वारा पटवारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था । यह दस्तावेज आमुख पर ही गलत है क्योंकि इस पर झांगू राम की मृत्यु की तारीख 2 जुलाई, 1984 के रूप में अभिलिखित पाई गई है जबकि पक्षकारों के स्वीकृत पक्षकथन के अनुसार, उसकी मृत्यु तारीख 1 जुलाई, 1984 को हुई थी । अन्यथा भी, साक्षी कठघरे में साक्ष्य देते समय जगत राम के बयान से यह प्रकट होता है कि तारीख 4 जुलाई, 1984 को जब यह रपट रोजनामचा में प्रविष्टि की गई थी तो वह ग्राम में उपस्थित नहीं था और जब उसे तारीख

4 जुलाई, 1984 को अपने पिता की मृत्यु के बारे में जानकारी हुई तब ही वह तारीख 5 जुलाई, 1984 की सायंकाल में ही ग्राम में पहुंच सका था । निःसंदेह, प्रतिवादी-साक्षी 3 मदन सिंह, पटवारी ने रपट रोजनामचा प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए को साबित किया है और यह कथन किया है कि विल को प्रत्यर्थी-प्रतिवादी, जगत राम द्वारा प्रस्तुत किया गया था, तथापि, इसमें दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों पर उपर्युक्त रूप में चर्चा करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि उसने अपीलार्थी-प्रतिवादी की सहायता से मिथ्या अभिसाक्ष्य दिया है । अन्यथा भी, यदि जगत राम द्वारा विल प्रस्तुत किया जाता तो वह रपट रोजनामचा पर उसके हस्ताक्षर लिए होते । यह कथित किया जाता है कि विधि के नियम के अनुसार, लोक सेवक द्वारा अपने कार्यालय कर्तव्यों के निर्वहन में रखे गए अभिलेख सत्य होने माने जाते हैं, तथापि, अपवाद हमेशा ही होते हैं और वर्तमान मामले में दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में जब तथाकथित विल निष्पादक की मृत्यु के एक दिन पूर्व निष्पादित की गई थी और उसके आधार पर अभिकथित नामांतरण का अनुप्रमाणन दो-तीन दिनों के भीतर किया गया था तो रपट रोजनामचा प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए की संभाव्यता की कूटरचना से और अपीलार्थी-प्रतिवादी की सहायता से छेड़छाड़ की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है ।

15. निःसंदेह, नामांतरण प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 7/ए का आदेश नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर वादियों और प्रोफार्मा प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों की उपस्थिति के बारे में बताता है, तथापि, सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, ऐसी नोटिस, यदि कोई जारी की गई है और नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर सहायक कलक्टर, प्रतिवादी साक्षी-7 के समक्ष शेष उपस्थित पक्षकारों पर तामील की गई है और यह दर्शित करने के लिए कोई समकालीन अभिलेख नहीं है कि उन्हें तथाकथित विल के आधार पर तारीख 5 जुलाई, 1984 को नामांतरण के अनुप्रमाणन की जानकारी थी या अपीलार्थी-प्रतिवादी में से किसी की प्रार्थना या विल के अधीन कोई अन्य विल का हिताधिकारी सहायक कलक्टर के समक्ष मौजूद था, नामांतरण प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 7/ए के आदेश में उनके नामों का मात्र उल्लेख, यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि वे नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर सहायक कलक्टर प्रतिवादी साक्षी 7 के समक्ष उपस्थित थे । उपर्युक्त सभी से, स्वर्गीय श्री झांगू राम द्वारा विल का निष्पादन संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा होना दर्शित होता है, इस कारण से कि प्रथमतः यह कि उसे (विल) प्रतिपादक अर्थात् अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा साबित नहीं

किया गया है और द्वितीयतः, तारीख 30 जून, 1984 को उसका निष्पादन, उक्त श्री झांगू राम की मृत्यु के एक दिन पूर्व हुआ था, जिसकी मृत्यु स्वीकृततः तारीख 1 जुलाई, 1984 को हो गई थी और यदि इसे तारीख 4 जुलाई, 1984 अर्थात् उसके अंतिम संस्कार होने के ठीक पूर्व संबंधित पटवारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और इस दस्तावेज को उसकी मृत्यु के तीन दिनों के ठीक पश्चात् दिया गया था तो यह अत्यधिक संदेहास्पद हो जाता है ।

16. हमारी सामाजिक व्यवस्था में, पुत्र या पुत्रियां और उस मामले के लिए अन्य विधिक उत्तराधिकारी अपने हित-पूर्वाधिकारी का अंतिम संस्कार होने के ठीक पूर्व उसके द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति पर तत्काल दावा नहीं करते हैं । इसलिए, सामान्य अनुक्रम में, न तो वादी अथवा न ही अपीलार्थी-प्रतिवादी अथवा न ही प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ऐसी किसी विल पर कार्य किए होंगे जिसे कि उनके हित-पूर्वाधिकारी मृतक झांगू राम द्वारा वह भी अपनी मृत्यु के तीन-चार दिनों के भीतर निष्पादित किया गया था । यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-प्रतिवादियों ने राजस्व प्राधिकारियों की मौन सहमति से इस एवज में एक कहानी गढ़ी है और नामांतरण प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 7/ए का अनुप्रमाणन भी मिथ्या तौर पर कराया है । जब विल को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे कि न्यायालय का यह समाधान हो सके कि विल का निष्पादन मृतक झांगू राम द्वारा किया गया है, साक्ष्य, जैसा कि प्रतिवादी साक्षी 4 अमीन चन्द, तथाकथित लेखक के परिसाक्ष्य के माध्यम से अभिलेख पर लाया गया है और प्रतिवादी साक्षी 5 कुलदीप सिंह के साथ ही प्रतिवादी साक्षी 6 होशियार सिंह, तथाकथित अनुप्रमाणन साक्षीगण ने साधारणतया इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने न तो उसकी अन्तर्वस्तुओं को उनके समक्ष रखा जा सका था न ही उन्होंने उस पर निष्पादक को हस्ताक्षर करते देखा था और न ही उस पर उन्होंने स्वयं अपने हस्ताक्षर किए थे । जब एक बार विधिक और विधिमान्य विल का निष्पादन सिद्ध नहीं हो पाता है और विवाद्यक सं. 3 पर निकाले गए निष्कर्ष को विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया जाता है तो सुस्पष्टतः उस वाद भूमि के आवश्यक पक्षकारों को पक्षकार बनाना आवश्यक हो जाता है जो उस वाद के संयुक्त पक्षकार हैं और श्रीमती मलकान देवी, मृतक झांगू राम की द्वितीय विधवा, की प्रास्थिति को इस प्रकार न तो वादियों द्वारा न ही अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा और उस मामले के लिए न ही प्रोफार्मा प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों द्वारा विवादित किया जा सकता है । नामांतरण प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 7/ए की मंजूरी और तथाकथित

विल के आधार पर अनुप्रमाणन भी अवैध होने के नाते अकृत और शून्य हो जाता है । इसलिए, विवाद्यक सं. 1 और 2 पर अभिलिखित प्रतिकूल निष्कर्ष स्वतः ही उलट जाते हैं ।

17. वाद, परिसीमा अवधि के अधीन वर्जित भी नहीं कहा जा सकता है इस कारण से कि वादियों को नवम्बर, 1987 के माह में तथाकथित विल के अनुसरण में नामांतरण के अनुप्रमाणन के बारे में जानकारी हुई थी और तत्पश्चात्, तारीख 8 अगस्त, 1988 को जब उन्होंने राजस्व अभिलेख के उद्धृत प्राप्त किए । इसलिए, तारीख 3 सितम्बर, 1988 को फाइल वाद परिसीमा अवधि के भीतर था इस कारण से कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 58 के अधीन इस प्रकृति के वाद जानकारी होने की तारीख से तीन वर्षों के भीतर संस्थित किया जा सकता है । इसलिए, निचले अपील न्यायालय ने कोई अवैधता या अनियमितता कारित नहीं की है यह अभिनिर्धारित करने में कि वाद परिसीमा अवधि के भीतर है । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 और 91 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों के गलत निर्वचन या गलत मूल्यांकन का प्रश्न ही नहीं उठता है, इस कारण से कि यह स्वयं अपीलार्थी-प्रतिवादी ही था जिसने आवेदन वापस लिया था और विचारण न्यायालय के समक्ष द्वितीयक साक्ष्य के माध्यम से विल साबित करने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन अवलंब लिया । जहां तक आवेदन का संबंध है, उसने विल प्रस्तुत करने के लिए प्रत्यर्थी-प्रतिवादी जगत राम को निर्देश देने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11, नियम 14 के अधीन आवेदन किया और उस आवेदन को गुणागुणों पर खारिज कर दिया गया था और उसने विचारण न्यायालय द्वारा पारित ऐसे आदेश को आक्षेपित नहीं किया इसलिए, वह आदेश अंतिम हो गया है । न तो विभाजन कार्यवाहियां न ही विभाजन का आदेश वादियों को वर्तमान वाद फाइल करने से विबंधित कर सकती हैं, इस कारण से कि वे उन कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं थे । अन्यथा भी, विबंधन का सिद्धांत उन्हीं मामलों में लागू होता है जहां व्यक्ति अन्य व्यक्ति को अभ्यावेदन करता है और अन्य व्यक्ति इस प्रकार किए गए अभ्यावेदन पर कार्य करता है, यह अच्छी तरह जानते हुए कि ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा की गई कार्रवाई से उसके हित को क्षति पहुंच सकती है । इस न्यायालय ने **ग्यारसी बाई और अन्य** बनाम **धनसुख लाल और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से ऐसे निष्कर्षों

[1] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1055.

का समर्थन लिया । जो इस प्रकार है :–

> ".....विबंधन के सिद्धांत का अवलंब लेने के लिए तीन शर्तों पर समाधान होना चाहिए : (1) एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को अभ्यावेदन, (2) अन्य व्यक्ति को उक्त अभ्यावेदन पर कार्य करना होगा, और (3) ऐसे कार्य से उस व्यक्ति के हितों को हानि होगी जिसने अभ्यावेदन किया है । ....."

18. तथापि, वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जिसमें यह कहा जा सके कि वादियों ने अपीलार्थी-प्रतिवादी को कोई अभ्यावेदन किया था, यह अच्छी तरह जानते हुए कि वह ऐसे अभ्यावेदन पर कार्य करेगा और ऐसे कार्य से उसके हितों को हानि होगी । तथापि, यहां साधारण मामला यह है कि वादी, नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर सहायक कलक्टर के समक्ष उपस्थित थे और यह भी कि वाद भूमि के विभाजन प्रतिवादी के साथ पहले से ही कर लिया गया था और इस आधार पर कि विबंधन का अभिवाक् उद्भूत होता है जो इस न्यायालय की विचारित राय में न तो वैध है न ही तथ्यात्मक रूप से कायम रखे जाने योग्य है क्योंकि अपीलार्थी-प्रतिवादी अभिवचनों में यथानिर्दिष्ट अपने मामले को साबित करने में असफल रहे हैं ।

19. निःसंदेह, निचला अपील न्यायालय, विवाद्यक सं. 6 पर विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों का उल्लेख करने में असफल रहा है । तथापि, तथ्य यह शेष रह जाता है कि श्रीमती मलकान देवी को वाद भूमि में उनके हिस्से से अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा पहले ही बे-कब्जा किया जा चुका था जो आवश्यक पक्षकार नहीं थी और इस प्रकार, वाद में एक पक्षकार के रूप में उसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति से मुश्किल से ही कोई प्रभाव पड़ता है न ही इससे किसी भी पक्षकार के पक्ष या उसके विरुद्ध कोई झुकाव हो सकता है ।

20. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मैं आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता और कमी नहीं पाता हूं और इस प्रकार तद्द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है और द्वितीय अपील खारिज की जाती है ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

क.

———

राजेश वर्मा

बनाम

हरभजन सिंह

तारीख 29 मार्च, 2014

न्यायमूर्ति वी. के. वर्मा

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 6 [सपठित संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 10, 55 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 6 का नियम 15] – संविदा का विनिर्दिष्ट पालन – वादी द्वारा विक्रय करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द होना – प्रतिवादी द्वारा करार के समय सम्पत्ति दर पर सम्पत्ति विक्रय करने में बहानेबाजी करना तथा विक्रय करार के अपने भाग का पालन करने में टाल-मटोल करना – अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों तथा दस्तावेजों से पुष्टि होना – यदि पक्षकारों के बीच हुए करार में एक पक्षकार करार के अपने कुछ भाग का पालन करते हुए अपनी स्थिति में परिवर्तन कर लेता है और करार के शेष भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द भी है तो दूसरे पक्षकार को करार में अपने भाग का पालन करना होगा ।

वर्तमान मामले में, वादी का पक्षकथन यह है कि वह ग्राम और डाकघर लोघी माजरा, तहसील नालागढ़, जिला सोलन का स्थायी निवासी है और एक कृषक है । वह हिमाचल प्रदेश राज्य में भूमि क्रय करने का हकदार होने के नाते उसने प्रतिवादी के साथ वाद भूमि के संबंध में 1,30,000/- रुपए प्रति बीघा की दर से कुल 43,58,500/- रुपए के प्रतिफल के एवज में तारीख 7 अगस्त, 2003 को एक विक्रय करार किया जिसमें से उसने अग्रिम धन के रूप में 3,00,000/- रुपए का संदाय कर दिया था जिसकी करार में प्रतिवादी द्वारा स्वीकृति की गई थी । प्रतिवादी, जिसने वाद भूमि का एक भाग खसरा सं. 593/128, माप 25 बीघा, 16 बिस्वा भूमि स्टेट बैंक आफ पटियाला, ए. डी. बी. ब्रांच, नालागढ़ को बंधक रखा था, ने उसका मोचन कराने के लिए सहमत हुआ था । अतिशेष विक्रय रकम 5 अप्रैल, 2004 तक संदत्त करने को सहमत हुआ था और उसके पश्चात्, करार के निबंधनों में विक्रय-विलेख या तो वादी के पक्ष में या उसके नामनिर्देशिती के पक्ष में निष्पादित किया जाना था । वादी के

अनुसार, समय, संविदा का सार नहीं है जैसा कि तारीख 7 अगस्त, 2003 के विक्रय करार से प्रकट होता है । यह भी प्रकथन किया है कि प्रतिवादी ने करार के निबंधनों का पालन करने से इनकार कर दिया क्योंकि इसके बजाय उसने खसरा सं. 593/128, माप 25 बीघा में समाविष्ट पूर्वोक्त भूमि का बैंक से मोचन करा लिया और वादी से ऐसा करने के लिए आवश्यक बताया । तद्नुसार, तारीख 25 मार्च, 2004 को वादी ने प्रतिवादी के खाते में 2,11,950/- रुपए जमा किए और भूमि मोचन करा लिया । बैंक द्वारा जारी इस आशय का प्रमाणपत्र वादपत्र के साथ फाइल किया गया है । वादी का यह भी पक्षकथन है कि जैसी कि सहमति हुई थी तारीख 5 अप्रैल, 2005 को वह सम्पूर्ण अतिशेष विक्रय प्रतिफल के साथ ही रजिस्ट्रीकरण के खर्चे, जिसमें स्टाम्प पेपर आदि के खर्चे सम्मिलित थे, के साथ न्यायालय परिसर में स्थित उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उपस्थित रहा । वादी के अनुसार, प्रतिवादी भी उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उपस्थित था और उससे मिला था । उसने उससे अतिशेष विक्रय रकम स्वीकार करने और करार के निबंधनानुसार विक्रय-विलेख निष्पादित करने का निवेदन किया किन्तु उसने लालचवश करार का पालन करने से इनकार कर दिया और अधिक धन की मांग करना प्रारम्भ कर दिया । वादी ने यह भी कथन किया कि वह तारीख 5 अप्रैल, 2005 को प्रातःकाल से सायंकाल तक उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उपस्थित रहा । उसके द्वारा उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के समक्ष सशपथ फाइल इस आशय का एक शपथपत्र वादपत्र के साथ फाइल किया गया है । यह भी अभिवाक् किया है कि वादी को तब अत्यधिक आश्चर्य हुआ जब प्रतिवादी ने निष्पादित विक्रय-विलेख देने के बजाय अपने काउंसेल श्री एच. आर. शर्मा, अधिवक्ता नालागढ़ के माध्यम से तारीख 6 अप्रैल, 2004 का एक नोटिस जारी किया जिसका उसने अपने काउंसेल के माध्यम से इसमें उपर्युक्त वर्णित वास्तविक तथ्यों का कथन करते हुए, तारीख 20 अप्रैल, 2004 को उत्तर दिया । प्रतिवादी द्वारा यह आधार लिया गया कि तारीख 7 अगस्त, 2003 का करार तारीख 5 अप्रैल, 2004 को रद्द हो गया था जिसका कोई सार नहीं रह गया है । यह प्राख्यान किया कि इसके उत्तर से यह स्पष्ट होता है कि वादी सभी प्रकार से करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था और है । यह भी कथन किया है कि वादी ने सम्पूर्ण अतिशेष विक्रय प्रतिफल के साथ ही अन्य खर्चे के रूप में कुल 45,00,000/- रुपए श्री सूचा नन्द, पुत्र श्री दौलत राम, निवासी मखू माजरा, तहसील नालागढ़ से प्राप्त किया था जिसने तारीख 5

अप्रैल, 2004 को उक्त रकम पंजाब नेशनल बैंक, नालागढ़ से आहरित किया था जिसे 6 अप्रैल, 2004 को पुनः जमा किया था क्योंकि प्रतिवादी निष्पादित विक्रय-विलेख देने में असफल रहा और वादी ने उक्त रकम श्री सूचा नन्द को वापस कर दी थी । वादी ने यह दावा किया कि उसने तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार के अपने भाग का पालन कर दिया है । तथापि, यह प्रतिवादी ही है जो करार के निबंधनों का पालन करने में असफल रहा । यह प्रभाव का भी प्रकथन किया गया है कि प्रतिवादी ने अन्तरस्थ हेतु से उक्त बैंक से पुनः नया ऋण 2,00,000/- रुपए तारीख 5 जुलाई, 2004 को रपट सं. 301 द्वारा स्टेट बैंक आफ पटियाला, ए. डी. बी. शाखा, नालागढ़ के पास पूर्वोक्त भूमि माप 25 बीघा, 16 बिस्वा, खसरा सं. 593/128 को बंधक रखते हुए पुनः प्राप्त कर लिया था । वादी को इस बारे में तारीख 27 अगस्त, 2004 को ही जानकारी हो पाई थी । इसलिए प्रतिवादी के आशय से यह स्पष्ट होता है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन नहीं करने का दोषी है । यह प्रार्थना की गई है कि यह निर्देश दिया जा सकता है कि प्रतिवादी पूर्वोक्त भूमि खसरा सं. 593/128, माप 25 बीघा, 16 बिस्वा का मोचन कराए या वैकल्पिक रूप में वादी के लिए यह स्वतंत्रता आरक्षित की जाए कि वह अतिशेष विक्रय प्रतिफल 38,36,550/- रुपए जमा करते हुए उसका मोचन करा ले । विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष के अतिरिक्त वादी को क्षतिपूर्ति के लिए दावा भी स्थापित किया जाए । न्यायालय द्वारा वाद मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृततः, वाद भूमि का एक भाग माप 25 बीघा, 16 बिस्वा भूमि प्रतिवादी द्वारा लिए गए ऋण के विरुद्ध बैंक में बंधक थी । तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार प्रदर्श पी ए के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि इसमें इस भाव का विवरण है कि प्रतिवादी ने वाद भूमि के एक भाग 25 बीघा, 16 बिस्वा भूमि के विरुद्ध उसके द्वारा सृजित पूर्वोक्त ऋणभार के लिए दिया गया वचनबद्ध का पालन कर दिया गया था । वादी के अनुसार, बकाया ऋण की रकम 2,11,950/- रुपए उसके द्वारा बैंक में तारीख 25 मार्च, 2004 को 55,150/- रुपए के लिए जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए द्वारा और 1,56,800/- रुपए के लिए प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी के द्वारा कुल 2,11,950/- रुपए जमा कर दिए गए थे, जिसे अभियोजन साक्षी 4 श्री मल्कियत सिंह, सहायक प्रबंधक, स्टेट बैंक आफ पटियाला, ए. डी. बी. नालागढ़ के साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है । प्रतिवादी की ओर विलम्ब प्रस्तुति के आधार पर जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी की ग्राह्यता के बारे में आक्षेप किया गया है और उसे खुला

रखा गया है जिससे कि उसका बाद में विनिश्चय हो सके । सत्य यह है कि यह दस्तावेज अभिलेख पर अभियोजन साक्षी 4 श्री मल्कियत सिंह की परीक्षा के दौरान ही लाए गए थे । तथापि, यह तथ्य शेष रह जाता है कि ये दस्तावेज लोक दस्तावेज हैं और समुचित अभिरक्षा में लाए गए हैं और विधि के अनुसार साबित हैं । चूंकि, प्रतिवादी की ओर से उद्भूत आक्षेप मान्य नहीं हैं और इतना ही नहीं ये दस्तावेज न्यायालय की विवक्षित इजाजत से अभिलेख पर लाए गए हैं । जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी की संवीक्षा से यह प्रकट होता है कि पूर्वोक्त रकम 55,150/- रुपए और 1,56,800/- रुपए कुल 2,11,950/- रुपए श्री राजेश वर्मा (वादी) द्वारा श्री हरभजन सिंह (प्रतिवादी) की ओर से जमा किए गए थे । यद्यपि, प्रतिवादी के अनुसार, उक्त रकम 2,11,950/- रुपए, प्रतिवादी साक्षी 4 श्री दलेल चन्द से ऋण लेने के पश्चात् उसके द्वारा पुनः संदत्त किए गए थे, फिर भी प्रतिवादी साक्षी 4 श्री दलेल चन्द के कथन के साथ उसके कथन का भी संयुक्त और सुसंगत परिशीलन करने पर यह प्रकट होता है कि यह एक मात्र विश्वसनीय कहानी है और इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी ने सुस्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि जमा पर्ची उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित है, जिसने रकम जमा की थी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी उसके द्वारा हस्ताक्षरित नहीं है । यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी साक्षी 4 श्री दलेल चन्द को एक साक्षी के रूप में तैयार किया गया था । प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में यह अभिवाक् नहीं किया गया है कि उसने बैंक से उसके द्वारा लिए गए ऋण का पुनः संदाय करने के लिए प्रतिवादी साक्षी 4 श्री दलेल चन्द से ऋण लिया था । यद्यपि प्रतिवादी साक्षी 4 ने यह स्वीकार किया है कि वादी राजेश वर्मा भी उस समय मौजूद था जब वे बैंक गए थे । तथापि, उसने ढोंगपूर्वक इस बात से अनभिज्ञता जाहिर की कि वस्तुतः किसने बैंक में धन जमा किया था । वह यह भी नहीं जानता है कि क्या 2,11,950/- रुपए वस्तुतः वादी द्वारा बैंक में जमा किए गए थे या नहीं । इस प्रकार, यह सभी संदेहों के परे साबित होता है कि तारीख 7 अगस्त, 2004 के करार प्रदर्श पी ए के अधीन अग्रिम विक्रय प्रतिफल 3,00,000/- रुपए के रूप में संदाय करने के अलावा, करार में प्रतिवादी की यह सम्यक् अभिस्वीकृति थी, वादी ने भी प्रतिवादी की ओर से वाद भूमि का एक भाग माप 25 बीघा, 16 बिस्वा भूमि प्राप्त करने के लिए 2,11,950/- रुपए जमा की थी और तद्द्वारा संविदा के अपने भाग का भागतः पालन कर दिया था । साक्ष्यों से यह साबित होता है कि तारीख 5 अप्रैल, 2005 को उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में

दोनों वादी और प्रतिवादी उपस्थित थे और उसका विवरण क्रमशः तारीख 5 अप्रैल, 2004 प्रदर्श पी बी और प्रदर्श डी ए के शपथपत्रों में था, जो कार्यपालक मजिस्ट्रेट-सह-तहसीलदार, नालागढ़ के कार्यालय में लिपिक अभि. सा. 2 श्री सुन्दर सिंह के साक्ष्य से साबित होता है । उसके अनुसार, प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत शपथपत्र प्रदर्श डी ए को अपराह्न 4.45 बजे अनुप्रमाणित किया गया था जबकि वादी के शपथपत्र प्रदर्श पी बी को अपराह्न 4.55 बजे अनुप्रमाणित किया गया था । वादी ने वादपत्र के पैरा 7 में विनिर्दिष्टतः यह प्रकथन किया है कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को प्रतिवादी उससे उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में मिला था । जब उसने उससे अतिशेष विक्रय प्रतिफल स्वीकार करने और विक्रय-विलेख निष्पादित करने का निवेदन किया था किन्तु, उसने करार का पालन करने से इनकार कर दिया और लालचवश और अधिक धन की मांग करने लगा । तथापि, अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित होते हुए उसने यह कथन किया कि जैसी कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को सहमति हुई थी, वह तहसील कार्यालय, नालागढ़ गया था । जहां उसने सायंकाल तक प्रतिवादी का इन्तजार किया किन्तु वह नहीं आया । इसी प्रभाव का वर्णन प्रतिवादी द्वारा तारीख 4 अप्रैल, 2004 को कार्यपालक मजिस्ट्रेट, नालागढ़ के समक्ष प्रस्तुत शपथपत्र प्रदर्श पी बी में है । इस प्रकार, प्रतिवादी की ओर से यह दलील दी गई कि एक ओर वादपत्र में वादी द्वारा किए गए दो बयानों में विषयान्तर है और दूसरी ओर, शपथपत्र प्रदर्श पी बी तथा अभि. सा. 1 के रूप में उसके परिसाक्ष्य उसके पक्षकथन को मिथ्या साबित करते हैं । सत्य यह है कि दोनों बयानों के बीच विषयान्तर से इनकार नहीं किया जा सकता है किन्तु, तथ्य यह शेष रह जाता है कि इसे स्वतंत्र और तर्कपूर्ण दस्तावेजी साक्ष्य के माध्यम से किसी भी संदेह के परे साबित होता है कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को दोनों वादी और प्रतिवादी उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में मिले थे और यह उस दिन कार्यालय में उनकी उपस्थिति के परिणामस्वरूप ही उनके द्वारा क्रमशः सशपथ शपथपत्र प्रदर्श पी बी, अपराह्न 4.55 बजे और प्रदर्श डी ए, अपराह्न 4.45 बजे फाइल किए गए थे । ऐसा होते हुए दस्तावेजी बयान की वादपत्र में किए गए प्रकथनों और शपथपत्रों में अन्तर्विष्ट विवरणों के ऊपर अधिमानता होगी । चूंकि, अब यह अभिनिर्धारित किया गया है कि नियत तारीख 5 अप्रैल, 2004 को दोनों वादी और प्रतिवादी, उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में आए थे तो यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनके आने का प्रयोजन तारीख 7 अगस्त, 2003 के विक्रय करार, प्रदर्श पी ए के संबंध में आवश्यक रूप से था । यह निष्कर्ष प्रतिवादी द्वारा अपने

काउंसेल के माध्यम से उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उनके आने के अगले ही दिन वादी पर तामील तारीख 6 अप्रैल, 2004 के विधिक नोटिस प्रदर्श पी सी से स्पष्ट होता है जो इस प्रकार हैं । (पैरा 24, 25, 26, 27 और 28)

अभि. सा. 1 के रूप में वादी ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को अतिशेष विक्रय रकम का संदाय करने के लिए उसके पास नकद रकम तैयार था । उसने श्री सूचा नन्द से ऋण पर धन लिया था । न्यायालय के अनुसार, वह भूमि क्रय करने के लिए इच्छुक था और है तथा एक सप्ताह की नोटिस पर निधि की व्यवस्था कर सकता है । उक्त श्री सूचा नन्द द्वारा ऋण देने के बारे में तारीख 27 अगस्त, 2004 का शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए फाइल किया गया है जिसकी मृत्यु के पश्चात् शपथपत्र को उसके पुत्र अभि. सा. 7 श्री तारसेम लाल के साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है । शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए के अनुसार श्री सूचा नन्द ने वादी को भूमि क्रय करने/विक्रय-विलेख का निष्पादन करने के लिए 45,00,000/- रुपए का अग्रिम ऋण दिया था । शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 5/ए पूर्वोक्त श्री सूचा नन्द के खाता सं. एस. बी. 25061, पंजाब नेशनल बैंक, नालागढ़ का कथन है । इसे उक्त बैंक के सी. टी. ओ. श्री जगदीश टपरालिया, अभि. सा. 5 के साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है । खाता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 5/ए के कथन का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि श्री सूचा नन्द ने तारीख 5 अप्रैल, 2005 को अपने खाते से 45,00,000/- रुपए निकाले थे और अगले ही दिन अर्थात् तारीख 6 अप्रैल, 2004 को उसे पुनः जमा किया था । यह साक्ष्य वादी द्वारा किए गए इन अभिवाकों से पूर्णतया संगत है कि उसने अतिशेष विक्रय रकम के साथ ही अन्य खर्चों की व्यवस्था करने के लिए श्री सूचा नन्द से 45,00,000/- रुपए ऋण लिया था किन्तु, प्रतिवादी नहीं आया और करार का पालन करने से इनकार कर दिया क्योंकि वह और अधिक धन की मांग करने लगा था इसलिए, वह उससे नहीं मिला और उसने उक्त 45,00,000/- रुपए श्री सूचा नन्द को वापस कर दिए थे जिन्होंने उसे अगले दिन (तारीख 6 अप्रैल, 2004) अपने खाते में पुनः जमा कर दिया था । इस प्रक्रम पर इस बात का अवलोकन करना प्रासंगिक होगा कि अभि. सा. 7 श्री तारसेम लाल द्वारा शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए के सबूत और उसके अभिलिखित कथन का प्रतिवादी की ओर से सबूत के प्रकार के आधारों पर आक्षेप किया गया था और इस प्रक्रम पर अभिलिखित कथन का खंडन किया गया । आक्षेपों को बनाए रखा गया ताकि इन्हें तर्कों

की सुनवाई के समय विनिश्चित किया जा सके । सत्य यह है कि इस विवाद्यक सं. 1 का कि क्या वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन कर दिया है और विक्रय करार के अनुसरण में करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद है, जैसा कि अभिकथित है, को साबित करने का भार वादी पर है । उसी समय पर इस विवाद्यक सं. 8 को साबित करने का भार कि क्या तारीख 7 अगस्त, 2003 का विक्रय करार रद्द हो गया है और अग्रिम धन की रकम संविदा करार के निबंधनों में समपहृत हो गया है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव, प्रतिवादी पर है । दी गई परिस्थितियों और इन सुस्थिर विधिक प्रतिपादनाओं को कि ऐसे मामलों में सबूत का भार स्थानांतरित हो जाता है, को ध्यान में रखते हुए, अभि. सा. 7 श्री तारसेम लाल अपने मृतक पिता के सशपथ शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए को साबित करने के लिए बेहतर व्यक्ति है और खंडन में अभिलिखित उसके कथन के बारे में आक्षेप, वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में वैधतः मान्य नहीं है । शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए, स्वर्गीय श्री जयपाल रनौत, नोटरी पब्लिक, नालागढ़ द्वारा अनुप्रमाणित था । तथापि, इसी बीच में उसकी मृत्यु होने पर उसका पुत्र अभि. सा. 6 श्री अजित पाल सिंह ने लाल स्याही से घेरा बनाते हुए, उसके हस्ताक्षरों को साबित किया है और इन्हें "ए" से चिन्हित किया है । उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी ने तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार प्रदर्श पी ए के अधीन अग्रिम विक्रय प्रतिफल के रूप में आरम्भतः 3,99,000/- रुपए का संदाय किया और इसके पश्चात् प्रतिवादी द्वारा लिए गए ऋण के विरुद्ध बैंक में बंधक वाद भूमि के एक भाग माप 25 बीघा, 16 बिस्वा भूमि का मोचन कराने के लिए बैंक में उक्त 2,11,950/- रुपए जमा करते हुए, संविदा के अपने भाग का भागतः पालन कर दिया था और उसके शेष भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद भी था, जिसके लिए उसने श्री सूचा नन्द से 45,00,000/- रुपए ऋण भी लिया था । यदि ऐसा था तो एक अप्रदर्श प्रमाणपत्र तारीख 19 अप्रैल, 2004 को वादी द्वारा दोनों रकमों 55,150/- रुपए तथा 1,56,800/- रुपए (कुल 2,11,950/- रुपए) को जमा करने वाले जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए तथा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी को अभिलेख पर लिया गया था जिसे किसी भी कल्पना द्वारा मिथ्या नहीं कहा जा सकता है । यह अभिवाक् कि समय, संविदा का सार है, प्रतिवादी द्वारा उद्भूत किया गया है और उसे इसे सिद्ध किया जाना अपेक्षित है । तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार, प्रदर्श पी ए के अनुसार, शेष विक्रय प्रतिफल

40,48,500/- रुपए तारीख 5 अप्रैल, 2004 तक देय था । विवाद्यक सं. 1 के माध्यम से यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वादी अतिशेष विक्रय प्रतिफल और विक्रय-विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए आनुषंगिक खर्चों के बारे में 45,00,000/- रुपए सहित उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उपस्थित था । तथापि, यदि इसे यह तर्क करने के लिए एक पल के लिए प्रतिकूल उपधारित किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि संविदा का नियत तारीख अर्थात् तारीख 5 अप्रैल, 2004 तक पालन नहीं किया गया, यह वादी के कारण नहीं अपितु प्रतिवादी के कारण जो इसके लिए उत्तरदायी है । इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी ने प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में उपस्थित होते हुए, अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान स्वेच्छया अपने कथन के पैरा 4 में यह कथन किया कि वादी तारीख 21 अप्रैल, 2004 को मुझसे मिला था और जब मैंने वादी को विक्रय-विलेख निष्पादित करने और उसे रजिस्ट्रीकृत करने के लिए कहा तो वादी ने मुझे यह बताया कि स्वयं उसके पास अपेक्षित अतिशेष विक्रय प्रतिफल नहीं है और उसकी व्यवस्था करने कि लिए तीसरे पक्षकार की ओर देखने लगा । इस प्रकार, यह प्रकट होता है कि स्वयं उसके बयान के अनुसार भी प्रतिवादी विक्रय-विलेख निष्पादित करने और उसे तारीख 21 अप्रैल, 2004 अर्थात् करार में नियत तारीख 5 अप्रैल, 2004 के पश्चात् भी रजिस्ट्रीकृत कराने के लिए तैयार था और वादी पर करार के अधीन तारीख 6 अप्रैल, 2004 को एक नोटिस प्रदर्श पी सी तामील की थी । इन परिस्थितियों में, उसे स्वयं यह कहने नहीं दिया जा सकता है कि समय संविदा का सार नहीं था । (पैरा 29, 30, 31, 35, 37 और 38)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012] (2012) 5 एस. सी. सी. 712 :
नरेन्दरजीत सिंह बनाम **नार्थ स्टार इस्टेट प्रोमोट्र्स लिमिटेड** ; 18

[2009] (2009) 17 एस. सी. सी. 27 :
अजहर सुल्तान बनाम **बी. राजमणि और अन्य** ; 18

[2008] (2008) 12 एस. सी. सी. 144 :
रवि प्रकाश अग्रवाल और अन्य बनाम **राजेश प्रसाद अग्रवाल और अन्य** ; 18

[2004] (2004) 6 एस. सी. सी. 649 :
पी. डिसूजा बनाम **सोनड्रिलो नायडू** ; 18

[2002] (2002) 1 एस. सी. सी. 134 :
वीराई अम्मल बनाम **सीनी अम्मल** ; 18

[2000] (2000) 7 एस. सी. सी. 548 :
गोविन्द राम बनाम **ज्ञान चन्द** ; 18

[1996] (1996) 5 एस. सी. सी. 589 :
लारदू मैरी डेविड और अन्य बनाम **लूइस चिन्नया अरोजीस्वामी और अन्य** ; 18

[1993] (1993) 1 एस. सी. सी. 519 :
चांद रानी (श्रीमती) (मृत) मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **कमल रानी (श्रीमती) (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** ; 18

[1987] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 2328 =
(1987) सप्ली. एस. सी. सी. 340 :
परकुन्नन विटील जोसफ के पुत्र मैथ्यू बनाम **नेडूमबारा कुरुविला के पुत्र और अन्य** ; 18

[1978] (1978) 2 एस. सी. सी. 116 :
श्रीमती संध्या रानी सरकार बनाम **श्रीमती सुधा रानी देवी और अन्य** ; 18

[1975] आई. एल. आर. 1975 एच. पी. 820 :
राखा सिंह बनाम **संतोखा और अन्य** ; 18

[1967] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 868 :
गोमतीनायगम पिल्लई और अन्य बनाम **पलनीस्वामी नाडर** । 18

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2004 की सिविल वाद सं. 39.

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अधीन वाद ।

वादी की ओर से श्री रमाकान्त शर्मा, अधिवक्ता

प्रतिवादी की ओर से सर्वश्री भूपेन्द्र गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ नीरज गुप्ता, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति वी. के. शर्मा – वादी ने यह वाद प्रतिवादी के विरुद्ध तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार के विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री मंजूर करने के लिए फाइल की है, जिसके द्वारा ग्राम सोरी गुज्जरन, परगना पलासी, तहसील नालागढ़, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश में स्थित वर्ष 1997-98 के लिए जमाबंदी के अनुसार, खेवट/खतौनी सं. 7/8 में समाविष्ट पहले की भूमि माप 33 बीघा, 9 बिस्वा भूमि, खसरा सं. 175 (0-13 बीघा) खेवट/खतौनी सं. 53/54, खसरा सं. 126 (3-9 बीघा), खसरा सं. 593/128, (25-16 बीघा), खसरा सं. 129 (0-14 बीघा), खसरा सं. 127 (0-9 बीघा) और खसरा सं. 538/125 (2-8 बीघा), कीटा (प्लाट) 6 में समाविष्ट भूमि का विक्रय करने के लिए सहमत होना कहा गया है, जिसे इसमें इसके पश्चात् "वाद भूमि" कहा गया है ।

2. वादी का पक्षकथन यह है कि वह ग्राम और डाकघर लोघी माजरा, तहसील नालागढ़, जिला सोलन का स्थायी निवासी है और एक कृषक है । वह हिमाचल प्रदेश राज्य में भूमि क्रय करने का हकदार होने के नाते उसने प्रतिवादी के साथ वाद भूमि के संबंध में 1,30,000/- रुपए प्रति बीघा की दर से कुल 43,58,500/- रुपए के प्रतिफल के एवज में तारीख 7 अगस्त, 2003 को एक विक्रय करार किया जिसमें से उसने अग्रिम धन के रूप में 3,00,000/- रुपए का संदाय कर दिया था जिसकी करार में प्रतिवादी द्वारा स्वीकृति की गई थी ।

3. प्रतिवादी, जिसने वाद भूमि का एक भाग खसरा सं. 593/128, माप 25 बीघा, 16 बिस्वा भूमि स्टेट बैंक आफ पटियाला, ए. डी. बी. ब्रांच, नालागढ़ को बंधक रखा था, ने उसका मोचन कराने के लिए सहमत हुआ था । अतिशेष विक्रय रकम 5 अप्रैल, 2004 तक संदत्त करने को सहमत हुआ था और उसके पश्चात्, करार के निबंधनों में विक्रय-विलेख या तो वादी के पक्ष में या उसके नामनिर्देशिती के पक्ष में निष्पादित किया जाना था ।

4. वादी के अनुसार, समय, संविदा का सार नहीं है जैसा कि तारीख 7 अगस्त, 2003 के विक्रय करार से प्रकट होता है । यह भी प्रकथन किया है कि प्रतिवादी ने करार के निबंधनों का पालन करने से इनकार कर दिया क्योंकि इसके बजाय उसने खसरा सं. 593/128, माप 25 बीघा में समाविष्ट पूर्वोक्त भूमि का बैंक से मोचन करा लिया और वादी से ऐसा करने के लिए आवश्यक बताया । तद्नुसार, तारीख 25 मार्च, 2004 को वादी ने प्रतिवादी के खाते में 2,11,950/- रुपए जमा किए और भूमि

मोचन करा लिया । बैंक द्वारा जारी इस आशय का प्रमाणपत्र वादपत्र के साथ फाइल किया गया है ।

5. वादी का यह भी पक्षकथन है कि जैसी कि सहमति हुई थी तारीख 5 अप्रैल, 2005 को वह सम्पूर्ण अतिशेष विक्रय प्रतिफल के साथ ही रजिस्ट्रीकरण के खर्चे, जिसमें स्टाम्प पेपर आदि के खर्चे सम्मिलित थे, के साथ न्यायालय परिसर में स्थित उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उपस्थित रहा । वादी के अनुसार, प्रतिवादी भी उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उपस्थित था और उससे मिला था । उसने उससे अतिशेष विक्रय रकम स्वीकार करने और करार के निबंधनानुसार विक्रय-विलेख निष्पादित करने का निवेदन किया किन्तु उसने लालचवश करार का पालन करने से इनकार कर दिया और अधिक धन की मांग करना प्रारम्भ कर दिया । वादी ने यह भी कथन किया कि वह तारीख 5 अप्रैल, 2005 को प्रातःकाल से सायंकाल तक उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उपस्थित रहा । उसके द्वारा उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के समक्ष सशपथ फाइल इस आशय का एक शपथपत्र वादपत्र के साथ फाइल किया गया है ।

6. यह भी अभिवाक् किया है कि वादी को तब अत्यधिक आश्चर्य हुआ जब प्रतिवादी ने निष्पादित विक्रय-विलेख देने के बजाय अपने काउंसेल श्री एच. आर. शर्मा, अधिवक्ता नालागढ़ के माध्यम से तारीख 6 अप्रैल, 2004 का एक नोटिस जारी किया जिसका उसने अपने काउंसेल के माध्यम से इसमें उपर्युक्त वर्णित वास्तविक तथ्यों का कथन करते हुए, तारीख 20 अप्रैल, 2004 को उत्तर दिया । प्रतिवादी द्वारा यह आधार लिया गया कि तारीख 7 अगस्त, 2003 का करार तारीख 5 अप्रैल, 2004 को रद्द हो गया था जिसका कोई सार नहीं रह गया है । यह प्राख्यान किया कि इसके उत्तर से यह स्पष्ट होता है कि वादी सभी प्रकार से करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था और है ।

7. यह भी कथन किया है कि वादी ने सम्पूर्ण अतिशेष विक्रय प्रतिफल के साथ ही अन्य खर्चे के रूप में कुल 45,00,000/- रुपए श्री सूचा नन्द, पुत्र श्री दौलत राम, निवासी मखू माजरा, तहसील नालागढ़ से प्राप्त किया था जिसने तारीख 5 अप्रैल, 2004 को उक्त रकम पंजाब नेशनल बैंक, नालागढ़ से आहरित किया था जिसे 6 अप्रैल, 2004 को पुनः जमा किया था क्योंकि प्रतिवादी निष्पादित विक्रय-विलेख देने में असफल रहा और वादी ने उक्त रकम श्री सूचा नन्द को वापस कर दी थी ।

वादी ने यह दावा किया कि उसने तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार के अपने भाग का पालन कर दिया है । तथापि, यह प्रतिवादी ही है जो करार के निबंधनों का पालन करने में असफल रहा ।

8. यह प्रभाव का भी प्रकथन किया गया है कि प्रतिवादी ने अन्तरस्थ हेतु से उक्त बैंक से पुनः नया ऋण 2,00,000/- रुपए तारीख 5 जुलाई, 2004 को रपट सं. 301 द्वारा स्टेट बैंक आफ पटियाला, ए. डी. बी. शाखा, नालागढ़ के पास पूर्वोक्त भूमि माप 25 बीघा, 16 बिस्वा, खसरा सं. 593/128 को बंधक रखते हुए पुनः प्राप्त कर लिया था । वादी को इस बारे में तारीख 27 अगस्त, 2004 को ही जानकारी हो पाई थी । इसलिए प्रतिवादी के आशय से यह स्पष्ट होता है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन नहीं करने का दोषी है । यह प्रार्थना की गई है कि यह निर्देश दिया जा सकता है कि प्रतिवादी पूर्वोक्त भूमि खसरा सं. 593/128, माप 25 बीघा, 16 बिस्वा का मोचन कराए या वैकल्पिक रूप में वादी के लिए यह स्वतंत्रता आरक्षित की जाए कि वह अतिशेष विक्रय प्रतिफल 38,36,550/- रुपए जमा करते हुए उसका मोचन करा ले । विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष के अतिरिक्त वादी को क्षतिपूर्ति के लिए दावा भी स्थापित किया जाए ।

9. प्रतिवादी द्वारा वाद का विरोध वादपत्र के बारे में प्रारम्भिक आक्षेप करते हुए किया गया कि इसे वैधतः और समुचित तौर पर सत्यापित नहीं किया गया है और विधि के अनुसार भी इसका समर्थन करते हुए शपथपत्र फाइल नहीं किया गया है, वादपत्र को फाइल करने के लिए वादी के पक्ष में वैधतः प्रवर्तनीय वाद हेतुक का अभाव होने के नाते नामंजूर किए जाने योग्य है और वाद कायम रखे जाने योग्य नहीं है तथा वाद फाइल करने से वादी स्वयं अपने कार्य, विलेखों, आचरण और सहमति द्वारा विबंधित है । गुणागुणों पर तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार का निष्पादन स्वीकार कर लिया गया है । तथापि, यह कथित है कि वादी के लिए यह प्राख्यान करना गलत है कि विक्रय-विलेख, तारीख 5 अप्रैल, 2004 तक विक्रय प्रतिफल का अतिशेष रकम का संदाय करने के पश्चात् निष्पादित किया जाना था । तथ्य यह है कि विक्रय-विलेख, तारीख 5 अप्रैल, 2004 तक विक्रय प्रतिफल का अतिशेष रकम प्राप्त करने के पश्चात् निष्पादित किया जाना था ।

10. यह अभिकथित है कि वादी करार के निबंधनों का पालन करने में असफल रहा है । इस बात से इनकार किया गया है कि समय, संविदा का सार नहीं था । यह कथित है कि वादी ने विक्रय करार के खंडों का गलत अर्थ लगाया है । वादी द्वारा पूर्वोक्त बंधक के मोचन के रूप में वाद

भूमि का एक भाग प्राप्त करने के लिए बैंक को 2,11,950/- रुपए का संदाय किया गया था, से इनकार किया गया है, तथा इसके बजाय यह कथित किया गया कि संदाय प्रतिवादी द्वारा किया गया है । यह कथित है कि यह प्रतीत होता है कि वादी ने असम्यक् लाभ प्राप्त करने के लिए यह दर्शित करने हेतु कुछ दस्तावेजों में छल और फेरफार किया कि रकम को वादी द्वारा जमा किया गया । प्रतिवादी ऐसे दस्तावेज द्वारा आबद्ध नहीं है जो पूर्णरूपेण छल, फेरफार और कूटरचना के परिणामस्वरूप बनाए गए हैं । रकम को प्रतिवादी द्वारा भूमि मोचन कराने के लिए अपने खाते से जमा किया गया था । यह प्रतीत होता है कि वादी ने मिथ्या प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए बैंक कर्मचारियों के साथ दुरभिसंधि की है । प्रतिवादी, वादी के ऐसे किन्हीं कार्यों से आबद्ध नहीं हैं जिनसे वादी कपटपूर्वक और पूर्णरूपेण छल द्वारा प्रमाणपत्र प्राप्त करते हुए स्वयं अपने फायदे के लिए दस्तावेज सुनिश्चित किए हों । शेष पैरा से इनकार किया गया है ।

11. इस बात से इनकार किया गया है कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को वादी उप-रजिस्टार के कार्यालय में उपस्थित था और प्रतिवादी से मिला था । इसके बजाय तथ्य यह है कि प्रतिवादी पूरा दिन उक्त उप-रजिस्टार के कार्यालय में उपस्थित रहा किन्तु वादी किन्हीं कारणों से जिन्हें वह बेहतर तरीके से जानता होगा, ने विक्रय करार के निबंधनों का पालन करने के लिए स्वयं को तैयार और रजामंद दर्शित करते हुए उपस्थित नहीं हुआ न ही प्रतिवादी को कोई संदेश भेजा । प्रतिवादी पूरा दिन वादी का इंतजार करता रहा और अतिशेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने के पश्चात् रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख प्राप्त करने के लिए उक्त कार्यालय में आने के लिए सशपथ संकेत दिया था । इसलिए, वादी न्यायालय से सत्य और तात्विक तथ्यों को छिपाने का दोषी है और इस प्रकार, वह करार के विनिर्दिष्ट पालन के विवेकीय अनुतोष पाने का हकदार नहीं है । इस आरोप से कि प्रतिवादी लालची हो गया था और अधिक धन की मांग करने लगा था, से भी इनकार किया गया । चूंकि, वादी ने विक्रय करार में अनुध्यात विक्रय प्रतिफल का अतिशेष रकम का संदाय नहीं किया इसलिए, प्रतिवादी ने पूरे दिन वादी का इंतजार करने के पश्चात् करार रद्द करने के लिए बाध्य हुआ । यह प्राख्यान किया गया कि समय, करार का सार था । प्रतिवादी द्वारा वादी को जारी तारीख 6 अप्रैल, 2004 का नोटिस और उसके बाद उसके उत्तर की प्राप्ति को स्वीकार किया गया है । तथापि, यह कथन किया गया कि उत्तर करार के निबंधनों का पालन नहीं करने के लिए स्वयं वादी के उपेक्षापूर्ण कृत्यों को ढकने के लिए काल्पनिक तथ्यों

पर आधारित था । नियत तारीख अर्थात् 5 अप्रैल, 2004 के पूर्व भी वादी द्वारा कोई कदम नहीं उठाया गया जिससे कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 तक सौदे को अंतिम रूप दिया जा सके । करार रद्द होने के पश्चात् वादी द्वारा विक्रय प्रतिफल के अतिशेष रकम का संदाय करने का प्रश्न ही नहीं था । वादी कभी भी करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं रहा ।

12. वादी द्वारा किए गए इन प्रकथनों से कि उसने विक्रय-विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के संबंध में अतिशेष विक्रय प्रतिफल के साथ ही अन्य खर्चों को प्रतिवादी को संदाय करने के लिए श्री सूचा नन्द से 45,00,000/- रुपए की व्यवस्था की थी, की जानकारी नहीं होने से इनकार किया गया है । प्रतिवादी के अनुसार, यह प्रतीत होता है कि वादी ने अपने पक्ष में मिथ्या साक्ष्य सृजित करने के लिए श्री सूचा नन्द और पंजाब नेशनल बैंक, नालागढ़ के बैंक कर्मचारियों के साथ दुरभिसंधि करके कतिपय दस्तावेजों को गढ़ा था जो अभिकथित धन निकालने और जमा करने से दर्शित होता है । यह अभिकथित है कि वादी विनिर्दिष्ट पालन के विवेकीय अनुतोष के लिए स्वच्छ हाथों से नहीं आया है जिसके लिए वह हकदार है । इसके अतिरिक्त, करार रद्द हो गया है और अग्रिम धन समपहृत हो गया है ।

13. लिखित कथन के पैरा 12 में निम्नलिखित कथन किया गया है :–

> "पैरा 13 की अन्तर्वस्तुओं को मात्र इस सीमा तक स्वीकार किया जाता है कि प्रतिवादी ने तारीख 25 जुलाई, 2004 को पुनः भूमि बंधक रखी । वस्तुतः प्रतिवादी ने विक्रय संविदा को पूरा करने के लिए भूमि मोचन हेतु 2,11,950/- रुपए का धन संदाय करने की व्यवस्था की थी । चूंकि वादी ने प्रतिवादी को विक्रय प्रतिफल की अतिशेष रकम का संदाय करते हुए तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार के निबंधनों का पालन नहीं किया, इसलिए, प्रतिवादी धन को वापस संदाय करने के लिए पुनः ऋण लिया था जिसकी उसने ऋण के रूप में उससे सहमति ली थी । विक्रय करार रद्द होने के पश्चात् धन, जिसे प्रतिवादी द्वारा भूमि मोचन के लिए बैंक को संदत्त किया गया था, का पुनः संदाय किया जाना था, इसलिए, इन बाध्यकारी परिस्थितियों के अधीन प्रतिवादी ने ऋण के लिए अपनी भूमि को पुनः बंधक रखा । यह उल्लेख करना समीचीन हो सकता है कि प्रतिवादी को वादी के लोप और आरोप्य कार्यों के कारण अनावश्यक वित्तीय

हानि कारित हुई । क्योंकि प्रतिवादी ने विक्रय प्रतिफल की मूल रकम प्राप्ति की प्रत्याशा में पंजाब राज्य में भूमि क्रय करने के लिए सौदे की कोशिश की थी । तथापि, वादी द्वारा करार के निबंधनों का पालन करने में असफल रहने पर, प्रतिवादी को अत्यधिक वित्तीय हानि और नुकसान हुआ क्योंकि भूमि का मूल्य जिसे प्रतिवादी द्वारा ऐसे सौदे के अधीन क्रय किया जाना आशयित था, बढ़ गया था । अब प्रतिवादी ऐसी भूमि को क्रय करने की स्थिति में नहीं है क्योंकि विक्रय करार रद्द हो गया है । प्रतिवादी को धन की अत्यधिक और तत्काल आवश्यकता भी थी । वादी उन कारणों से जिन्हें वह बेहतर तरीके से जानता होगा, विक्रय प्रतिफल के अतिशेष रकम का संदाय रोक रखा था जिससे वादी को न केवल कठिनाई की स्थिति में रहना पड़ा अपितु उसे अत्यधिक वित्तीय हानि भी उठानी पड़ी । इसलिए, अब वादी को यह प्राख्यान करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए रजामन्द था और यह प्रतिवादी ही था जो संविदा के अपालन का दोषी है । चूंकि, विक्रय करार रद्द हो गया है, इसलिए, वादी करार के खंडों का प्रवर्तन कराने की ईप्सा नहीं कर सकता है । शेष पैरा से इनकार किया जाता है ।"

14. क्षतिपूर्ति के दावों को पूर्ण और विशिष्ट सामग्रियों तथा मात्रा के अभाव में विवादित किया गया है ।

15. प्रत्युत्तर में, वादी ने प्रतिवादी द्वारा लिए गए आधार से इनकार किया और वादपत्र में स्थापित स्वयं अपने पक्षकथन को पुनः दोहराया ।

16. पक्षकारों के अभिवचनों के आधारों पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

"1. क्या वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन किया और क्या वह विक्रय करार के अनुसार, संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द था, जैसा कि अभिकथित है ?

2. क्या समय, संविदा का सार था, जैसा कि अभिकथित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

3. क्या वादी ने बैंक को 2,11,950/- रुपए का संदाय करने के पश्चात् खसरा सं. 593/128 में समाविष्ट भूमि का मोचन करा लिया था । यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

4. क्या वादपत्र वैधतः और समुचित तौर पर सत्यापित नहीं है । यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

5. क्या वादी के पास वर्तमान वाद कायम रखने के लिए प्रवर्तनीय वाद हेतुक नहीं है ?

6. क्या वादी स्वयं अपने कार्य, विलेख, आचरण और उपमति के कारण वर्तमान वाद फाइल करने से विबंधित है, जैसा कि अभिकथित है । यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

7. क्या वादी ने 2,11,950/- रुपए जमा करने के पश्चात् मिथ्या प्रमाणपत्र प्राप्त किया, जैसा कि अभिकथित है । यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

8. क्या तारीख 7 अगस्त, 2003 का विक्रय करार रद्द हो गया है और संविदा करार के निबंधनों में अग्रिम धन की रकम समपहृत हो गई है । यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

9. क्या वादी तारीख 7 अगस्त, 2003 के संविदा करार के विनिर्दिष्ट पालन द्वारा कब्जे की डिक्री पाने का हकदार है, जैसा कि अभिकथित है ?"

17. पक्षकारों ने साक्ष्य प्रस्तुत किया । मैंने, उनके विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया ।

18. पक्षकारों ने निम्नलिखित निर्णयज निर्णयों का अवलंब लिया :–

वादी

1. **नरेन्दरजीत सिंह** बनाम **नार्थ स्टार इस्टेट प्रोमोट्र्स लिमिटेड**[1],

2. **अजहर सुल्तान** बनाम **बी. राजमणि और अन्य**[2],

3. **पी. डिसूजा** बनाम **सोनड्रिलो नायडू**[3],

4. **वीराई अम्मल** बनाम **सीनी अम्मल**[4],

---

[1] (2012) 5 एस. सी. सी. 712.
[2] (2009) 17 एस. सी. सी. 27.
[3] (2004) 6 एस. सी. सी. 649.
[4] (2002) 1 एस. सी. सी. 134.

5. **गोविन्द राम** बनाम **ज्ञान चन्द**[1],

6. **चांद रानी (श्रीमती) (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **कमल रानी (श्रीमती) (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण**[2],

7. **राखा सिंह** बनाम **संतोखा और अन्य**[3],

8. **गोमतीनायगम पिल्लई और अन्य** बनाम **पलनीस्वामी नाडर**[4] ।

प्रतिवादी

1. **रवि प्रकाश अग्रवाल और अन्य** बनाम **राजेश प्रसाद अग्रवाल और अन्य**[5],

2. **लारदू मैरी डेविड और अन्य** बनाम **लूइस चिन्नया अरोजीस्वामी और अन्य**[6],

3. **परकुन्नन विटील जोसफ के पुत्र मैथ्यू** बनाम **नेडूमबारा कुरुविला के पुत्र और अन्य**[7],

4. **श्रीमती संध्या रानी सरकार** बनाम **श्रीमती सुधा रानी देवी और अन्य**[8] ।

19. उपर्युक्त प्रमाणिकताओं में प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों को विचार में लिया गया और विवेक में रखा गया है और उन्हें जब भी आवश्यकता होगी निर्दिष्ट किया जाएगा ।

20. चर्चा और विनिश्चय के लिए विवाद्यकों को लेने के पूर्व यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि जबकि प्रतिवादी के अनुसार, समय संविदा का सार था और वादी की ओर से इसके प्रतिकूल आधार लिया गया है तो विवाद्यक सं. 2 को साबित करने का भार पूर्ववर्ती के बजाय बाद वाले पर गलत तौर पर अधिरोपित करना प्रतीत होता है । तद्नुसार,

---

[1] (2000) 7 एस. सी. सी. 548.
[2] (1993) 1 एस. सी. सी. 519.
[3] आई. एल. आर. 1975 एच. पी. 820.
[4] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 868.
[5] (2008) 12 एस. सी. सी. 144.
[6] (1996) 5 एस. सी. सी. 589.
[7] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 2328 = (1987) सप्ली. एस. सी. सी. 340.
[8] (1978) 2 एस. सी. सी. 116.

इस विवाद्यक को साबित करने का भार मूल प्रतिवादी के ऊपर पुनः अधिरोपित किया जाता है । इसी प्रकार, विवाद्यक सं. 9 वाद में दावाकृत अनुतोष की प्रकृति में है इसलिए, इसे साबित करने का भार वादी पर डाला जाना चाहिए, जिससे मूल वादी पर पुनः अधिरोपित किया जाता है ।

विवाद्यक सं. 1, 3 और 7

21. ये सभी विवाद्यक साक्ष्य और विधि के सामान्य मूल्यांकन की अपेक्षा से एक दूसरे से जुड़े होने के नाते इन्हें चर्चा और विनिश्चय के लिए एक साथ लिया जाता है ।

22. तारीख 7 अगस्त, 2003 के विक्रय करार प्रदर्श पी ए को प्रतिवादी की ओर से स्वीकृत है । पक्षकारों के बीच संविवाद यह है कि कौन इसके अपालन के लिए जिम्मेदार है । वादी के अनुसार, वह सभी प्रकार से करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था और है तथा वस्तुतः उसने तारीख 25 मार्च, 2004 को प्रतिवादी के एवज में बैंक में 2,11,950/- रुपए जमा करते हुए बैंक से खसरा सं. 593/128 माप, 25 बीघा 16 बिस्वा में समाविष्ट वाद भूमि के एक भाग का मोचन भी कराया है । इसके पश्चात् तारीख 5 अप्रैल, 2004 को वह प्रातःकाल से सायंकाल तक उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में सम्पूर्ण अतिशेष विक्रय प्रतिफल के साथ ही रजिस्ट्रीकरण के खर्चे, जिसमें स्टाम्प पेपर आदि सम्मिलित थे, सहित उपस्थित रहा किन्तु, प्रतिवादी ने लालच के कारण करार का पालन करने से इनकार कर दिया और अधिक धन की मांग करना प्रारम्भ कर दिया ।

23. इसके विपरीत, प्रतिवादी का पक्षकथन यह है कि उसने उपर्युक्त 2,11,950/- रुपए, पूर्वोक्त भूमि माप 25 बीघा 16 बिस्वा का मोचन कराने के लिए बैंक में जमा किया था । उसका यह भी पक्षकथन है कि तारीख 4 अप्रैल, 2005 को वह पूरे दिन उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में विक्रय-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण कराने के लिए उपस्थित रहा किन्तु, वादी ही उपस्थित नहीं हुआ ।

24. स्वीकृततः, वाद भूमि का एक भाग माप 25 बीघा 16 बिस्वा भूमि प्रतिवादी द्वारा लिए गए ऋण के विरुद्ध बैंक में बंधक थी । तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार प्रदर्श पी ए के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि इसमें इस भाव का विवरण है कि प्रतिवादी ने वाद भूमि के एक भाग 25 बीघा 16 बिस्वा भूमि के विरुद्ध उसके द्वारा सृजित पूर्वोक्त ऋणभार के लिए दिया गया वचनबद्ध का पालन कर दिया गया था । वादी के अनुसार,

बकाया ऋण की रकम 2,11,950/- रुपए उसके द्वारा बैंक में तारीख 25 मार्च, 2004 को 55,150/- रुपए के लिए जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए द्वारा और 1,56,800/- रुपए के लिए प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी के द्वारा कुल 2,11,950/- रुपए जमा कर दिए गए थे, जिसे अभियोजन साक्षी 4 श्री मल्कियत सिंह, सहायक प्रबंधक, स्टेट बैंक आफ पटियाला, ए. डी. वी. नालागढ़ के साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है । प्रतिवादी की ओर विलम्ब प्रस्तुति के आधार पर जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी की ग्राह्यता के बारे में आक्षेप किया गया है और उसे खुला रखा गया है जिससे कि उसका बाद में विनिश्चय हो सके । सत्य यह है कि यह दस्तावेज अभिलेख पर अभियोजन साक्षी 4 श्री मल्कियत सिंह की परीक्षा के दौरान ही लाए गए थे । तथापि, यह तथ्य शेष रह जाता है कि ये दस्तावेज लोक दस्तावेज हैं और समुचित अभिरक्षा में लाए गए हैं और विधि के अनुसार साबित हैं । चूंकि, प्रतिवादी की ओर से उद्भूत आक्षेप मान्य नहीं है और इतना ही नहीं ये दस्तावेज न्यायालय की विवक्षित इजाजत से अभिलेख पर लाए गए हैं । जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी की संवीक्षा से यह प्रकट होता है कि पूर्वोक्त रकम 55,150/- रुपए और 1,56,800/- रुपए कुल 2,11,950/- रुपए श्री राजेश वर्मा (वादी) द्वारा श्री हरभजन सिंह (प्रतिवादी) की ओर से जमा किए गए थे ।

25. यद्यपि, प्रतिवादी के अनुसार, उक्त रकम 2,11,950/- रुपए, प्रतिवादी साक्षी 4 श्री दलेल चन्द से ऋण लेने के पश्चात् उसके द्वारा पुनः संदत्त किए गए थे, फिर भी प्रतिवादी साक्षी 4 श्री दलेल चन्द के कथन के साथ उसके कथन का भी संयुक्त और सुसंगत परिशीलन करने पर यह प्रकट होता है कि यह एकमात्र विश्वसनीय कहानी है और इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी ने सुस्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि जमा पर्ची उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित है, जिसने रकम जमा की थी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी उसके द्वारा हस्ताक्षरित नहीं है । यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी साक्षी 4 श्री दलेल चन्द को एक साक्षी के रूप में तैयार किया गया था । प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में यह अभिवाक् नहीं किया गया है कि उसने बैंक से उसके द्वारा लिए गए ऋण का पुनः संदाय करने के लिए प्रतिवादी साक्षी 4 श्री दलेल चन्द से ऋण लिया था । यद्यपि प्रतिवादी साक्षी 4 ने यह स्वीकार किया है कि वादी राजेश वर्मा भी उस समय मौजूद था जब वे बैंक गए थे । तथापि, उसने ढोंगपूर्वक इस बात से अनभिज्ञता जाहिर की

कि वस्तुतः किसने बैंक में धन जमा किया था । वह यह भी नहीं जानता है कि क्या 2,11,950/- रुपए वस्तुतः वादी द्वारा बैंक में जमा किए गए थे या नहीं ।

26. इस प्रकार, यह सभी संदेहों के परे साबित होता है कि तारीख 7 अगस्त, 2004 के करार प्रदर्श पी ए के अधीन अग्रिम विक्रय प्रतिफल 3,00,000/- रुपए के रूप में संदाय करने के अलावा, करार में प्रतिवादी की यह सम्यक् अभिस्वीकृति थी, वादी ने भी प्रतिवादी की ओर से वाद भूमि का एक भाग माप 25 बीघा 16 बिस्वा भूमि प्राप्त करने के लिए 2,11,950/- रुपए जमा की थी और तद्द्वारा संविदा के अपने भाग का भागतः पालन कर दिया था ।

27. साक्ष्यों से यह साबित होता है कि तारीख 5 अप्रैल, 2005 को उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में दोनों वादी और प्रतिवादी उपस्थित थे और उसका विवरण क्रमशः तारीख 5 अप्रैल, 2004 प्रदर्श पी बी और प्रदर्श डी ए के शपथपत्रों में था, जो कार्यपालक मजिस्ट्रेट-सह-तहसीलदार, नालागढ़ के कार्यालय में लिपिक अभि. सा. 2 श्री सुन्दर सिंह के साक्ष्य से साबित होता है । उसके अनुसार, प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत शपथपत्र प्रदर्श डी ए को अपराह्न 4.45 बजे अनुप्रमाणित किया गया था जबकि वादी के शपथपत्र प्रदर्श पी बी को अपराह्न 4.55 बजे अनुप्रमाणित किया गया था । वादी ने वादपत्र के पैरा 7 में विनिर्दिष्टतः यह प्रकथन किया है कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को प्रतिवादी उससे उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में मिला था । जब उसने उससे अतिशेष विक्रय प्रतिफल स्वीकार करने और विक्रय-विलेख निष्पादित करने का निवेदन किया था किन्तु, उसने करार का पालन करने से इनकार कर दिया और लालचवश और अधिक धन की मांग करने लगा । तथापि, अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित होते हुए उसने यह कथन किया कि जैसी कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को सहमति हुई थी, वह तहसील कार्यालय, नालागढ़ गया था । जहां उसने सायंकाल तक प्रतिवादी का इन्तजार किया किन्तु वह नहीं आया । इसी प्रभाव का वर्णन प्रतिवादी द्वारा तारीख 4 अप्रैल, 2004 को कार्यपालक मजिस्ट्रेट, नालागढ़ के समक्ष प्रस्तुत शपथपत्र प्रदर्श पी बी में है । इस प्रकार, प्रतिवादी की ओर से यह दलील दी गई कि एक ओर वादपत्र में वादी द्वारा किए गए दो बयानों में विषयान्तर है और दूसरी ओर, शपथपत्र प्रदर्श पी बी तथा अभि. सा. 1 के रूप में उसके परिसाक्ष्य उसके पक्षकथन को मिथ्या साबित करते हैं । सत्य यह है कि दोनों बयानों के बीच विषयान्तर से इनकार नहीं किया जा सकता है किन्तु, तथ्य यह शेष रह

जाता है कि इसे स्वतंत्र और तर्कपूर्ण दस्तावेजी साक्ष्य के माध्यम से किसी भी संदेह के परे साबित होता है कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को दोनों वादी और प्रतिवादी उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में मिले थे और यह उस दिन कार्यालय में उनकी उपस्थिति के परिणामस्वरूप ही उनके द्वारा क्रमशः सशपथ शपथपत्र प्रदर्श पी बी, अपराह्न 4.55 बजे और प्रदर्श डी ए, अपराह्न 4.45 बजे फाइल किए गए थे । ऐसा होते हुए दस्तावेजी बयान की वादपत्र में किए गए प्रकथनों और शपथपत्रों में अन्तर्विष्ट विवरणों के ऊपर अधिमानता होगी ।

28. चूंकि, अब यह अभिनिर्धारित किया गया है कि नियत तारीख (5 अप्रैल, 2004) को दोनों वादी और प्रतिवादी, उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में आए थे तो यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनके आने का प्रयोजन तारीख 7 अगस्त, 2003 के विक्रय करार, प्रदर्श पी ए के संबंध में आवश्यक रूप से था । यह निष्कर्ष प्रतिवादी द्वारा अपने काउंसेल के माध्यम से उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उनके आने के अगले ही दिन वादी पर तामील तारीख 6 अप्रैल, 2004 के विधिक नोटिस प्रदर्श पी सी के पैरा 6 में अन्तर्विष्ट वर्णनों से स्पष्ट होता है जो इस प्रकार हैं :–

> "6. ज्यादा चालाक बनने की कोशिश नहीं करना क्योंकि आपको गलत तौर पर सशपथ शपथपत्र देने की सलाह दी गई है और आप उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के समक्ष उपस्थित थे । मेरे मुवक्किल ने भी सशपथ शपथपत्र दिया है और उस दिन अपराह्न लगभग 4.30 बजे उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के समक्ष उपस्थित था और मेरा मुवक्किल न्यायालय परिसर में पूरे दिन इन्तजार करता रहा किन्तु आप तारीख 7 अगस्त, 2003 के विक्रय करार के अनुसार विक्रय-विलेख का रजिस्ट्रीकरण करने के लिए न्यायालय परिसर में उपस्थित नहीं हुए । उपर्युक्त तथ्य और परिस्थितियां पूर्वोक्त करार में अनुध्यात ऐसी और विनिर्दिष्ट शर्तें हैं जो मेरे मुवक्किल को स्पष्टतः यह अधिकार देती हैं कि आप के अग्रिम धन को समपहृत कर लें और उसके बाद उपर्युक्त भूमि को किसी भी व्यक्ति को विक्रय कर दें जिसे वह पसन्द करता है ।"

29. अभि. सा. 1 के रूप में वादी ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया कि तारीख 5 अप्रैल, 2004 को अतिशेष विक्रय रकम का संदाय करने के लिए उसके पास नकद रकम तैयार था । उसने श्री सूचा नन्द से

ऋण पर धन लिया था । उसके अनुसार, वह भूमि क्रय करने के लिए इच्छुक था और है तथा एक सप्ताह की नोटिस पर निधि की व्यवस्था कर सकता है । उक्त श्री सूचा नन्द द्वारा ऋण देने के बारे में तारीख 27 अगस्त, 2004 का शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए फाइल किया गया है जिसकी मृत्यु के पश्चात् शपथपत्र को उसके पुत्र अभि. सा. 7 श्री तारसेम लाल के साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है । शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए के अनुसार श्री सूचा नन्द ने वादी को भूमि क्रय करने/विक्रय-विलेख का निष्पादन करने के लिए 45,00,000/- रुपए का अग्रिम ऋण दिया था । शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 5/ए पूर्वोक्त श्री सूचा नन्द के खाता सं. एस. बी. 25061, पंजाब नेशनल बैंक, नालागढ़ का कथन है । इसे उक्त बैंक के सी. टी. ओ. श्री जगदीश टपरालिया, अभि. सा. 5 के साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है । खाता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 5/ए के कथन का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि श्री सूचा नन्द ने तारीख 5 अप्रैल, 2005 को अपने खाते से 45,00,000/- रुपए निकाले थे और अगले ही दिन अर्थात् तारीख 6 अप्रैल, 2004 को उसे पुनः जमा किया था । यह साक्ष्य वादी द्वारा किए गए इन अभिवाकों से पूर्णतया संगत है कि उसने अतिशेष विक्रय रकम के साथ ही अन्य खर्चों की व्यवस्था करने के लिए श्री सूचा नन्द से 45,00,000/- रुपए ऋण लिया था किन्तु, प्रतिवादी नहीं आया और करार का पालन करने से इनकार कर दिया क्योंकि वह और अधिक धन की मांग करने लगा था इसलिए, वह उससे नहीं मिला और उसने उक्त 45,00,000/- रुपए श्री सूचा नन्द को वापस कर दिए थे जिन्होंने उसे अगले दिन (तारीख 6 अप्रैल, 2004) अपने खाते में पुनः जमा कर दिया था ।

30. इस प्रक्रम पर इस बात का अवलोकन करना प्रासंगिक होगा कि अभि. सा. 7 श्री तारसेम लाल द्वारा शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए के सबूत और उसके अभिलिखित कथन का प्रतिवादी की ओर से सबूत के प्रकार के आधारों पर आक्षेप किया गया था और इस प्रक्रम पर अभिलिखित कथन का खंडन किया गया । आक्षेपों को बनाए रखा गया ताकि इन्हें तर्कों की सुनवाई के समय विनिश्चित किया जा सके । सत्य यह है कि इस विवाद्यक सं. 1 का कि क्या वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन कर दिया है और विक्रय करार के अनुसरण में करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद है, जैसा कि अभिकथित है, को साबित करने का भार वादी पर है । उसी समय पर इस विवाद्यक सं. 8 को साबित करने का भार कि क्या तारीख 7 अगस्त, 2003 का विक्रय करार रद्द हो गया है और अग्रिम धन की रकम संविदा करार के निबंधनों में समपहृत हो

गया है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव, प्रतिवादी पर है । दी गई परिस्थितियों और इन सुस्थिर विधिक प्रतिपादनाओं को कि ऐसे मामलों में सबूत का भार स्थानांतरित हो जाता है, को ध्यान में रखते हुए, अभि. सा. 7 श्री तारसेम लाल अपने मृतक पिता के सशपथ शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए को साबित करने के लिए बेहतर व्यक्ति है और खंडन में अभिलिखित उसके कथन के बारे में आक्षेप, वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में वैधतः मान्य नहीं है । शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए, स्वर्गीय श्री जयपाल रनौत, नोटरी पब्लिक, नालागढ़ द्वारा अनुप्रमाणित था । तथापि, इसी बीच में उसकी मृत्यु होने पर उसका पुत्र अभि. सा. 6 श्री अजित पाल सिंह ने लाल स्याही से घेरा बनाते हुए, उसके हस्ताक्षरों को साबित किया है और इन्हें "ए" से चिन्हित किया है ।

31. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि वादी ने तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार प्रदर्श पी ए के अधीन अग्रिम विक्रय प्रतिफल के रूप में आरम्भतः 3,99,000/- रुपए का संदाय किया और इसके पश्चात् प्रतिवादी द्वारा लिए गए ऋण के विरुद्ध बैंक में बंधक वाद भूमि के एक भाग माप 25 बीघा, 16 बिस्वा भूमि का मोचन कराने के लिए बैंक में उक्त 2,11,950/- रुपए जमा करते हुए, संविदा के अपने भाग का भागतः पालन कर दिया था और उसके शेष भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद भी था, जिसके लिए उसने श्री सूचा नन्द से 45,00,000/- रुपए ऋण भी लिया था । यदि ऐसा था तो एक अप्रदर्श प्रमाणपत्र तारीख 19 अप्रैल, 2004 को वादी द्वारा दोनों रकमों 55,150/- रुपए तथा 1,56,800/- रुपए (कुल 2,11,950/- रुपए) को जमा करने वाले जमा पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए तथा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी को अभिलेख पर लिया गया था जिसे किसी भी कल्पना द्वारा मिथ्या नहीं कहा जा सकता है । तद्नुसार, विवाद्यक सं. 1, 3 और 7 विनिश्चित किए जाते हैं ।

विवाद्यक सं. 8

32. पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत साक्ष्यों का सम्पूर्ण और संगत परिशीलन करने पर यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि जबकि वादी सभी प्रकार से संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था, यह प्रतिवादी ही था जो एक या अन्य बहाने से टाल-मटोल करना चाहता था । ऐसा होने पर, उसे अपनी गलतियों का फायदा लेने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । यह निष्कर्ष अन्त में मुख्य परीक्षा में उसके कथन से भी पुष्ट होता है कि "मैं वर्तमान बाजार मूल्य पर विक्रय-विलेख

(निष्पादित) करने के लिए तैयार और रजामंद हूं । मैं संविदात्मक दर पर भूमि विक्रय करने का इच्छुक नहीं हूं" ।

33. इसके अतिरिक्त, तारीख 7 अगस्त, 2003 के विक्रय करार, प्रदर्श पी ए के अभिकथित रद्दकरण के लिए वादी द्वारा लिए गए आधारों में से एक यह है कि वाद भूमि की विक्रय प्रक्रिया में वह पंजाब राज्य में भूमि क्रय करना चाहता था । तथापि, इस प्रभाव का वर्णन न तो तारीख 7 अगस्त, 2003 के विक्रय करार, प्रदर्श पी ए में अथवा तारीख 6 अप्रैल, 2004 के नोटिस प्रदर्श पी सी में है, इसके बजाय इसमें यह कथित है कि उसने अपने कारबार (व्यापार) के लिए धन हेतु वाद भूमि का विक्रय किया था । ऐसी प्रतिरक्षा उसके द्वारा मात्र लिखित कथन में और उसके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य में ली गई थी और इस प्रकार, यह मात्र पश्चात्वर्ती सोच प्रतीत होती है । यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी द्वारा वादी पर तारीख 6 अप्रैल, 2004 का नोटिस प्रदर्श पी सी इस आशय से तामील किया गया था कि करार के अधीन अनुध्यात अतिरिक्त विक्रय प्रतिफल से अधिक में विक्रय करने से बचने हेतु वादी को बाध्य करना ताकि, वह तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार प्रदर्श पी ए के अपने भाग का पालन कर सके और इस प्रकार, यह करार के रद्दकरण और अग्रिम धन का समपहृत करने की कोटि में नहीं आता है ।

34. तद्नुसार, विवाद्यक विनिश्चित किया जाता है ।

विवाद्यक सं. 2

35. यह अभिवाक् कि समय, संविदा का सार है, प्रतिवादी द्वारा उद्भूत किया गया है और उसे इसे सिद्ध किया जाना अपेक्षित है । तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार, प्रदर्श पी ए के अनुसार, शेष विक्रय प्रतिफल 40,48,500/- रुपए तारीख 5 अप्रैल, 2004 तक देय था । विवाद्यक सं. 1 के माध्यम से यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वादी अतिशेष विक्रय प्रतिफल और विक्रय-विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए आनुषंगिक खर्चों के बारे में 45,00,000/- रुपए सहित उप-रजिस्ट्रार, नालागढ़ के कार्यालय में उपस्थित था ।

36. **गोमतीनायगम पिल्लई और अन्य** बनाम **पलनीस्वामी नाडर** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि "यदि संविदा, अचल संपत्ति के विक्रय से संबंधित है तो साधारणतया यह उपधारणा की जाएगी कि समय संविदा का सार नहीं था" । निर्णय का पैरा 4 और 5 सुसंगत होने के नाते निम्नलिखित उद्धृत हैं :–

"4. तथ्य, जो प्रथम प्रश्न के लिए तात्विक हैं, को पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है । भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 55 जो नियत समय पर या उसके पूर्व संविदा के निष्पादक द्वारा पालन करने में असफल रहने के परिणाम पर विचार करता है, का प्रथम पैराग्राफ इस प्रकार उपबंधित है –

> जबकि किसी संविदा का एक पक्षकार किसी बात को विनिर्दिष्ट समय पर या उसके पूर्व, या किन्हीं बातों को विनिर्दिष्ट समयों पर या उनसे पूर्व करने का वचन दे और ऐसी किसी भी बात को उस विनिर्दिष्ट समय पर या उससे पूर्व करने में असफल रहे, तब वह संविदा या उसमें से उतनी, जितना का पालन न किया गया हो, वचनगृहीता के विकल्प पर शून्यकरणीय हो जाएगी, यदि पक्षकारों का आशय यह रहा हो कि समय संविदा का मर्म होना चाहिए । यह न केवल इस कारण से कि विनिर्दिष्ट समय पर या उसके पूर्व जिसे संविदा के अधीन किया जाना था या किए जाने का वचन दिया गया था और उसके पालन में असफल रहा, अन्य पक्षकार ऐसे संविदा से बच सकता है । ऐसा विकल्प कभी उद्भूत होता है यदि पक्षकारों द्वारा यह आशयित है कि समय, संविदा का सार है । समय को सार बनाने का आशय यदि लिखित में अभिव्यक्त किया गया है तो उस भाषा में यह भूल योग्य नहीं हो सकता है, संपत्ति की प्रकृति से यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संविदा के पक्षकार किस संपत्ति का विक्रय करने के लिए सहमत हुए हैं और संविदा के किन परिस्थितियों पर या किस समय तक सहमत हुए हैं । संविदा का विनिर्दिष्ट पालन को साधारणतया मंजूर कर लिया जाता है इस बात के होते हुए भी कि विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर संविदा का पालन करने में व्यतिक्रम हुआ है, यदि पक्षकारों द्वारा संपत्ति की प्रकृति और सभी परिस्थितियों का अभिव्यक्त उल्लेख किया गया है, यह अनुतोष मंजूर करने में असाम्यिक नहीं है । यदि संविदा अचल संपत्ति के विक्रय से संबंधित है तो साधारणतया यह उपधारणा की जाती है कि समय, संविदा का सार नहीं था । लिखित करार के एक खंड में मात्र शास्ति अधिरोपित करने के निगमन से ही समय को सार बनाने के लिए स्वयमेव ही साक्ष्य नहीं होता है । जमशेद कोदाराम ईरानी **बनाम** बूर्जोरजीभाई (आई. एल. आर. 40 बाम्बे

289 = ए. आई. आर. 1915 पी. सी. 83) वाले मामले में प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति ने यह मत व्यक्त किया कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 55 में अन्तर्निहित सिद्धांत उससे भिन्न नहीं हैं जो भूमि विक्रय के लिए संविदाओं के बारे में इंग्लिश विधि के अधीन उल्लिखित है । न्यायिक समिति ने यह मत व्यक्त किया कि –

> साम्या विधि के अधीन, जो अचल सम्पत्तियों के विक्रय की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के मामले में पक्षकारों के अधिकारों को शासित करती है, बाद में देखने की बात नहीं होती है अपितु, यह सुनिश्चित करने के लिए करार में सार होती है कि क्या पक्षकार इस बात के होते हुए भी कि उन्होंने एक विनिर्दिष्ट समय नामित की है जिसके भीतर संविदा का पालन हो जाना चाहिए, वस्तुतः और सारतः इसका इससे अधिक आशय नहीं होता है कि इसका युक्तियुक्त समय के भीतर पालन किया जाना चाहिए । माननीय न्यायाधीशों की यह राय थी कि यही वह सिद्धांत है जिसे भूमि विक्रय के संदर्भ में, भारतीय अधिनियम की धारा में अंगीकृत और सम्मिलित किया गया है । इसे टीले **बनाम** थामस [(1867) 3 अध्याय ए 61] वाले मामले में लार्ड केयर्न के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है –
>
> > न्यायालय में साम्या का निर्वचन है और निर्वचन किया जाना चाहिए । साम्या न्यायालय संविदा द्वारा समनुदेशित तारीखों का पालन करने में असफल रहते हुए भी विनिर्दिष्ट पालन के विरुद्ध और प्रवर्तन में अनुतोष देने का आशय रखता है, या तो संविदा समाप्ति पर या समाप्ति की ओर कदम बढ़ाने पर, यदि यह पक्षकारों के बीच न्याय कर सकता है और यदि [जैसा कि लार्ड जस्टिस टरनर ने राबर्ट **बनाम** बैरी (1853) 3 डी. जी. एम. और जी. 284] पक्षकारों के बीच संपत्ति की प्रकृति या सभी परिस्थितियों के बारे में कोई अनुध्यात अभिव्यक्ति नहीं है, जो इसके बारे में असाम्यिक निष्कर्ष निकाल सके और विधिक अधिकारों को उपांतरित कर सके ।

इसका अभिप्राय क्या है और इस सभी का अभिप्राय क्या होता है, जब यह कहा जाता है कि साम्या अवधि, संविदा का सार नहीं है । तीन आधारों में से ..... लार्ड जस्टिस टरनर द्वारा उद्धृत 'अभिव्यक्त अनुध्यात' के लिए कोई टिप्पण अपेक्षित नहीं है । संपत्ति की प्रकृति, उत्क्रमण, खानों या व्यापारों के मामलों में उद्धृत है । सभी परिस्थितियां प्रत्येक विशिष्ट मामले के तथ्यों पर निर्भर होनी चाहिए ।

माननीय न्यायाधीशों ने इन मताभिव्यक्तियों को उद्धृत करते हुए इस कथन को जोड़ा । संविदा पत्र की अवहेलना में साम्या न्यायालय की विशेष अधिकारिता यह सुनिश्चित करती है कि पक्षकारों ने क्या संविदा की है जो वस्तुतः और सारतः आशयित था जो इसके पालन के समय के बारे में स्पष्ट तौर पर अभिव्यक्त अनुबंध द्वारा वर्जित हो सकता है । किन्तु, अनुबंध की भाषा के इस प्रभाव से यह दर्शित होना चाहिए कि आशय, पक्षकारों के अधिकारों के लिए चलन में विहित परिसीमा अवधि की मताभिव्यिक्तियों पर निर्भर करता था जो भूल करने योग्य नहीं है । भाषा इस प्रभाव की होनी चाहिए कि यदि इसे इस धारणा पर स्पष्ट तौर पर अपवर्जित किया जाता है कि ये परिसीमा अवधि मात्र सौदे में द्वितीयक महत्व के हैं और यह कि उनकी अवहेलना करने से ऐसा कुछ नहीं होगा जिससे कि इसके आधार, प्रथमदृष्ट्या, साम्या ऐसे परिसीमा अवधि के महत्व के रूप में व्यवहार करती है जैसे कि यह पक्षकारों के मुख्य प्रयोजन के अधीन है, को हानि पहुंचे और यह इस बात के होते हुए भी विनिर्दिष्ट पालन किया जाएगा कि न्यायालय के दृष्टिकोण से वादी द्वारा शाब्दिक तौर पर संविदा का पालन नहीं किया गया है जहां तक कि यह विनिर्दिष्ट परिसीमा अवधि का संबंध है ।

5. विचारण न्यायालय ने अपने इस निष्कर्ष के समर्थन में कि

समय, विक्रय संविदा का सार है, इन तीन परिस्थितियों का अवलंब लिया, (1) यद्यपि, तारीख 4 अप्रैल, 1959 और 15 अप्रैल, 1959 को लेखबद्ध करारों में, मौखिक करार द्वारा कोई समय विहित नहीं था फिर भी, संविदा के पालन के लिए नियत तारीख सुनिश्चित थे, (2) द्वितीय और तृतीय करारों में अन्तर्विष्ट खंडों जो व्यतिक्रम का दोषी होने पर पक्षकारों पर शास्तियां अधिरोपित करता है, और (3) अपीलार्थी सं. 1 और 2 को धन की अत्यधिक आवश्यकता थी और वे इस आवश्यकता से इस बात के लिए बाध्य थे कि उन्होंने संपत्ति विक्रय करने की इच्छा जाहिर की । किन्तु, 4 अप्रैल और 15 अप्रैल, के करारों में इस बारे में कोई भूल नहीं हुई थी कि समय, संविदा का सार होना था और व्यतिक्रम खंड की मौजूदगी ऐसे आशय के लिए आवश्यक रूप से साक्ष्य नहीं होगी । उस अवधि का नियतन जिसके भीतर संविदा का पालन किया जाना है, वह समय, संविदा के सार के रूप में अनुध्यात नहीं करता है । यह सत्य है कि अपीलार्थी सं. 1 और 2 को अत्यधिक रूप से धन की आवश्यकता थी किन्तु उन्होंने प्रत्यर्थी से 3,006/- रुपए प्राप्त कर लिए थे जिससे उन्होंने कम से कम अस्थायी तौर पर अपनी कठिनाइयां पूरी करने की कोशिश की थी । इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं है कि जब प्रत्यर्थी ने सम्पूर्ण प्रतिफल का संदाय नहीं किया था तो उन्होंने अपनी तत्काल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अन्य निधियों की व्यवस्था सुनिश्चित की । समय को संविदा के सार के रूप में बनाने का आशय उनके अभिव्यक्त अनुबंधों द्वारा या परिस्थितियों द्वारा दर्शित होना चाहिए जो इस साधारण उपधारणा को मजबूती देने के लिए पर्याप्त होता है कि भूमि विक्रय की संविदा में समय सार के रूप में अनुध्यात नहीं है । वर्तमान मामले में, ऐसी कोई अभिव्यक्त अनुबंध और परिस्थितियां नहीं हैं जिससे कि यह उपदर्शित होता हो कि पक्षकारों का यह आशय था कि समय, संविदा का सार होने के लिए आशयित था । यह सत्य है कि यद्यपि समय मूल रूप से सार नहीं था फिर भी, अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थी पर यह नोटिस तामील की थी कि वह नियत समय के भीतर सूचना दे और यह सूचित करे कि संविदा की अपेक्षाओं का पालन नहीं करने पर उसे रद्द होने के रूप में समझा जाएगा । जैसा कि स्टीकने **बनाम** किबल (1915 ए. सी. 386) वाले मामले में, यह मत व्यक्त किया कि जहां भूमि विक्रय की संविदा में उसे पूरा करने के लिए नियत समय, संविदा का सार नहीं बनाया जाता है किन्तु, क्रेता अनावश्यक विलम्ब करने का दोषी पाया

जाता है तो विक्रेता समय सीमित करते हुए क्रेता पर एक नोटिस तामील कर सकता है जिसकी समाप्ति पर वह संविदा का अंत होना समझा जाएगा । वर्तमान मामले में, अपीलार्थी सं. 1 और 2 ने तारीख 30 जुलाई, 1959 के अपने पत्र द्वारा ऐसी कोई नोटिस तामील नहीं की है जिससे कि वे संविदा का अंत होना समझे । यदि प्रत्यर्थी विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री पाने के लिए अन्यथा अर्ह है तो उसके अधिकार को अपीलार्थी सं. 1 और 2 के पत्र द्वारा अवधारित नहीं किया जा सकता है ।"

37. तथापि, यदि इसे यह तर्क करने के लिए एक पल के लिए प्रतिकूल उपधारित किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि संविदा का नियत तारीख अर्थात् तारीख 5 अप्रैल, 2004 तक पालन नहीं किया गया, यह वादी के कारण नहीं अपितु प्रतिवादी के कारण जो इसके लिए उत्तरदायी है ।

38. इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी ने प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में उपस्थित होते हुए, अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान स्वेच्छया अपने कथन के पैरा 4 में यह कथन किया कि वादी तारीख 21 अप्रैल, 2004 को मुझसे मिला था और जब मैंने वादी को विक्रय-विलेख निष्पादित करने और उसे रजिस्ट्रीकृत करने के लिए कहा तो वादी ने मुझे यह बताया कि स्वयं उसके पास अपेक्षित अतिशेष विक्रय प्रतिफल नहीं है और उसकी व्यवस्था करने कि लिए तीसरे पक्षकार की ओर देखने लगा । इस प्रकार, यह प्रकट होता है कि स्वयं उसके बयान के अनुसार भी प्रतिवादी विक्रय-विलेख निष्पादित करने और उसे तारीख 21 अप्रैल, 2004 अर्थात् करार में नियत तारीख 5 अप्रैल, 2004 के पश्चात् भी रजिस्ट्रीकृत कराने के लिए तैयार था और वादी पर करार के अधीन तारीख 6 अप्रैल, 2004 को एक नोटिस प्रदर्श पी सी तामील की थी । इन परिस्थितियों में, उसे स्वयं यह कहने नहीं दिया जा सकता है कि समय संविदा का सार नहीं था [(कृपया देंखे – (1) पी. डिसूजा **बनाम** सोनड्रिलो नायडू, (2004) 6 एस. सी. सी. 649 हेड नोट जी. पैरा 24 और 25), (2) वीराई अम्मल **बनाम** सीनी अम्मल (2002) 1 एस. सी. सी. 134 (हेड नोट ए) तथा (3) राखा सिंह **बनाम** संतोखा और अन्य (आई. एल. आर. 1975 हिमाचल प्रदेश 820)] ।

39. तद्नुसार, विवाद्यक विनिश्चित किया जाता है ।

विवाद्यक सं. 4

40. इसके आमुख पर ही वादपत्र को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

के आदेश 6, नियम 15 के उपबंधों के अनुसरण में सत्यापित किया गया है ।

41. तद्नुसार, विवाद्यक, नकारात्मक अभिनिर्धारित किया जाता है ।

विवाद्यक सं. 5 और 9

42. विवाद्यक सं. 1 पर उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि वादी द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध फाइल वाद वैधतः प्रवर्तनीय वाद हेतुक पर आधारित है और इस प्रकार वाद में दावाकृत अनुतोष के लिए उसका हक कायम रखे जाने योग्य है ।

43. तद्नुसार, दोनों विवाद्यक विनिश्चित किए जाते हैं ।

विवाद्यक सं. 6

44. विवाद्यकों पर क्रमवार चर्चा करने से यह स्पष्ट होता है कि वादी अपने कार्य, विलेख, आचरण और मौन सहमति, जैसा कि अभिकथित है, के कारण वाद फाइल करने से विबंधित नहीं है ।

45. तद्नुसार, विवाद्यक विनिश्चित किया जाता है ।

अनुतोष

46. परिणामस्वरूप, तारीख 7 अगस्त, 2003 के करार प्रदर्श पी ए के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद खर्चों सहित वादी के पक्ष में और प्रतिवादी के विरुद्ध डिक्री किया जाता है साथ ही प्रतिवादी को यह निर्देश दिया जाता है कि वह वादी के पक्ष में वाद भूमि के संबंध में विक्रय-विलेख निष्पादित करे और आज से 60 दिन के भीतर सक्षम प्राधिकारी से उसे रजिस्ट्रीकृत कराए जिसमें असफल रहने पर प्रतिवादी के खर्चों पर इस न्यायालय के आदेशों के अधीन विक्रय-विलेख निष्पादित और रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए दायी होंगे जिसकी स्वतंत्रता वादी को आरक्षित किया जाता है ।

वाद मंजूर किया गया ।

क.

———————

ज्ञान चन्द और अन्य

बनाम

श्रीमती शिव देई और एक अन्य

तारीख 29 मार्च, 2014

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63] – द्वितीय अपील – विल के निष्पादन की घोषणा – अन्तर्निहित उत्तराधिकार – मृतक की मृत्यु के पांच माह पूर्व ही विल तैयार कर लेना – विल पर मृतक के हस्ताक्षर संदिग्ध होना – विल के अनुप्रमाणन साक्षियों की विश्वसनीयता संदेह के परे नहीं होना – वसीयतदारों का मृतक का नातेदार नहीं होना – विल रजिस्ट्रीकृत होना – यदि उपर्युक्त संदेहों का निवारण नहीं किया जाता है तो ऐसा विल संदेहों से घिरी मानी जाएगी और मात्र रजिस्ट्रीकृत होने से ही यह संदेहों के परे और विधिमान्य नहीं हो जाएगी – अतएव, ऐसा विल अकृत, शून्य और अविधिमान्य होगी तथा मृतक की सम्पत्ति अन्तर्निहित उत्तराधिकार के अधीन उसके वैध उत्तराधिकारियों में अन्तर्निहित हो जाएगी ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी-वादी ने इस घोषणा के लिए एक वाद फाइल किया है कि नारायण लाल द्वारा तारीख 1 जनवरी, 1998 को निष्पादित किए गए अभिकथित विल को अकृत और शून्य घोषित किए जाने के साथ ही वाद भूमि में हस्तक्षेप करने, अन्य-संक्रामण करने और वाद भूमि की प्रकृति में परिवर्तन करने से अपीलार्थियों-प्रतिवादियों तथा प्रोफार्मा प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए स्थायी व्यादेश का पारिणामिक अनुतोष भी मंजूर किया जाए । वादी के अनुसार, खेवट खतौनी सं. 22/23, खसरा सं. 546/361, माप 0-00-96 हेक्टेयर में समाविष्ट भूमि मृतक नारायण लाल के स्वामित्व और कब्जे में थी । ग्राम मतोखर में स्थित खेवट खतौनी सं. 34/ 35, खसरा सं. 25, 0-04-02 हेक्टेयर में समाविष्ट भूमि का 1/2 भाग मृतक नारायण लाल द्वारा और 1/2 भाग प्रोफार्मा प्रतिवादी लश्करी राम द्वारा धारित था । खेवट खतौनी सं. 68/71 से 73, कीटा 32 माप 3-35-54

हेक्टेयर में समाविष्ट भूमि का 1/2 भाग, मृतक नारायण लाल के स्वामित्व और कब्जे में था तथा खेवट खतौनी सं. 69/74 से 76, कीटा 16 माप 1-75-24 हेक्टेयर में समाविष्ट भूमि का 1/2 भाग, नारायण लाल के स्वामित्व और कब्जे में था । वादी के अनुसार, वह नारायण लाल की वैधतः विवाहित पत्नी है जो भारत स्वतंत्र क्लाथ मिल्स, दिल्ली में कार्य कर रहा था और 5,000/- रुपए प्रतिमाह वेतन पा रहा था । उसके अनुसार, नारायण लाल की मृत्यु तारीख 8 जून, 1998 को हो गई है । नारायण लाल ने तारीख 1 जून, 1998 को कभी भी कोई विल निष्पादित नहीं की है । उप-रजिस्ट्रार, बाल्डवारा ने विल रजिस्टर करने से इनकार कर दिया । उसके अनुसार, विल मिथ्या और काल्पनिक दस्तावेज हैं । प्रतिवादियों द्वारा वाद का विरोध किया गया । प्रतिवादियों ने यह स्वीकार किया है कि वादी, वैधतः नारायण लाल की विवाहित पत्नी है । उनके अनुसार, वादी ने नारायण लाल के विरुद्ध भरणपोषण के लिए एक वाद फाइल किया था । उसे वादी द्वारा मुकदमेबाजी में घसीटा गया था । उन्होंने नारायण लाल की देखभाल की थी । विल सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत है । उनके अनुसार, वादी को भी विल में हिस्सा दिया गया है । वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था । तारीख 7 सितम्बर, 1999 को उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, सरकाघाट, जिला मंडी द्वारा विवाद्यक विरचित किए गए थे । प्रतिवादियों ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (II), मंडी के समक्ष एक अपील फाइल की थी । उन्होंने उसे तारीख 31 जुलाई, 2013 को खारिज कर दिया था । अतएव, वर्तमान अपील फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विल डी. डब्ल्यू. 1/ए, तारीख 1 जनवरी, 1998 का है । नारायण लाल की मृत्यु तारीख 8 जून, 1998 को हुई थी । यह विवादित नहीं है कि वादी, वैधतः स्वर्गीय श्री नारायण लाल की विवाहित पत्नी है । वह अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित हुई । अभि. सा. 1 के अनुसार, उसका पति अपनी मृत्यु के लगभग 5-6 माह पूर्व दिल्ली से आया था । उसका पति बीमार था और व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त नहीं था । उसने प्रोफार्मा प्रतिवादी लश्करी राम को अपने पति से मिलने की इजाजत नहीं दी थी । पंकू राम ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि नारायण लाल सेवानिवृत्ति के पश्चात् उसके भाई लश्करी राम के साथ रहने लगा था । वादी अपने पति के साथ रहना चाहती थी किन्तु उसे नारायण लाल के साथ रहना मंजूर नहीं किया । नारायण लाल अपनी मृत्यु के पूर्व बीमार था ।

वह कमजोर था । वह मानसिक तौर पर स्वस्थ नहीं था । अभि. सा. 3 शिव राम के अनुसार, नारायण लाल लगभग 10 माह से बीमार था । वह व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में नहीं था । वह समुचित तौर पर बोल नहीं सकता था । उसके कथन को समझा नहीं जा सकता था । वादी द्वारा उसकी देखभाल की गई थी । अभि. सा. 4 मुंशी राम के अनुसार, वादी द्वारा पंचायत जाने के लिए उसे बुलाया गया था । पंचायत का प्रधान उसके साथ था । 10-12 व्यक्ति वहां थे । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए, तारीख 21 अक्तूबर, 1997 को निष्पादित किया गया था । नारायण लाल ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए पर अपने हस्ताक्षर किए हैं । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए, नारायण लाल और वादी के बीच हुए समझौते की प्रति है । वादी का भरण-पोषण करने के लिए नारायण लाल सहमत था । उसने यह स्वीकार किया कि वादी उसकी पत्नी है । उसने अपनी पत्नी की निष्ठा पर कभी भी संदेह नहीं किया । प्रतिवादी साक्षी 1, रमेश चन्द ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि विल को नारायण लाल द्वारा तारीख 1 जनवरी, 1998 को निष्पादित किया गया था । वह स्वस्थचित्त दशा में था । उसकी मृत्यु तारीख 8 जून, 1998 को हुई थी । वादी पृथक् रह रही थी । वे उसकी देखभाल कर रहे थे । उसने यह स्वीकार किया है कि वादी दिल्ली में नारायण लाल के साथ रह रही थी । प्रतिवादी साक्षी 2 प्रताप सिंह, तहसीलदार-सह-रजिस्ट्रार था । विल उसके द्वारा रजिस्ट्रीकृत किया गया था । विल प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए, तारीख 1 जनवरी, 1998 को प्रतिवादी साक्षी 3 हेम राज द्वारा लिखा गया था । प्रतिवादी साक्षी 4 कश्मीर सिंह और प्रतिवादी साक्षी 5 जीत राम पार्श्व साक्षी हैं । विल को मंडी में रजिस्ट्रीकृत किया गया है । प्रतिवादी साक्षी 1 रमेश चन्द के अनुसार, बाल्डवारा और वादी के मूल निवास के बीच की दूरी 3 किलोमीटर है । तरनडोल और सरकाघाट के बीच की दूरी 20 किलोमीटर है । प्रतिवादियों ने इस बात का स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि क्यों विल को या तो बाल्डवारा या सरकाघाट में रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया । अभिलेख पर यह भी नहीं आया है कि नारायण लाल स्वस्थचित्त दशा में नहीं था । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए पर नारायण लाल द्वारा हिन्दी में हस्ताक्षर किए गए हैं । तथापि, उसने विल पर अंग्रेजी में हस्ताक्षर किए हैं । नारायण की शनाख्त प्रतिवादी साक्षी 6 नेतार सिंह द्वारा किया गया था । वह इस बात का स्पष्टीकरण नहीं दे सका था कि वह कैसे नारायण लाल को जानता था । प्रतिवादी साक्षी 4 कश्मीर सिंह ने स्वीकार किया है कि वह विल के 18 से 36 के रूप में पार्श्व साक्षी है । उसके अनुसार, उसने

विल पर प्रथमतः हस्ताक्षर किए थे और उसके पश्चात्, वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । विल पर प्रथमतः वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए जाने थे और उसके पश्चात् विल पर पार्श्व साक्षी द्वारा हस्ताक्षर किए जाने थे । विल के निष्पादन के समय पर नारायण लाल की उपस्थिति संदेहपूर्ण है । प्रतिवादी साक्षी 4 कश्मीर सिंह एक स्टाक साक्षी है । अभिलेख पर यह भी आया है कि उप-रजिस्ट्रार, बाल्डवारा ने विल पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था और इन परिस्थितियों में, विल को मंडी में रजिस्ट्रीकृत कराया गया था । प्रतिवादी साक्षी 5 जीत राम ने भी यह साक्ष्य नहीं दिया है कि उसने वसीयतकर्ता नारायण लाल की उपस्थिति में विल पर अपने हस्ताक्षर किए हैं । प्रतिवादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि तारीख 1 जनवरी 1998 का विल, विधि के अनुसरण में निष्पादित किया गया था । मात्र यह कि विल रजिस्ट्रीकृत है, इसे वैध नहीं बना सकेगा । एक व्यक्ति को 70 किलोमीटर नहीं ले जाया जा सकता है जो पेचिस की बीमारी से पीड़ित हो जबकि उसे पास के सरकारी औषधालय में ले जाया जा सकता था । वादी वैधतः मृतक नारायण लाल की विवाहित पत्नी है । वह वैधतः विवाहित पत्नी होने के नाते अपने पति की सम्पत्ति उत्तराधिकार में पाने की हकदार है । नारायण लाल संतानरहित था । इस बारे में कोई सबूत नहीं है कि कभी भी प्रतिवादियों का मृतक नारायण लाल के साथ नजदीकी संबंध था । प्रतिवादी साक्षी 1 रमेश चन्द के कथन के अनुसार वादी दिल्ली में नारायण के साथ रह रही थी । दोनों विद्वान् निचले न्यायालयों ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का सही तौर पर मूल्यांकन किया है, यह निष्कर्ष निकालने में कि विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है । प्रतिवादियों द्वारा विल की संदेहास्पद परिस्थितियों का निवारण करने हेतु विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित है । (पैरा 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 5 एस. सी. सी. 274 :
एस. आर. श्रीनिवास और अन्य बनाम **एस. पद्मावथम्मा** ; 24

[2009] (2009) 1 एस. सी. सी. 354 :
के. लक्ष्मणन् बनाम **थेक्कइल पद्मिनी और अन्य** ; 21

[2009] (2009) 3 एस. सी. सी. 687 :
भरपूर सिंह और अन्य बनाम **समशेर सिंह** ; 22

[2009] (2009) 4 एस. सी. सी. 780 :
यमनाम ओनगबी तम्फा ईबेमा देवी बनाम
यमनाम यूकुमार सिंह और अन्य ; 23

[2008] (2008) 14 एस. सी. सी. 754 :
बाबू सिंह और अन्य बनाम **राम सहाय** उर्फ
राम सिंह ; 19

[2008] (2008) 15 एस. सी. सी. 365 :
ललिताबेन जयन्तीलाल पोपट बनाम **प्रागनबेन**
जमनदास कटारिया और अन्य ; 20

[2007] (2007) 7 एस. सी. सी. 225 :
अपोलीन डिसूजा बनाम **जान डिसूजा** ; 18

[2006] (2006) 13 एस. सी. सी. 433 = ए. आई.
आर. 2007 एस. सी. 614 :
निरंजन उमेश चन्द जोशी बनाम **मृदुला**
ज्योतिराव और अन्य ; 16

[2006] (2006) 13 एस. सी. सी. 449 :
बी. वेंकटामुनि बनाम **सी. जे. अयोध्या राम सिंह**
और अन्य । 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की नियमित द्वितीय अपील सं. 4350.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री ललित शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री एन. के. ठाकुर, सीनियर अधिवक्ता और नवीन पठानिया, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (II), मंडी द्वारा 2001 की सिविल अपील सं. 42 में

पारित तारीख 31 जुलाई, 2013 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निर्देशित है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील सं. 4350 को अधिनिर्णीत करने के लिए आवश्यक मूल तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी-वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "वादी" कहा गया है) ने इस घोषणा के लिए एक वाद फाइल किया है कि नारायण लाल द्वारा तारीख 1 जनवरी, 1998 को निष्पादित किए गए अभिकथित विल को अकृत और शून्य घोषित किए जाने के साथ ही वाद भूमि में हस्तक्षेप करने, अन्य-संक्रामण करने और वाद भूमि की प्रकृति में परिवर्तन करने से अपीलार्थियों-प्रतिवादियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "प्रतिवादियों" कहा गया है) तथा प्रोफार्मा प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए स्थायी व्यादेश का पारिणामिक अनुतोष भी मंजूर किया जाए । वादी के अनुसार, खेवट खतौनी सं. 22/23, खसरा सं. 546/361, माप 0-00-96 हेक्टेयर में समाविष्ट भूमि मृतक नारायण लाल के स्वामित्व और कब्जे में थी । ग्राम मतोखर में स्थित खेवट खतौनी सं. 34/35, खसरा सं. 25, 0-04-02 हेक्टेयर में समाविष्ट भूमि का 1/2 भाग मृतक नारायण लाल द्वारा और 1/2 भाग प्रोफार्मा प्रतिवादी लश्करी राम द्वारा धारित था । खेवट खतौनी सं. 68/71 से 73, कीटा 32 माप 3-35-54 हेक्टेयर में समाविष्ट भूमि का 1/2 भाग, मृतक नारायण लाल के स्वामित्व और कब्जे में था तथा खेवट खतौनी सं. 69/74 से 76, कीटा 16 माप 1-75-24 हेक्टेयर में समाविष्ट भूमि का 1/2 भाग, नारायण लाल के स्वामित्व और कब्जे में था । वादी के अनुसार, वह नारायण लाल की वैधतः विवाहित पत्नी है जो भारत स्वतंत्र क्लाथ मिल्स, दिल्ली में कार्य कर रहा था और 5,000/- रुपए प्रतिमाह वेतन पा रहा था । उसके अनुसार, नारायण लाल की मृत्यु तारीख 8 जून, 1998 को हो गई है । नारायण लाल ने तारीख 1 जून, 1998 को कभी भी कोई विल निष्पादित नहीं की है । उप-रजिस्ट्रार, बाल्डवारा ने विल रजिस्टर करने से इनकार कर दिया । उसके अनुसार, विल मिथ्या और काल्पनिक दस्तावेज हैं ।

3. प्रतिवादियों द्वारा वाद का विरोध किया गया । प्रतिवादियों ने यह स्वीकार किया है कि वादी, वैधतः नारायण लाल की विवाहित पत्नी है । उनके अनुसार, वादी ने नारायण लाल के विरुद्ध भरणपोषण के लिए एक वाद फाइल किया था । उसे वादी द्वारा मुकदमेबाजी में घसीटा गया था । उन्होंने नारायण लाल की देखभाल की थी । विल सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत है । उनके अनुसार, वादी को भी विल में हिस्सा दिया गया है ।

4. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था । तारीख 7 सितम्बर, 1999 को उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, सरकाघाट, जिला मंडी द्वारा विवाद्यक विरचित किए गए थे । प्रतिवादियों ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (II), मंडी के समक्ष एक अपील फाइल की थी । उन्होंने उसे तारीख 31 जुलाई, 2013 को खारिज कर दिया था । अतएव, वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

5 अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री ललित शर्मा ने विरचित सारवान् विधि के प्रश्नों के आधार पर यह जोरदार तर्क दिया कि विल प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए किसी भी प्रकार से संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई नहीं है । उनके अनुसार, विल को स्वर्गीय श्री नारायण लाल द्वारा सम्यक् रूप से निष्पादित किया गया है । यह सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत है । उन्होंने अंततः यह दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालयों ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का मूल्यांकन नहीं किया है ।

6. प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एन. के. ठाकुर ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और डिक्रियों का समर्थन किया है ।

7. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिवचनों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया ।

8. विल डी. डब्ल्यू. 1/ए, तारीख 1 जनवरी, 1998 का है । नारायण लाल की मृत्यु तारीख 8 जून, 1998 को हुई थी । यह विवादित नहीं है कि वादी, वैधतः स्वर्गीय श्री नारायण लाल की विवाहित पत्नी है । वह अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित हुई । अभि. सा. 1 के अनुसार, उसका पति अपनी मृत्यु के लगभग 5-6 माह पूर्व दिल्ली से आया था । उसका पति बीमार था और व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त नहीं था । उसने प्रोफार्मा प्रतिवादी लश्करी राम को अपने पति से मिलने की इजाजत नहीं दी थी ।

9. पंकू राम ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि नारायण लाल सेवानिवृत्ति के पश्चात् उसके भाई लश्करी राम के साथ रहने लगा था । वादी अपने पति के साथ रहना चाहती थी किन्तु उसे नारायण लाल के साथ रहना मंजूर नहीं किया । नारायण लाल अपनी मृत्यु के पूर्व बीमार था । वह कमजोर था । वह मानसिक तौर पर स्वस्थ नहीं था ।

10. अभि. सा. 3 शिव राम के अनुसार, नारायण लाल लगभग 10

माह से बीमार था । वह व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में नहीं था । वह समुचित तौर पर बोल नहीं सकता था । उसके कथन को समझा नहीं जा सकता था । वादी द्वारा उसकी देखभाल की गई थी ।

11. अभि. सा. 4 मुंशी राम के अनुसार, वादी द्वारा पंचायत जाने के लिए उसे बुलाया गया था । पंचायत का प्रधान उसके साथ था । 10-12 व्यक्ति वहां थे । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए, तारीख 21 अक्तूबर, 1997 को निष्पादित किया गया था । नारायण लाल ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए पर अपने हस्ताक्षर किए हैं । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए, नारायण लाल और वादी के बीच हुए समझौते की प्रति है । वादी का भरणपोषण करने के लिए नारायण लाल सहमत था । उसने यह स्वीकार किया कि वादी उसकी पत्नी है । उसने अपनी पत्नी की निष्ठा पर कभी भी संदेह नहीं किया ।

12. प्रतिवादी साक्षी 1, रमेश चन्द ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि विल को नारायण लाल द्वारा तारीख 1 जनवरी, 1998 को निष्पादित किया गया था । वह स्वस्थचित्त दशा में था । उसकी मृत्यु तारीख 8 जून, 1998 को हुई थी । वादी पृथक् रह रही थी । वे उसकी देखभाल कर रहे थे । उसने यह स्वीकार किया है कि वादी दिल्ली में नारायण लाल के साथ रह रही थी ।

13. प्रतिवादी साक्षी 2 प्रताप सिंह, तहसीलदार-सह-रजिस्ट्रार था । विल उसके द्वारा रजिस्ट्रीकृत किया गया था । विल प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए, तारीख 1 जनवरी, 1998 को प्रतिवादी साक्षी 3 हेम राज द्वारा लिखा गया था । प्रतिवादी साक्षी 4 कश्मीर सिंह और प्रतिवादी साक्षी 5 जीत राम पार्श्व साक्षी हैं ।

14. विल को मंडी में रजिस्ट्रीकृत किया गया है । प्रतिवादी साक्षी 1 रमेश चन्द के अनुसार, बाल्डवारा और वादी के मूल निवास के बीच की दूरी 3 किलोमीटर है । तरनडोल और सरकाघाट के बीच की दूरी 20 किलोमीटर है । प्रतिवादियों ने इस बात का स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि क्यों विल को या तो बाल्डवारा या सरकाघाट में रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया । अभिलेख पर यह भी नहीं आया है कि नारायण लाल स्वस्थचित्त दशा में नहीं था । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए पर नारायण लाल द्वारा हिन्दी में हस्ताक्षर किए गए हैं । तथापि, उसने विल पर अंग्रेजी में हस्ताक्षर किए हैं । नारायण की शनाख्त प्रतिवादी साक्षी 6 नेतार सिंह द्वारा किया गया था । वह इस बात का स्पष्टीकरण नहीं दे सका था कि वह कैसे नारायण लाल

को जानता था । प्रतिवादी साक्षी 4 कश्मीर सिंह ने स्वीकार किया है कि वह विल के 18 से 36 के रूप में पार्श्व साक्षी है । उसके अनुसार, उसने विल पर प्रथमतः हस्ताक्षर किए थे और उसके पश्चात्, वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । विल पर प्रथमतः वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए जाने थे और उसके पश्चात् विल पर पार्श्व साक्षी द्वारा हस्ताक्षर किए जाने थे । विल के निष्पादन के समय पर नारायण लाल की उपस्थिति संदेहपूर्ण है । प्रतिवादी साक्षी 4 कश्मीर सिंह एक स्टाक साक्षी है । अभिलेख पर यह भी आया है कि उप-रजिस्ट्रार, बाल्डवारा ने विल पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था और इन परिस्थितियों में, विल को मंडी में रजिस्ट्रीकृत कराया गया था । प्रतिवादी साक्षी 5 जीत राम ने भी यह साक्ष्य नहीं दिया है कि उसने वसीयतकर्ता नारायण लाल की उपस्थिति में विल पर अपने हस्ताक्षर किए हैं । प्रतिवादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि तारीख 1 जनवरी 1998 का विल, विधि के अनुसरण में निष्पादित किया गया था । मात्र यह कि विल रजिस्ट्रीकृत है, इसे वैध नहीं बना सकेगा । एक व्यक्ति को 70 किलोमीटर नहीं ले जाया जा सकता है जो पेचिस की बीमारी से पीड़ित हो जबकि उसे पास के सरकारी औषधालय में ले जाया जा सकता था ।

15. वादी वैधतः मृतक नारायण लाल की विवाहित पत्नी है । वह वैधतः विवाहित पत्नी होने के नाते अपने पति की सम्पत्ति उत्तराधिकार में पाने की हकदार है । नारायण लाल संतानरहित था । इस बारे में कोई सबूत नहीं है कि कभी भी प्रतिवादियों का मृतक नारायण लाल के साथ नजदीकी संबंध था । प्रतिवादी साक्षी 1 रमेश चन्द के कथन के अनुसार वादी दिल्ली में नारायण के साथ रह रही थी । दोनों विद्वान् निचले न्यायालयों ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का सही तौर पर मूल्यांकन किया है, यह निष्कर्ष निकालने में कि विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है । प्रतिवादियों द्वारा विल की संदेहास्पद परिस्थितियों का निवारण करने हेतु विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित है ।

16. उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने **निरंजन उमेश चन्द जोशी** बनाम **मृदुला ज्योतिराव और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिपादक को ही तर्कपूर्ण साक्ष्यों द्वारा संदेहास्पद

[1] (2006) 13 एस. सी. सी. 433 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 614.

परिस्थितियों का निवारण करना होता है । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह भी साबित किया जाना चाहिए कि वसीयतकर्ता ने स्वस्थचित्त मानसिक दशा में अपनी स्वतंत्र इच्छा से हस्ताक्षर किए हैं और असक्त तथा दुर्बल नहीं है और उसकी प्रकृति और प्रभाव को अच्छी तरह समझता है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "32. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 63 में वे तरीके अधिकथित हैं जिनमें अविशेषाधिकारकृत विल के निष्पादन को साबित किया जाता है । धारा 68 वह तरीका अनुध्यात करती है जिसमें दस्तावेज के निष्पादन का सबूत विधि के अधीन अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित है । यह सुस्पष्ट शब्दों में कथित है कि विल का निष्पादन कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी द्वारा साबित किया जाना चाहिए, यदि न्यायालय की प्रक्रिया के अध्यधीन और साक्ष्य देने के लिए सक्षम अनुप्रमाणक साक्षी जीवित है । विल को साबित करने के लिए प्राथमिक साक्ष्य दिया जाना अपेक्षित है सिवाय वहां जहां सबूत के लिए द्वितीयतः साक्ष्य दिया जाना अनुज्ञात है । अन्य दस्तावेजों की तरह, अधिनियम के अधीन किसी अन्य दस्तावेज के निष्पादन का सबूत पर्याप्त नहीं होता है क्योंकि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 के निबंधनों में निष्पादन को अनुप्रमाणित करने वाले साक्षियों में से कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी द्वारा साबित किया जाना चाहिए । अनुप्रमाणित करते समय अनुप्रमाणक साक्षी की ओर से सआशय प्रमाणित होना चाहिए, इसका अभिप्राय यह है कि उसका आशय प्रमाणित करने का होना चाहिए और इस मुद्दे पर गौड़ साक्ष्य स्वीकार किए जाने योग्य होते हैं ।
>
> 33. यह सबूत का भार कि विल वैधतः निष्पादित किया गया है और यह एक असली दस्तावेज है, प्रतिपादक पर होता है । प्रतिपादक के लिए यह भी साबित करना अपेक्षित है कि वसीयतकर्ता ने विल पर हस्ताक्षर किया है और यह कि विल पर उसने अपने हस्ताक्षर, व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त रहते हुए तथा विल की प्रकृति और उसके प्रभाव को समझते हुए अपनी स्वतंत्र इच्छा से किए हैं । यदि इस बारे में पर्याप्त साक्ष्य है तो अभिलेख पर लाया जाना चाहिए, तभी प्रतिपादक का भार उन्मोचित होना अभिनिर्धारित किया जा सकता है । किन्तु, यह आवेदक पर भार होता है कि वह पर्याप्त और तर्कपूर्ण

साक्ष्यों द्वारा संदेहों का निवारण करें, यदि कोई मौजूद हो । विल साबित करने के मामले में, मात्र वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर से ही उसका निष्पादन साबित नहीं होता है यदि उसका विवेक अत्यधिक असक्त और दुर्बल प्रतीत होता है । तथापि, यदि कपट, प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव की प्रतिरक्षा उद्भूत की जाती है तो सबूत का भार केवियटकर्ता पर हो जाता है । [देखें – मधुकर डी. शेदे **बनाम** ताराबाई शेडेज (2002) 2 एस. सी. सी. 85 तथा श्रीदेवी और अन्य **बनाम** जयराजा शेट्टी और अन्य (2005) 5 एस. सी. सी. 784] उपर्युक्त के अध्यधीन विल को साबित करना, साधारणतया किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से भिन्न नहीं होता है ।"

17. **बी. वेंकटामुनि** बनाम **सी. जे. अयोध्या राम सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या विल सम्यक् रूप से निष्पादित है, न्यायालय का विशिष्ट मामले के सम्पूर्ण परिस्थितियों के बारे में सचेतन समाधान होना चाहिए । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"9. अक्कयम्मा उच्चतर शिक्षित महिला नहीं थी । उसने मात्र प्राथमिक शिक्षा ग्रहण की थी । वह मात्र अपने हस्ताक्षर कर सकती थी । वह अन्यथा सांसारिक महिला थी । वह कंजूस प्रकृति की थी । वह मूलतः अरकोनाम की रहने वाली थी । वह दस्तावेज की रजिस्ट्रीकरण के महत्व को समझती थी क्योंकि अपनी मृत्यु के दो दिन पूर्व अर्थात् 29 सितम्बर, 1968 को उसने प्रत्यर्थियों के पक्ष में दो बंदोवस्त विलेखों का निष्पादन किया था । हमें, इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या वादियों-प्रत्यर्थियों ने अपने लिए अक्कयम्मा के प्रेम और स्नेह को पर्याप्त रूप से साबित कर दिया है अपितु जब इससे संबद्ध विल की प्रति के साथ प्रशासन के प्रोवेट या पत्र मंजूर करने के बारे में न्यायालय के समक्ष विचार के लिए प्रश्न आता है तो यह कहा जा सकता है कि सभी परिस्थितियों को विचार में लेना चाहिए । यह सत्य हो सकता है कि उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा व्यक्त की गई यह राय कि विल के निष्पादन का सबूत, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा

[1] (2006) 13 एस. सी. सी. 449.

63 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 67 और 68 के निबंधनाधीन पूर्व-अपेक्षित होते हैं, अपितु, इन्हें साक्ष्य में लेते हुए यह भी कहा जा सकता है कि यह निष्कर्ष निकालते समय कि क्या विल सम्यक् रूप से निष्पादित है या नहीं, न्यायालय का सम्पूर्ण परिस्थितियों के बारे में सचेतन समाधान होना चाहिए । प्रश्नगत विल तारीख 23 मार्च, 1968 को निष्पादित हुआ था । यह अरजिस्ट्रीकृत भी था । साधारणतया वह चित्तूर जिले की रहने वाली नहीं थी । प्रायः वह उक्त स्थान को जाती रहती थी । वह विल के लेखक अर्थात् अभि. सा. 1 श्री वी. थयागराजन् को घनिष्ठता से नहीं जानती थी । वह एक अध्यापक था । अक्कयम्मा के लिए उसके निवास-स्थान पर जाने और उससे विल लिखने के लिए कहने का कोई कारण नहीं था । यदि अभि. सा. 1 वृत्तिक लेखक नहीं था तो ऐसा कोई विशिष्ट कारण नहीं हो सकता है कि जिससे अक्कयम्मा उक्त विल लिखने के लिए उसका चुनाव कर सकती थी । विल की असलियत या अन्यथा के बारे में संदेह होने की दशा में विल को विधि के अनुसरण में निष्पादित होना साबित किया जाना चाहिए, यह सिद्ध करने के लिए कि उसे कम से कम दो साक्षियों की उपस्थिति में किया गया है । यद्यपि, न्यायालय को इस संदेह के बारे में प्रश्न नहीं करना चाहिए कि क्या विल असली नहीं है, इस बारे में इस न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित साधारण मार्गदर्शकों का अनुपालन करना चाहिए । विवाद्यक, आवश्यक रूप से साक्ष्य के सम्यक् मूल्यांकन में अन्तर्वलित है । हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि विल में अक्कयम्मा ने स्वयं को श्री सी. डी. जय सिंह के पिता की पत्नी के रूप में वर्णित किया है । इसका क्या अभिप्राय है, ज्ञात नहीं है । स्वयं को सी. डी. जय सिंह के पिता की पत्नी के रूप में वर्णित करते हुए, यह अनुध्यात किया गया है कि वह उस हैसियत में पिछले 40 वर्षों से रह रही थी । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश के इन निष्कर्षों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है कि अक्कयम्मा का न केवल जय सिंह के प्रति प्रेम और स्नेह हुआ था अपितु उसकी पत्नी के माध्यम से उसके बच्चों के प्रति भी प्रेम और स्नेह हुआ था और विशिष्टतया तृतीय वादी के प्रति जो उसकी पुत्री थी । यदि ऐसी स्थिति थी तो उसने उसके पक्ष में कोई संपत्ति, वसीयत क्यों नहीं की, यह समझना कठिन है । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने उन 9 परिस्थितियों को वर्णित किया है जो उनके

अनुसार, प्रश्नगत विल के सम्यक् निष्पादन और अनुप्रमाणन के सबूत पर विचार करने के लिए सुसंगत हैं जो इस प्रकार हैं –

(1) अक्कयम्मा, वादी सं. 1 से 3 के पिता और वादी सं. 4 के पति जय सिंह के साथ अरकोनम, तमिलनाडु में रहती थी जबकि जय सिंह और उसकी मृत्यु होने तक वादी चित्तूर, आंध्र प्रदेश में रहते थे ।

(2) यह दर्शित करने के लिए संकेत हैं कि वादी कुछ सीमा तक अक्कयम्मा के विरुद्ध थे जबकि द्वितीय वादी ने विभाजन के लिए वाद फाइल किया था, इस आधार पर कि जय सिंह ने अक्कयम्मा के साथ संबंध होने के पश्चात् संपत्ति का अपव्यय कर रहा है ।

(3) उनके बीच प्रेम और स्नेह होने का कोई विशेष कारण नहीं था सिवाय कि अक्कयम्मा की कोई संतान नहीं थी । अक्कयम्मा के पास ऐसा कोई कारण नहीं था जिससे कि वह अन्य सभी जो उसी हैसियत में थे, जैसे वादी सं. 2 और 3 की अवहेलना करते हुए, अनुसूचित संपत्तियों का वसीयत करने के लिए विशिष्टतया प्रथम वादी का चुनाव करती ।

(4) विभिन्न प्रक्रमों पर उसकी संपत्तियों का थोड़ा-थोड़ा करके व्ययन और दस्तावेजों प्रदर्श ए-1, बी-24 और बी-25 के विभिन्न प्रकार से बंदोवस्त विलेख अप्राकृतिक प्रतीत होता है ।

(5) अक्कयम्मा ने अपनी मृत्यु के ठीक तीन दिन पूर्व रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज प्रदर्श बी-24 और बी-25 को छोड़कर गई थी जिसके विरुद्ध उसकी मृत्यु के 6 माह पूर्व की अरजिस्ट्रीकृत विल संदेहास्पद प्रतीत होती है ।

(6) विल और बंदोवस्त विलेखों को प्रायः एक ही आशय से परिशीलन किए गए जिसके परिणामस्वरूप गंभीर संदेह उद्भूत होते हैं ।

(7) अधिकतर दस्तावेजों जिसमें बंदोवस्त विलेख प्रदर्श बी-24 और बी-25 सम्मिलित हैं, पर उसके प्रायिक हस्ताक्षर के विरुद्ध प्रथम बार के लिए अक्कयम्मा चेवरालू के रूप में प्रदर्श ए-1 पर अक्कयम्मा के हस्ताक्षर, उसकी मृत्यु के ठीक तीन दिन पूर्व

सामने आने से उसके आचरण के बारे में कुछ अप्राकृतिक बातें प्रतीत होती हैं ।

(8) ए-1 विल के निष्पादन का उल्लेख करने या प्रदर्श बी-24 और बी-25 में ऐसी संपत्ति का निष्पादन करने में लोप होने से अक्कयम्मा के आचरण के बारे में गंभीर संदेह उत्पन्न करने के लिए मजबूत परिस्थिति छोड़ती है ।

(9) प्रदर्श ए-1 की अन्तर्वस्तुएं जो सशर्त और आकस्मिक हैं, अप्राकृतिक प्रतीत होती हैं ।

14. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 निम्नलिखित उपबंध करती हैं –

"63. विशेषाधिकार रहित विलों का निष्पादन –

* * * * * *

(क) वसीयतकर्ता विल पर अपने हस्ताक्षर करेगा या अपनी चिह्न लगाएगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार हस्ताक्षर किया जाएगा ;

(ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या चिह्न या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर ऐसे किए जाएंगे या लगाए जाएंगे कि उससे यह प्रकट हो कि उसके द्वारा लेख को विल के रूप में प्रभावी करने का आशय था ;

(ग) विल को ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाएगा, जिसमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को विल पर हस्ताक्षर करते हुए या चिह्न लगाते हुए देखा है या वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को विल पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या चिह्न की या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति प्राप्त की है और प्रत्येक साक्षी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर करेगा किन्तु यह आवश्यक नहीं होगा कि एक से अधिक साक्षी एक ही समय पर उपस्थित हों और अनुप्रमाणन का कोई विशेष प्ररूप आवश्यक नहीं होगा ।

विल का सबूत कठोरतः उपर्युक्त उल्लिखित उपबंधों के

निबंधनों में होना चाहिए ।

15. तथापि, यह सुस्थिर है कि कानूनी आवश्यकताओं का अनुपालन स्वयं ही पर्याप्त नहीं होता है जैसा कि इसमें इसके पश्चात् की गई चर्चाओं से प्रतीत होता है ।

23. तथापि, प्रत्येक मामले का अवधारण उसकी तथ्यात्मक स्थिति से किया जाना चाहिए ।"

18. **अपोलीन डिसूजा** बनाम **जान डिसूजा**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 में वह तरीका उपबंधित किया गया है जिसमें विल के निष्पादन को साबित किया जाता है । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि विल के अनुप्रमाणन का सबूत एक आज्ञापक आवश्यकता है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"13. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 वह तरीका उपबंध करती है जिसमें विल का निष्पादन साबित किया जाता है । विल के अनुप्रमाणन का सबूत एक आज्ञापक आवश्यकता है । अनुप्रमाणन मात्र दो अभियोजन साक्षियों द्वारा साबित किया जाना अपेक्षित होता है । वसीयतकत्री की दोनों पुत्रियां मठवासिनी (नन्स) थीं इसलिए उनके पक्ष में वसीयत नहीं की जा सकती थी । वस्तुतः, उनमें से एक की काफी समय पूर्व मृत्यु हो गई थी । प्रत्यर्थी के साथ वसीयतकत्री का संबंध अत्यधिक सौहार्दपूर्ण था । हमारे समक्ष अपीलार्थी यह साबित करने समर्थ नहीं रही है कि वर्ष 1986 तक वसीयतकत्री उसके साथ रह रही थी और इस कारण से ही उसने उसे फायदा पहुंचाया था । विल संदेहास्पद परिस्थितियों से पूर्ण थी । अभि. सा. 2 ने सुस्पष्टतः यह कथन किया है कि विल को वसीयतकत्री का उसके निवास-स्थान में आने के पूर्व बनाया गया था और उसने विल निष्पादन के साक्षी के रूप में मात्र उसके हस्ताक्षर को साबित की थी किन्तु दस्तावेज हस्तलिखित था । मूल दस्तावेज कन्नड़ भाषा में टंकित है, यद्यपि, खाली स्थान अंग्रेजी भाषा में भरे गए थे । यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य नहीं है कि विल की अन्तर्वस्तुएं वसीयतकत्री को पढ़कर सुनाई गई थी और स्पष्टीकृत की

[1] (2007) 7 एस. सी. सी. 225.

गई थी । अभि. सा. 2 उसे नहीं जानती थी । विल का अनुप्रमाणन करने के लिए उसे क्यों बुलाया गया था और किसने बुलाया था यह रहस्यों से घिरा हुआ है । उसका साक्ष्य वसीयतकत्री के समुचित विवेक के बारे में किसी भी प्रकार से समाधानप्रद नहीं है । विल में भी कई कटिंग और ओवरराइटिंग हैं ।

20. उक्त विनिश्चय का विनिश्चयाधार अपीलार्थी की कोई सहायता नहीं करता है क्योंकि अविवादित तौर पर विल के सम्यक् निष्पादन के सबूत का तरीका प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है । विल के प्रतिपादक को ही संदेहास्पद परिस्थितियों का निवारण करना होता है जो इस मामले में नहीं किया गया है ।"

19. **बाबू सिंह और अन्य** बनाम **राम सहाय** उर्फ **राम सिंह**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब विल के निष्पादन और अनुप्रमाणन के अलावा विल की असलियत प्रश्न होती है तो विल की वैधता के बारे में घोषणा करने की ईप्सा रखने वाले व्यक्ति का यह भी कर्तव्य होता है कि वह मौजूद सभी संदेहास्पद परिस्थितियों, यदि कोई हों, का निवारण करे । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 के निबंधनों में, यद्यपि, विल के सम्यक् निष्पादन को साबित करने के लिए एक से अधिक अनुप्रमाणक साक्षी को बुलाना आवश्यक होता है किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं होता है कि एक प्रमाणित दस्तावेज को मात्र एक अनुप्रमाणक साक्षी के साक्ष्य द्वारा ही साबित किया जाएगा और दो या अधिक अनुप्रमाणक साक्षियों की किसी भी प्रकार की परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती है । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि धारा 68 में समाविष्ट अधिक साक्ष्य की आवश्यकता मात्र अनुप्रमाणन के लिए है क्योंकि इसमें शब्द कम से कम प्रयुक्त किया गया है । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि विल को, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63(1)(ग) के निबंधनों में दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित करना होता है । माननीय न्यायाशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि न केवल विल के निष्पादन को साबित किया जाना होता है अपितु वास्तविक निष्पादन को भी

[1] (2008) 14 एस. सी. सी. 754.

कम से कम दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना चाहिए और प्रश्नगत विल का अनुप्रमाणन, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 3 के उपबंधों की पुष्टि में होना चाहिए । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अनुप्रमाणन और निष्पादन दो भिन्न अभिप्राय की ओर संकेत करते हैं । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "12. निर्विवादित तौर पर एक विल को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 68 के निबंधनों में दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना होता है । निर्विवाद तौर पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63(1)(ग) की आवश्यकता का रिट साबित करने के लिए अनुपालन किया जाना अपेक्षित है । अधिनियम, 1872 की धारा 68 का समादेश अनुप्रमाणन साक्षियों द्वारा सबूत न केवल निष्पादन के लिए है अपितु दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणन के लिए भी है । यह कहा जा सकता है कि न केवल विल का निष्पादन साबित किया जाना चाहिए अपितु वास्तविक निष्पादन कम से कम दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित होना चाहिए । विल के निष्पादन का अनुप्रमाणन संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 3 के उपबंधों की पुष्टि में होना चाहिए ।
>
> 13. अनुप्रमाणन और निष्पादन दो भिन्न अभिप्राय की ओर संकेत करते हैं । कुछ दस्तावेज अनुप्रमाणित होने अपेक्षित नहीं हैं । कुछ दस्तावेज विधि द्वारा अनुप्रमाणित होने अपेक्षित हैं ।
>
> 14. अधिनियम, 1872 की धारा 68 के निबंधनों में यद्यपि विल के सम्यक् निष्पादन को साबित करने के लिए एक से अधिक अनुप्रमाणक साक्षी को बुलाना आवश्यक नहीं होता है किन्तु, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि एक अनुप्रमाणित दस्तावेज को मात्र एक अनुप्रमाणक साक्षी के साक्ष्य द्वारा साबित किया जाएगा और दो या दो से अधिक अनुप्रमाणक साक्षियों की किसी भी प्रकार की परीक्षा करना आवश्यक नहीं होगा । अधिनियम, 1872 की धारा 68 सबूत के तरीके को अधिकथित करती है यह मात्र अनुप्रमाणन के अलावा अधिक साक्ष्य की आवश्यकता परिकल्पित करती है क्योंकि इसमें सब कम से कम प्रयुक्त किया गया है । जब एक विल की असलियत प्रश्नगत होती है तो विल की वैधता के बारे में घोषणा करने की ईप्सा

रखने वाले व्यक्ति का यह भी कर्तव्य होता है कि वह सभी मौजूद संदेहास्पद परिस्थितियां, यदि कोई हो, का निवारण करे । इस प्रकार, अनुप्रमाणक साक्षियों की परीक्षा द्वारा विल के निष्पादन को साबित करने के अतिरिक्त, प्रतिपादक के लिए यह भी अपेक्षित होता है कि वह सभी संदेहास्पद परिस्थितियों, यदि कोई हो, का स्पष्टीकरण करने के लिए साक्ष्य दे । अन्य बातों के साथ, विल के निष्पादन का सबूत प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है ।

15. न्यायालय को विल का प्रोबेट मंजूर करते समय सभी सुसंगत कारकों पर विचार करना चाहिए । यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि विल स्वतंत्र इच्छा की उपज है । वसीयतकर्ता को वसीयत की अन्तर्वस्तुओं के बारे में पूर्ण जानकारी और समझ होनी चाहिए । उक्त प्रयोजन के लिए पिछले तथ्यों को भी विचार में लेना चाहिए । तथापि, जहां असम्यक् प्रभाव का अभिवाक् लिया जाता है वहां उसके सबूत का भार आक्षेप करने वाले पर होता है न कि अपराधी पर होता है [देखें - सावित्री और अन्य **बनाम** कार्तीयानी अम्मा और अन्य जे. टी. (2007) 12 एस. सी. 248] ।"

20. **ललिताबेन जयन्तीलाल पोपट** बनाम **प्रागनबेन जमनदास कटारिया और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भारतीय उत्तराधिकारी अधिनियम, 1925 की धारा 63(ग) यह उपबंध करती है कि दो या दो से अधिक साक्षियों द्वारा विल का अनुप्रमाणन आज्ञापक है । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि विल को न केवल वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर के सबूत द्वारा साबित करना होता है अपितु इसे सभी संदेहास्पद परिस्थितियों से स्वतंत्र होना चाहिए । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"11. वैध विल के सबूत के बारे में अब विधि सुस्थिर है । न केवल वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर को साबित किया जाना होता है अपितु इसे सभी संदेहास्पद परिस्थितियों से स्वतंत्र भी पाया जाना चाहिए । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63(ग) इस प्रकार है –

'धारा 63 – **विशेषाधिकार रहित विलों का निष्पादन** –

[1] (2008) 15 एस. सी. सी. 365.

प्रत्येक वसीयतकर्ता, जो किसी अभियान में नियोजित या वास्तविक लड़ाई में लगा हुआ सैनिक या इस प्रकार नियोजित या लगा हुआ वायु सैनिक या समुद्र पर कोई जहाजी नहीं है अपने विल निम्नलिखित नियमों के अनुसार निष्पादित करेगा –

(क) और (ख) .....

(ग) विल को ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाएगा, जिसमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को विल पर हस्ताक्षर करते हुए या चिह्न लगाते हुए देखा है या वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को विल पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या चिह्न की या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति प्राप्त की है और प्रत्येक साक्षी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर करेगा किन्तु यह आवश्यक नहीं होगा कि एक से अधिक साक्षी एक ही समय पर उपस्थित हों और अनुप्रमाणन का कोई विशेष प्ररूप आवश्यक नहीं होगा ।'

12. निर्विवाद तौर पर उक्त उपबंध आज्ञापक प्रकृति का है । विल को दो या दो से अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित है ।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 में यह उपबंध है कि प्रतिपादक द्वारा विल के निष्पादन और अनुप्रमाणन को अनुप्रमाणक साक्षियों में से कम से कम एक परीक्षा द्वारा साबित किया जाना चाहिए । शब्द अनुप्रमाणन का अभिप्रायः क्या है इसे संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 3 में परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है –

धारा 3 – निर्वचन खंड – इस अधिनियम में जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई बात विरुद्ध न हो –

* * * * * *

किसी लिखत के सम्बद्ध में अनुप्रमाणित से ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित अभिप्रेत है और सर्वदा अभिप्रेत रहा होना समझा जाएगा जिनमें से हर एक ने वसीयतकर्ता को

लिखत पर हस्ताक्षर करते या अपना चिह्न लगाते देखा है या निष्पादक की उपस्थिति में और उसके निदेश द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को लिखत पर हस्ताक्षर करते देखा है, या निष्पादक से उसके अपने हस्ताक्षर या चिह्न की या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति पाई है और जिनमें से हर एक ने निष्पादक की उपस्थिति में लिखत पर हस्ताक्षर किए हैं, किन्तु यह आवश्यक न होगा कि ऐसे साक्षियों में से एक से अधिक एक ही समय उपस्थित रहे हों और अनुप्रमाणन का कोई विशिष्ट प्ररूप आवश्यक न होगा ।

20. क्या विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुए है या नहीं । यह आवश्यक रूप से तथ्य का प्रश्न है । हमने, इसमें पूर्व में यह उल्लेख किया है कि वर्तमान मामले में बड़े पैमाने पर संदेहास्पद परिस्थितियां हैं । हमने यह भी इंगित किया है कि संदेहास्पद परिस्थितियां विल के आमुख पर ही प्रतीत हो रही हैं । संदेहास्पद परिस्थितियों का निष्कर्ष रणजीत सिंह के साक्ष्य के बारे में निकलता है । यहां तक कि विल के सबूत के लिए कानूनी अपेक्षाओं का भी अनुपालन नहीं किया गया है । यह मान्य नियम है कि न केवल विल के निष्पादन को साबित होना अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए जब विल साबित करने के लिए कानूनी अपेक्षाओं का समाधान हो जाता है अपितु, विल को सभी संदेहास्पद परिस्थितियों से साधारणतया स्वतंत्र भी पाया जाना चाहिए । जब इस प्रकार के साक्ष्य अभिलेख पर लाए जाते हैं तो न्यायालय संभावित साक्ष्यों की भी सहायता ले सकता है ।"

21. **के. लक्ष्मणन्** बनाम **थेक्कइल पद्मिनी और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने पुनः यह दोहराया है कि विल को साबित करने का भार प्रतिपादक पर होता है । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि जहां संदेहास्पद परिस्थितियों का अभिवाक् उद्भूत नहीं किया जाता है अपितु दी गई परिस्थितियों से संदेह उद्भूत होता है तो वहां प्रतिपादक को ऐसे संदेहों का निवारण करते हुए न्यायालय का समाधान करना चाहिए । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

---

[1] (2009) 1 एस. सी. सी. 354.

"18. यह न केवल इस निर्णय और निष्कर्षों के विरुद्ध है कि प्रदर्श बी-2 और बी-3 द्वारा आच्छादित संपत्ति की मदें विभाजन के लिए उपलब्ध थीं फिर भी पंचम प्रतिवादी द्वारा केरल उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील प्रस्तुत कर दी गई थी । इसलिए, प्रदर्श बी-1 और बी-4 द्वारा आच्छादित संपत्तियां अर्थात् मद सं. 1 से 3, 13 और 14 विवादित नहीं हैं और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि उक्त मदें विभाजन के लिए उपलब्ध नहीं हैं, पक्षकारों पर अंतिम और आबद्धकारी हैं ।

19. मात्र प्रदर्श बी-2 और बी-3 द्वारा आच्छादित संपत्तियां ही विवादित और आगे मुकदमेबाजी के लिए खुली हैं जिन्हें दोनों अपील न्यायालयों द्वारा विभाजन के लिए उपलब्ध अभिनिर्धारित किए गए थे । चूंकि, हमारा संबंध विल विलेख और दान विलेख के निष्पादन की वैधता से है इसलिए अधिनियम, 1872 की धारा 68 इस संबंध में कुछ सुसंगत प्रतीत होती है जो इस प्रकार है –

> '68. **ऐसी दस्तावेज के निष्पादन का साबित किया जाना जिसका अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है** – यदि किसी दस्तावेज का अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है, तो उसे साक्ष्य के रूप में उपयोग में न लाया जाएगा, जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी, यदि कोई अनुप्रमाणक साक्षी जीवित और न्यायालय की आदेशिका के अध्यधीन हो तथा साक्ष्य देने के योग्य हो, उसका निष्पादन साबित करने के प्रयोजन से न बुलाया गया हो :
>
> परन्तु, ऐसी किसी दस्तावेज के निष्पादन को साबित करने के लिए, जो विल नहीं है, और जो भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) के उपबंधों के अनुसार रजिस्ट्रीकृत है, किसी अनुप्रमाणक साक्षी को बुलाना आवश्यक न होगा, जब तक कि उसके निष्पादन का प्रत्याख्यान उस व्यक्ति द्वारा जिसके द्वारा उसका निष्पादित होना तात्पर्यित है, विनिर्दिष्टतः न किया गया हो ।'

इस उपबंध का पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा ही जोरदार अवलंब लिया गया था । पूर्वोक्त उपबंध के मूल परिशीलन से यह

पूर्णतया स्पष्ट होता है कि जहां तक विल विलेख का संबंध है, इस बारे में इस विधिक प्रतिपादना के बारे में कोई संदेह नहीं है कि विल को साबित करने का भार प्रतिपादक पर होता है । प्रतिपादक द्वारा उक्त विल के सभी संदेहास्पद परिस्थितियों के अभाव को साबित करते हुए, उक्त के निष्पादन की वैधता और असलियत तथा वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर को साबित करना होता है । जब एक बार इसे साबित कर दिया जाता है तो यह कहा जा सकता है कि प्रतिपादक इस भार से उन्मोचित हो गया ।

जब विल के निष्पादन के बारे में संदेहास्पद परिस्थितियां होती हैं तो इसके बारे में भी प्रतिपादक पर यह भार होता है कि वह इनका स्पष्टीकरण करते हुए न्यायालय का समाधान करे और वह मात्र तभी ऐसे दायित्व से उन्मोचित होता है जब न्यायालय विल को असली होने के रूप में स्वीकार कर लेता है । यद्यपि, जहां इस प्रकार के अभिवाक् नहीं किए जाते हैं किन्तु, परिस्थितियों से ऐसे संदेह उद्भूत होते हैं तो प्रतिपादक को इनके बारे में न्यायालय का समाधान होता है । संदेहास्पद परिस्थितियां कई कारणों से उद्भूत हो सकती हैं जैसे कि वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर के असली होने के बारे में, वसीयतकर्ता के मस्तिष्क की दशा के बारे में, सुसंगत परिस्थितियों के प्रकाश में विल व्ययन करने में अप्राकृतिक, असंभाव्य, अऋजु होने के बारे में या विल में अन्य उपदर्शित चीजों से यह दर्शित होता है कि वसीयतकर्ता का मस्तिष्क स्वतंत्र नहीं था । ऐसे मामले में, न्यायालय स्वाभाविकतः यह प्रत्याशा कर सकता है कि दस्तावेज को वसीयतकर्ता का अंतिम विल के रूप में स्वीकार किए जाने के पूर्व इस दस्तावेज के सभी विधिसम्मत् संदेहों का पूरी तरह से निवारण किया जाना चाहिए । मेरे द्वारा पूर्वोक्त मत, इस न्यायालय के शशि कुमार बनर्जी **बनाम** सुबोध कुमार बनर्जी (ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 529) और पुष्पावती **बनाम** चन्द्र राजा कदम्बा (1973) 3 एस. एस. सी. 291 वाले मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार व्यक्त किए गए हैं ।

20. जहां तक अधिनियम, 1872 की धारा 68 का संबंध है, यह सुस्पष्टतः उपबंध करता है कि विल अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित है और इसलिए, इसे साक्ष्य के रूप में तब तक कि इसके निष्पादन को साबित करने के लिए अनुप्रमाणक साक्षियों में से कम से कम

एक अनुप्रमाणक साक्षी को न बुलाया जाए परन्तु ऐसा अनुप्रमाणक साक्षी जीवित होना चाहिए और यह न्यायालय की प्रक्रिया के अध्यधीन होना चाहिए और वह साक्ष्य देने के लिए सक्षम होना चाहिए ।"

22. **भरपूर सिंह और अन्य** बनाम **समशेर सिंह**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है कि जब प्राकृतिक उत्तराधिकारी, उत्तराधिकार से वंचित हो जाते हैं और प्रतिपादक विल में रुचि रखता है, यद्यपि विल रजिस्ट्रीकृत है फिर भी प्रतिपादक को विल का सम्यक् निष्पादन साबित करना चाहिए । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिपादक विल के निष्पादन में रुचि रखता है यह उन कारकों में से एक है जिसे विल के सम्यक् निष्पादन का अवधारण करने के लिए विचार में लिया जाना चाहिए । माननीय न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि विल के प्रतिपादक को निम्नलिखित साबित करना चाहिए :–

(i) कि विल पर वसीयतकर्ता ने स्वस्थचित्त और व्ययन करने की प्रकृति और प्रभाव को सम्यक् रूप से समझने की स्वस्थ मानसिक दशा में हस्ताक्षर किए हैं, और

(ii) कि जब विधि द्वारा अपेक्षित विल के समर्थन में प्रस्तुत साक्ष्य वसीयतकर्ता के स्वस्थचित्त और व्ययन करने की दशा तथा उसके हस्ताक्षर को हितरहित, संतोषप्रद और पर्याप्त साबित कर दिया जाता है तो न्यायालयों द्वारा प्रतिपादक के पक्ष में निष्कर्ष निकालना न्यायानुमत होगा ।

23. **यमनाम ओनगबी तम्फा ईबेमा देवी** बनाम **यमनाम यूकुमार सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में उच्चमत न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 का निर्वचन करते समय निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"11. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के अनुसार, विल का सम्यक् निष्पादन के लिए –

---

[1] (2009) 3 एस. सी. सी. 687.

[2] (2009) 4 एस. सी. सी. 780.

(1) वसीयतकर्ता द्वारा विल पर अपने हस्ताक्षर करने चाहिए या अपने चिन्ह लगाने चाहिए,

(2) वसीयतकर्ता के हस्तक्षर या चिन्ह इस प्रकार लगाया जाना चाहिए कि उससे यह प्रकट हो कि उसके द्वारा लेख को विल के रूप में प्रभावी करने का आशय था,

(3) विल को दो या दो से अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जना चाहिए, और

(4) उक्त साक्षियों में से प्रत्येक साक्षी द्वारा वसीयतकर्ता को विल पर हस्ताक्षर करते हुए या चिन्ह लगाते हुए देखा जाना चाहिए और उनमें से प्रत्येक साक्षी को वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर करने चाहिए ।

12. उपर्युक्त कथित तरीके से विल का अनुप्रमाणन मात्र औपचारिकता नहीं है । इसका अभिप्राय यह है कि निष्पादक के हस्ताक्षरों का परीक्षण करने के प्रयोजन के लिए दस्तावेज हस्ताक्षरित किए गए हैं । अनुप्रमाणक साक्षी को विल अनुप्रमाणित करने के आशय के साथ विल पर अपने हस्ताक्षर करने चाहिए । यह आवश्यक नहीं है कि एक से अधिक साक्षी उस समय उपस्थित हों और अनुप्रमाणन का विशिष्ट प्ररूप आवश्यक नहीं है । चूंकि, विधि द्वारा विल को अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित है, इसलिए, निष्पादन को इस धारा में और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में अधिकथित तरीके से साबित किया जाना चाहिए जिनमें यह अपेक्षित है कि ऐसे दस्तावेज के निष्पादन को साबित करने के प्रयोजन के लिए कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी की परीक्षा की जानी चाहिए ।

13. इसलिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 के उपबंधों तथा भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के उपबंधों के अनुसार विल को वैध होने के लिए इनमें उपबंधित तरीकों से दो या दो से अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना चाहिए और इसके प्रतिपादक को विल को साबित करने के लिए कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी की परीक्षा करनी चाहिए । अनुप्रमाणक साक्षी को न केवल विल पर वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या चिन्ह के बारे में कथन करना चाहिए अपितु इसके बारे में भी कथन करना चाहिए कि

अनुप्रमाणक साक्षियों में से प्रत्येक साक्षी ने वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर किए हैं ।"

24. **एस. आर. श्रीनिवास और अन्य** बनाम **एस. पद्मावथम्मा**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां विल का निष्पादन संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ है वहां स्वयं विल का रजिस्ट्रीकरण होना ही संदेहों का निवारण करने के लिए पर्याप्त नहीं है । माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"57. चूंकि, संदेहास्पद परिस्थितियां हैं, इसलिए, प्रतिवादियों के लिए उनका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है । स्वयं विल का रजिस्ट्रीकरण होना ही संदेहों का निवारण करने के लिए पर्याप्त नहीं है । प्रथम अपील न्यायालय ने भी यह उल्लेख किया है कि उन मामलों में भी जहां विल का निष्पादन स्वीकृत है वहां भी साक्ष्य में विल स्वीकार करने के लिए विल के कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी की परीक्षा की जानी चाहिए । प्रतिवादी साक्षी 2, जिसकी विल के लेखक के रूप में परीक्षा की गई है, ने इसका कोई युक्तियुक्त कारण नहीं दिया है कि क्यों विल को रजिस्ट्रीकरण के लिए दो बार उप-रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत किया गया था । न ही इस साक्षी द्वारा इस बारे में कोई कथन किया गया है कि क्यों विल को प्रथम अवसर पर रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया था ।

58. प्रथम अपील न्यायालय द्वारा यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि उप-रजिस्ट्रार की परीक्षा नहीं किए जाने से विल की असलियत के बारे में संदेह सृजित होता है । यहां तक कि विल के अनुप्रमाणक साक्षियों की भी परीक्षा नहीं की गई है । इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं है कि क्या उप-रजिस्ट्रार या किसी अन्य द्वारा विल को रजिस्ट्रीकृत करने के पूर्व इसे पढ़कर सुनाया गया था । इस बात को भी स्पष्टीकृत नहीं किया गया है कि किस प्रकार विल प्रतिवादी सं. 1 के कब्जे में आई । इस बारे में, कोई साक्ष्य नहीं है कि कब विल उसके समुचित अभिरक्षा में आया था । सम्पूर्ण परिस्थितियों के सामूहिक प्रभाव पर विचार करते हुए, प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विल का निष्पादन संदेहास्पद परिस्थितियों

---

[1] (2010) 5 एस. एस. सी. 274.

से घिरा हुआ है । परिणामतः, अपील मंजूर कर लिया गया था और विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया गया था ।

59. उच्च न्यायालय को अपने निर्णय में सम्पूर्ण साक्ष्य का गलत परिशीलन प्रतीत होता है । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित पूर्वोक्त निष्कर्षों को अनुमानों पर आधारित होने के कारण छंटनी द्वारा हटा दिए गए थे । हम, उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को समझने में असमर्थ हैं । यह द्वितीय वाद में वादियों द्वारा की गई अभिकथित स्वीकृति से इस प्रकार प्रभावित था कि इसमें उन तात्विक तथ्यों की परीक्षा करना समुचित नहीं समझा गया जो प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों का आधार गठित करता है । यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिवचनों, दस्तावेजों और साक्ष्यों का परिशीलन नहीं किया गया था फिर भी यह निष्कर्ष निकाला कि अपील न्यायालय के निष्कर्ष अनुमानों पर आधारित हैं । हम उच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत को पृष्ठांकित करने में असमर्थ हैं ।"

25. इसमें उपर्युक्त विश्लेषणों और चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, इस मामले में कम से कम ऐसा कोई विधि का प्रश्न नहीं है जिसे वर्तमान नियमित द्वितीय अपील में विधि का सारवान् प्रश्न कहा जा सके और अतएव, इसे खारिज किया जाता है । लम्बित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई हों, का भी निपटारा किया जाता है । तथापि, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

———

जान मोहम्मद

बनाम

मोहम्मद दीन

तारीख 4 जून, 2014

न्यायमूर्ति तारलोक सिंह चौहान

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 और आदेश 32 का नियम 3 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क] – करार – निष्पादन – भागिक पालन – मूल्यांकन और अर्थान्वयन – यदि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों से यह प्रकट होता है कि करार का सम्यक् निष्पादन नहीं हुआ है तो उसका भागिक अनुपालन नहीं कराया जा सकता है और जहां ऐसे दस्तावेज का सम्यक् निष्पादन ही नहीं हुआ है तो उसके गलत मूल्यांकन या गलत अर्थान्वयन का प्रश्न ही उद्‌भूत नहीं हो सकता है ।

वर्तमान मामले में, वादियों का पक्षकथन यह है कि वे तारीख 7 मई, 1983 के करार के आधार पर विवादित भूमि के कब्जे सहित स्वामी हैं । यह प्रकथन किया गया है कि अलाहदीन और सलामदीन पुत्र लखी ने भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर से क्रमशः 4,000/- रुपए और 3,500/- रुपए का ऋण लिया था और दोनों 11,000/- रुपए के ऋण के विरुद्ध अपीलार्थियों के पिता नूर हुसैन को संपत्ति विक्रय करने को सहमत हुए थे । यह भी प्रकथन किया गया है कि करार के पश्चात् अपीलार्थियों के पिता ने संदाय कर दिया और इस शर्त पर कि वाद-भूमि का कब्जा अपीलार्थियों को सौंप दिया जाए । यह भी दावा किया गया कि पक्षकार इस बात के लिए सहमत थे कि अपीलार्थियों का पिता बैंक के ऋण का संदाय करेगा और इसके पश्चात् अलाहदीन और सलामदीन विक्रय-विलेख का निष्पादन करेंगे जिसमें असफल रहने पर अपीलार्थियों का पिता वाद संपत्ति का स्वामी हो जाएगा । यह भी प्रकथन किया गया कि प्रत्यर्थी का, अलाहदीन और सलामदीन का मात्र विधिक प्रतिनिधि होने के नाते वाद-भूमि में कोई अधिकार, हक या हित नहीं था । तद्‌नुसार, अपीलार्थियों ने इस प्रभाव की घोषणा करने के लिए वाद फाइल किया कि वे स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ वाद-भूमि के स्वामी हो गए हैं । प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया गया

जिसमें प्रारम्भिक आक्षेप वाद कायम रखने, आवश्यक पक्षकारों का असंयोजन, परिसीमा अवधि, विबंधन और वाद हेतुक के बारे में उद्भूत किए गए । गुणागुणों पर, इस बात से इनकार किया गया कि वादी वाद-भूमि के कब्जे सहित स्वामी हैं । यह भी कथन किया गया कि अलाहदीन और सलामदीन में वादियों के पिता नूर हुसैन के पक्ष में कभी भी कोई करार निष्पादित नहीं किया था । यह भी कथन किया गया कि यदि कभी भी कोई संदाय वादियों के पिता द्वारा भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर से ऋण के एवज में संदाय किया गया था तो भी उन संदायों के लिए वादी आबद्ध नहीं है । यह भी कथन किया गया कि वाद-भूमि का कब्जा कभी भी वादियों के पिता को नहीं सौंपा गया था । प्रतिवादी ने यह दावा किया कि वादी वाद-भूमि में पर-व्यक्ति हैं और इसलिए वाद खारिज किया जाना चाहिए । वादियों द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया जिसमें वादपत्र में पहले ही उल्लिखित प्रकथनों का पुनः प्राख्यान किया गया और उनकी पुनः पुष्टि की गई । विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य अभिलिखित करने और उनका मूल्यांकन करने के पश्चात् वादियों का वाद खारिज कर दिया । इसके विरुद्ध अपील प्रस्तुत की गई किन्तु वादियों के वाद का वही परिणाम हुआ । इस प्रकार, यह मामला इस न्यायालय के समक्ष पहुंचा । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यदि न्यायालय इस मामले में विरचित विवाद्यकों पर सरसरी निगाह डाले तो भी यह स्पष्ट होता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा कभी भी भागिक पालन के बारे में विवाद्यक नहीं विरचित किया था अथवा अपीलार्थियों द्वारा दावा किया गया था । विद्वान् निचले अपील न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपील के आधारों में भी अपीलार्थियों द्वारा समुचित विवाद्यक के अविरचित होने के बारे में अथवा भागिक पालन से संबंधित विवाद्यक के बारे में कोई अभिवाक् नहीं किया गया था । इसलिए, इस अपील में अपीलार्थियों को यह अभिवाक् करने के लिए खुला नहीं है । अन्यथा भी अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल यह दर्शित करने में समर्थ नहीं हुए हैं कि किस प्रकार घोषणा के लिए वाद कायम रखे जाने योग्य है, बल्कि यह ऋजुतः स्वीकार किया है कि घोषणा के लिए वर्तमान प्ररूप में वाद कायम रखे जाने योग्य नहीं हो सकता है । तथापि, यह दावा किया है कि अपीलार्थी करार के आधार पर अपने कब्जे को संरक्षित करने के लिए अब भी हकदार है । इस प्रक्रम पर, यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि जहां तक तारीख 7 मई, 1983 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए का संबंध है, विद्वान् निचले न्यायालयों ने अभिलेख पर के साक्ष्यों पर विचार

करने के पश्चात् यह अभिपुष्ट निष्कर्ष निकाला है कि इस करार का सम्यक् निष्पादन सिद्ध नहीं किया गया है । अभि. सा. 3 करार का अभिकथित लेखक है और उसने यह कथन किया कि दोनों अलाहदीन और सलामदीन ने नीली स्याही से अपने अंगूठे का निशान लगाया था किन्तु जब मूल करार पर अलाहदीन और सलामदीन के अंगूठे का निशान देखा गया तो वह काली स्याही में था । इस साक्षी ने यह दावा किया है कि पार्श्व साक्षी ढोगरु और रतन चन्द थे किन्तु करार से यह प्रकट होता है कि एक और पार्श्व साक्षी था जिसका नाम अमीर हुसैन है । करार के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि शब्द अमीर हुसैन को भिन्न स्याही और पेन से लिखा गया है और उसे बाद में लिखा गया प्रतीत होता है । इस साक्षी ने अमीर हुसैन की शनाख्त के बारे में बहानेबाजी करते हुए अनभिज्ञता जाहिर की और जब उससे यह प्रश्न किया गया कि उक्त शब्द किसका लिखा हो सकता है तो उसने इस बात से भी अपनी अनभिज्ञता जाहिर की । इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए को विधि के अनुसरण में अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है । जब एक बार यह निष्कर्ष निकाल लिया जाता है कि दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए को अभिलेख पर साबित नहीं किया गया है तो प्रदर्श पी. 1 से पी. 55 और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए के गलत परिशीलन और गलत मूल्यांकन के बारे में प्रश्न मात्र अव्यवहारिक हो जाता है । तद्नुसार, पूर्वोक्त सारवान् विधि के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है । (पैरा 8, 9 और 10)

यह सुस्थिर विधि है कि वादी को स्वयं अपने आप तैयार होना चाहिए और किसी भी तरीके से प्रतिवादी की कमजोरी से कोई बल प्राप्त नहीं हो सकता है । जब एक बार वादी अभिलेख पर तारीख 7 मई, 1983 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए को साबित करने में असफल हो गया है तो मात्र यह तथ्य कि प्रतिवादी साक्षी कठघरे में उपस्थित नहीं हुआ है इससे उसे कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि यह वादी ही था जिसे अपने मामले को निर्णयज विधियों, तर्कों और विश्वसनीय साक्ष्यों से सिद्ध करना अपेक्षित था । तद्नुसार, इस विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर दिया जाता है । उसके बाद, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अनुचितता पर आधारित है जिसके द्वारा विद्वान् निचले न्यायालयों ने अभिवचनों की अवहेलना, गलत अर्थान्वयन और गलत निर्वचन किया है साथ ही इस न्यायालय द्वारा

हस्तक्षेप के लिए अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य को मंगाया गया है । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अपील की स्वीकृति के समय पर अनुचितता के निष्कर्ष के बारे में इस न्यायालय द्वारा कोई प्रश्न नहीं उठाया गया है । फिर भी यह दोहराया जा सकता है कि पक्षकारों के अभिवचनों के साथ ही साक्षियों के कथनों और अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता है कि विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष किसी भी तरीके से अनुचित हैं । (पैरा 14, 15 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 4 एस. सी. सी. 693 : **राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम और एक अन्य** बनाम **बजरंग लाल** ;	16
[2014]	2014 (1) शिमला एल. सी. 515 : **सेबास्टियो लुइस फर्नाडिस (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य** बनाम **के. वी. पी. शास्त्री (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य** ;	15
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 512 : **मान कौर (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **हरतार सिंह संघा** ;	13
[1999]	1999 (1) एस. एल. जे. 724 : **ईश्वर भाई सी. पटेल** उर्फ **बच्चू भाई पटेल** बनाम **हरिहर बेहरा और एक अन्य** ।	12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2001 की नियमित द्वितीय अपील सं. 456.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्रीमती दिव्यानी शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री रजनीश मानिकताला, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति तारलोक सिंह चौहान – यह नियमित द्वितीय अपील, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (2), कांगड़ा, धर्मशाला द्वारा सिविल अपील सं. 76-पी/XIII/97 में पारित तारीख 3 अगस्त, 2001 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है जिसके द्वारा उन्होंने वादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील खारिज कर दी थी और विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, पालमपुर द्वारा 1992 की सिविल वाद सं. 366 में पारित तारीख 18 जुलाई, 1997 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी थी ।

2. संक्षेप में, वादियों का पक्षकथन यह है कि वे तारीख 7 मई, 1983 के करार के आधार पर विवादित भूमि के कब्जे सहित स्वामी हैं । यह प्रकथन किया गया है कि अलाहदीन और सलामदीन पुत्र लखी ने भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर से क्रमशः 4,000/- रुपए और 3,500/- रुपए का ऋण लिया था और दोनों 11,000/- रुपए के ऋण के विरुद्ध अपीलार्थियों के पिता नूर हुसैन को संपत्ति विक्रय करने को सहमत हुए थे । यह भी प्रकथन किया गया है कि करार के पश्चात् अपीलार्थियों के पिता ने संदाय कर दिया और इस शर्त पर कि वाद-भूमि का कब्जा अपीलार्थियों को सौंप दिया जाए । यह भी दावा किया गया कि पक्षकार इस बात के लिए सहमत थे कि अपीलार्थियों का पिता बैंक के ऋण का संदाय करेगा और इसके पश्चात् अलाहदीन और सलामदीन विक्रय-विलेख का निष्पादन करेंगे जिसमें असफल रहने पर अपीलार्थियों का पिता वाद संपत्ति का स्वामी हो जाएगा । यह भी प्रकथन किया गया कि प्रत्यर्थी का, अलाहदीन और सलामदीन का मात्र विधिक प्रतिनिधि होने के नाते वाद-भूमि में कोई अधिकार, हक या हित नहीं था । तद्नुसार, अपीलार्थियों ने इस प्रभाव की घोषणा करने के लिए वाद फाइल किया कि वे स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ वाद-भूमि के स्वामी हो गए हैं ।

3. प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया गया जिसमें प्रारम्भिक आक्षेप वाद कायम रखने, आवश्यक पक्षकारों का असंयोजन, परिसीमा अवधि, विबंधन और वाद हेतुक के बारे में उद्भूत किए गए । गुणागुणों पर, इस बात से इनकार किया गया कि वादी वाद-भूमि के कब्जे सहित स्वामी हैं । यह भी कथन किया गया कि अलाहदीन और सलामदीन में वादियों के पिता नूर हुसैन के पक्ष में कभी भी कोई करार निष्पादित नहीं किया था । यह भी कथन किया गया कि यदि कभी भी कोई संदाय वादियों के पिता द्वारा भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर से ऋण के एवज में संदाय किया गया था तो भी उन संदायों के लिए वादी आबद्ध नहीं है ।

यह भी कथन किया गया कि वाद-भूमि का कब्जा कभी भी वादियों के पिता को नहीं सौंपा गया था । प्रतिवादी ने यह दावा किया कि वादी वाद-भूमि में पर-व्यक्ति हैं और इसलिए वाद खारिज किया जाना चाहिए । वादियों द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया जिसमें वादपत्र में पहले ही उल्लिखित प्रकथनों का पुनः प्राख्यान किया गया और उनकी पुनः पुष्टि की गई ।

पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर, विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 12 अप्रैल, 1995 और उसके बाद तारीख 14 जुलाई, 1997 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

(1) क्या अलाहदीन और सलामदीन ने वादियों के पिता नूर हुसैन के साथ वाद-भूमि का विक्रय करने के लिए करार किया था, जैसा कि अभिकथित है ?

(2) क्या वादियों के पिता नूर हुसैन ने भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर को अलाहदीन और सलामदीन की ओर से वाद-भूमि के विक्रय मूल्य के रूप में 11,000/- रुपए संदत्त किया है ?

(3) क्या अलाहदीन और सलामदीन ने करार के एवज में तारीख 7 मई, 1983 को वादियों के पिता नूर हुसैन को वाद-भूमि का कब्जा सौंपा था और इसके पश्चात् वादी वाद-भूमि के कब्जे सहित स्वामी हो गए हैं, जैसा कि अभिकथित है ?

(4) क्या वादी व्यादेश के अनुतोष का लाभ पाने के हकदार हैं, जैसी कि प्रार्थना की गई है ?

(5) क्या वाद, वर्तमान प्ररूप में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

(6) क्या वादियों को सुने जाने का अधिकार नहीं है और उनके पास वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं है ?

(7) क्या वाद परिसीमा अवधि के भीतर नहीं है, जैसा कि अभिकथित है ?

(8) क्या वादियों के कृत्य और आचरण से वर्तमान वाद वर्जित है ?

(9) अनुतोष ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य अभिलिखित करने और उनका मूल्यांकन करने के पश्चात् वादियों का वाद खारिज कर दिया । इसके विरुद्ध अपील प्रस्तुत की गई किन्तु वादियों के वाद का वही परिणाम

हुआ । इस प्रकार, यह मामला इस न्यायालय के समक्ष पहुंचा । तारीख 27 सितम्बर, 2001 को यह अपील निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकार कर ली गई थी :–

(1) क्या दोनों विद्वान् निचले न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही हैं कि तारीख 7 मई, 1983 के करार, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए को विधि के अनुसरण में साबित नहीं किया गया है ?

(2) क्या आक्षेपित निर्णय और डिक्री, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क के उपबंधों के गलत परिशीलन, गलत निर्वचन के साथ ही गलत मूल्यांकन का परिणाम है ?

(3) क्या विद्वान् निचले न्यायालय अपीलार्थियों का वाद डिक्री करने में सही नहीं हैं, विनिर्दिष्टतया जब अपीलार्थियों ने यह साबित कर दिया है कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए के अनुसरण में उन्होंने उस बैंक में 11,000/- रुपए जमा कर दिया था जिससे प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के हित-पूर्वाधिकारी द्वारा ऋण लिया गया था ?

(4) क्या आक्षेपित निर्णय और डिक्री, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 32 के नियम 3 के उपबंधों के पूर्णतया गलत परिशीलन का परिणाम है ?

(5) क्या आक्षेपित निर्णय और प्रदर्श पी. 1 से पी. 55 और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए के गलत परिशीलन के साथ ही गलत मूल्यांकन का परिणाम है ?

(6) क्या विद्वान् निचले न्यायालय उस प्रत्यर्थी/प्रतिवादी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने में सही नहीं हैं जिसने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114(छ) के अधीन और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ईश्वर भाई सी. पटेल **उर्फ** बच्चू भाई पटेल **बनाम** हरिहर बेहरा और एक अन्य [1999 (1) एस. एल. जे. 724] में अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए, यथाअपेक्षित साक्षी कठघरे में उपस्थित नहीं हुआ ?

विधि का सारवान् प्रश्न सं. 1 से 3 और 5

5. चूंकि, ये सभी प्रश्न एक-दूसरे से संबंधित और जुड़े हुए हैं इसलिए सामान्य कारणों के माध्यम से इनका एक ही उत्तर दिया जाता है ।

6. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के

अभिलेखों का अतिसावधानीपूर्वक परिशीलन किया । तथापि, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 53क की प्रयोज्यता के बारे में जोरदार तर्क दिया । अधिनियम, 1882 की धारा 53क के उपबंध निम्नलिखित हैं :–

> "53क. **भागिक पालन** – जहां कि कोई व्यक्ति किसी स्थावर संपत्ति को प्रतिफलार्थ अन्तरित करने के लिए अपने द्वारा या अपनी ओर से हस्ताक्षरित लेखबद्ध ऐसी संविदा करता है जिससे उस अन्तरण को गठित करने के लिए आवश्यक निबन्धन युक्तियुक्त निश्चय के साथ अभिनिश्चित किए जा सकते हैं,
>
> और अन्तरिती ने संविदा के भागिक पालन में उस संपत्ति या उसके किसी भाग का कब्जा ले लिया है । अन्तरिती, जिसका कब्जा पहले से ही है, संविदा के भागिक पालन में अपना कब्जा चालू रखता है और उस संविदा को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य कर चुका है,
>
> और अन्तरिती संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका है, या पालन करने के लिए रजामन्द है,
>
> वहां इस बात के होते हुए भी कि जहां कि अन्तरण की कोई लिखित है, वहां पर अन्तरण किसी तत्समय-प्रवृत्त-विधि द्वारा उसके लिए विहित रीति से पूरा नहीं किया गया है, अन्तरक या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाला कोई व्यक्ति अन्तरिती या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध उस सम्पत्ति के विषय में, जिस पर अन्तरिती ने कब्जा ले लिया है या चालू रखा है, कोई भी ऐसा अधिकार, जो संविदा के निबन्धनों द्वारा अभिव्यक्त रूप से उपबन्धित अधिकार से भिन्न है, प्रवर्तित कराने से विवर्जित होगा :
>
> परन्तु इस धारा की कोई भी बात ऐसे संप्रतिफल अन्तरिती के अधिकारों पर प्रभाव नहीं डालेगी जिसे उस संविदा या उसके भागिक पालन की कोई सूचना न हो ।"

इसलिए, इस धारा को लागू करने के लिए आवश्यक शर्तें हैं :–

(i) किसी स्थावर संपत्ति को प्रतिफलार्थ अन्तरित करने के लिए

संविदा होनी चाहिए,

(ii) संविदा अन्तरक या उसकी ओर से किसी द्वारा हस्ताक्षरित लेखबद्ध होना चाहिए,

(iii) लेखबद्ध ऐसे शब्दों में होना चाहिए जिससे अन्तरण गठित करने के लिए आवश्यक निबंधनों को युक्तियुक्त निश्चय के साथ अभिनिश्चित किया जा सके,

(iv) अन्तरिती द्वारा संविदा के भागिक पालन में उस संपत्ति या उसके किसी भाग का कब्जा ले लिया जाना चाहिए या यदि अन्तरिती का पहले से ही कब्जा हो,

(v) उसे संविदा के भागिक पालन में कब्जा चालू रखना चाहिए,

(vi) अन्तरिती द्वारा संविदा को अग्रसर करने में कोई कार्य कर चुका होना चाहिए ,

(vii) अन्तरिती द्वारा संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका होना चाहिए या पालन करने के लिए रजामंद होना चाहिए ।

7. वादियों के दावे का आधार विवादित संपत्ति का स्वामी होना था न कि भागिक पालन, जैसा कि वादपत्र के शीर्ष टिप्पण और अन्य प्रकथनों से स्पष्ट होता है, जो इस प्रकार हैं :–

"इस प्रभाव की घोषणा के लिए वाद कि वादी तारीख 7 मई, 1983 के करार द्वारा मोहल चलह, मौजा थुरल, तहसील पालमपुर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश में स्थित भूमि खाता सं. 50, खतौनी सं. 109, खसरा सं. 215, 227, 383, 384, 479, 488 कीटा 6 भूमि माप 0-50-78 हेक्टेयर और 0-07-33 के 1/4 भाग का भूमि माप 0-29-33 खाता सं. 51, खतौनी सं. 110, खसरा सं. 469 भूमि के स्वामी हो गए हैं और प्रतिवादी का वाद भूमि में किसी भी तरीके से, जो भी हो, अवरुद्ध करते हुए स्थायी व्यादेश के साथ ही वाद भूमि में कोई अधिकार, हक या हित नहीं रह गया है ।

श्रीमान्

वादी सआदरपूर्वक निम्नलिखित निवेदन करते हैं –

(1) कि वादी तारीख 7 मई, 1983 के करार द्वारा मोहल चलह, मौजा थुरल, तहसील पालमपुर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश में

स्थित भूमि खाता सं. 50, खतौनी सं. 109, खसरा सं. 215, 227, 383, 384, 479, 488 कीटा 6 भूमि माप 0-50-78 हेक्टेयर और 0-07-33 के 1/4 भाग का भूमि माप 0-29-33 खाता सं. 110, खसरा सं. 469 भूमि के स्वामी हो गए हैं ।

(2) कि श्री अलाहदीन और सलामदीन पुत्र लखी पुत्र रुल्दू ने भैंसें खरीदने के लिए भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर से क्रमशः 4,000/- रुपए और 3,500/- रुपए का ऋण लिया था और उन्होंने वादी अलाहदीन और सलामदीन के पिता श्री नूर हुसैन के साथ एक करार किया था जिसमें 11,000/- रुपए ऋण के विरुद्ध भूमि विक्रय करने पर सहमति हुई थी, जिसे वादियों के पिता द्वारा भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर को संदत्त कर दिया गया था । शाखा प्रबन्धक, भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर का पत्र संबद्ध है ।

(3) कि अलाहदीन और सलामदीन ने तारीख 7 मई, 1983 को वादियों के पिता को कब्जा सौंप दिया था और वे ऋण संदाय करने के पश्चात् वादियों के पिता के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए सहमत थे । वादियों के पिता ने भारतीय स्टेट बैंक, जयसिंहपुर को ऋण संदत्त कर दिया था । अलाहदीन और सलामदीन इस बात के लिए सहमत थे कि यदि वे वादियों के पिता के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित करने में असफल रहते हैं तो वादियों का पिता वाद संपत्ति का स्वामी हो जाएगा, करार संबद्ध है ।

(4) कि श्री अलाहदीन और सलामदीन की मृत्यु हो गई और प्रतिवादी उनकी एकमात्र विधिक उत्तराधिकारी है और उसने उनकी संपत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त कर ली है ।

(5) कि प्रतिवादी वयस्क है और उसने अपनी नैसर्गिक संरक्षक नानी के माध्यम से वाद किया है और उनका वयस्क में कोई प्रतिकूल हित नहीं है ।

(6) कि नूर हुसैन की तारीख 6 मार्च, 1992 को मृत्यु हो गई और वादी उनके विधिक उत्तराधिकारी हैं ।

(7) कि वादियों ने प्रतिवादी से वादियों के दावों को स्वीकार करने का निवेदन किया किन्तु प्रतिवादी ने इनकार कर दिया, अतएव यह वाद फाइल किया गया ।

(8) कि प्रतिवादी का वाद भूमि में कोई अधिकार, हक या हित नहीं है ।

(9) कि न्यायालय शुल्क और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए वाद का मूल्यांकन किया गया है, जैसा कि वादपत्र के शीर्ष में दिया गया है ।

(10) कि वादी को वाद हेतुक इस माननीय न्यायालय की अधिकारिता के भीतर मोहल चलह, मौजा थुरल, तहसील पालमपुर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश में तारीख 7 मई, 1983 और तारीख 20 जुलाई, 1992 को उद्भूत हुआ, अतएव, इस न्यायालय को वाद का विचारण करने की अधिकारिता है ।

इसलिए, यह प्रार्थना है कि वादियों का वाद डिक्री किया जा सकता है, जैसी कि वादपत्र के शीर्ष में प्रार्थना की गई है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया)

8. जब एक बार अपीलार्थियों ने स्वयं स्वामियों के रूप में दावा कर दिया है तो ऐसे अभिवचनों के आधार पर इस न्यायालय के समक्ष प्रथम बार भी भागिक पालन के अभिवाक् का अवलंब नहीं लिया जा सकता है । यदि हम इस मामले में विरचित विवाद्यकों पर सरसरी निगाह डालें तो भी यह स्पष्ट होता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा कभी भी भागिक पालन के बारे में विवाद्यक नहीं विरचित किया था अथवा अपीलार्थियों द्वारा दावा किया गया था । विद्वान् निचले अपील न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपील के आधारों में भी अपीलार्थियों द्वारा समुचित विवाद्यक के अविरचित होने के बारे में अथवा भागिक पालन से संबंधित विवाद्यक के बारे में कोई अभिवाक् नहीं किया गया था । इसलिए, इस अपील में अपीलार्थियों को यह अभिवाक् करने के लिए खुला नहीं है ।

9. अन्यथा भी अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल यह दर्शित करने में समर्थ नहीं हुए हैं कि किस प्रकार घोषणा के लिए वाद कायम रखे जाने योग्य है, बल्कि यह ऋजुतः स्वीकार किया है कि घोषणा के लिए वर्तमान प्ररूप में वाद कायम रखे जाने योग्य नहीं हो सकता है । तथापि, यह दावा किया है कि अपीलार्थी करार के आधार पर अपने कब्जे को संरक्षित करने के लिए अब भी हकदार है । इस प्रक्रम पर, यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि जहां तक तारीख 7 मई, 1983 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए का संबंध है, विद्वान् निचले न्यायालयों ने अभिलेख पर के साक्ष्यों पर

विचार करने के पश्चात् यह अभिपुष्ट निष्कर्ष निकाला है कि इस करार का सम्यक् निष्पादन सिद्ध नहीं किया गया है ।

10. अभि. सा. 3 करार का अभिकथित लेखक है और उसने यह कथन किया कि दोनों अलाहदीन और सलामदीन ने नीली स्याही से अपने अंगूठे का निशान लगाया था किन्तु जब मूल करार पर अलाहदीन और सलामदीन के अंगूठे का निशान देखा गया तो वह काली स्याही में था । इस साक्षी ने यह दावा किया है कि पार्श्व साक्षी ढोगरु और रतन चन्द थे किन्तु करार से यह प्रकट होता है कि एक और पार्श्व साक्षी था जिसका नाम अमीर हुसैन है । करार के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि शब्द अमीर हुसैन को भिन्न स्याही और पेन से लिखा गया है और उसे बाद में लिखा गया प्रतीत होता है । इस साक्षी ने अमीर हुसैन की शनाख्त के बारे में बहानेबाजी करते हुए अनभिज्ञता जाहिर की और जब उससे यह प्रश्न किया गया कि उक्त शब्द किसका लिखा हो सकता है तो उसने इस बात से भी अपनी अनभिज्ञता जाहिर की । इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए को विधि के अनुसरण में अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है । जब एक बार यह निष्कर्ष निकाल लिया जाता है कि दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए को अभिलेख पर साबित नहीं किया गया है तो प्रदर्श पी. 1 से पी. 55 और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए के गलत परिशीलन और गलत मूल्यांकन के बारे में प्रश्न मात्र अव्यवहारिक हो जाता है । तद्नुसार, पूर्वोक्त सारवान् विधि के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है ।

विधि का सारवान् प्रश्न सं. 4

11. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह कथन किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 32 के नियम 3 के उपबंधों का अवलंब वादियों के अ-वाद के लिए विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा नहीं लिया जा सकता है । तद्नुसार, इस प्रश्न का उत्तर अपीलार्थियों के पक्ष में दिया जाता है ।

विधि का सारवान् प्रश्न सं. 6

12. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह जोरदार तर्क दिया कि विद्वान् निचले न्यायालयों को प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना अपेक्षित था क्योंकि वह साक्षी कठघरे में उपस्थित होने में असफल रही । इस प्रयोजन के लिए, अपीलार्थी ने **ईश्वर भाई सी. पटेल**

उर्फ **बच्चू भाई पटेल** बनाम **हरिहर बेहरा और एक अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "15. स्वीकृततः, प्रतिवादी सं. 1 का सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया लिमिटेड, सम्बलपुर शाखा में एक खाता था जिसका संचालन करने के लिए उसके पिता अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 प्राधिकृत थे । यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि इस खाते से उक्त रकम प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा अपीलार्थी को अग्रिम रूप में दी गई थी । प्रत्यर्थी सं. 2 ने यह भी कथन किया है कि जब अपीलार्थी 7,000/- रुपए का ऋण लेने के लिए उसके पास आया तो उसने उसे स्पष्टतः यह बताया था कि उसके पास उधार देने के लिए धन नहीं है जिसके उपरान्त अपीलार्थी ने स्वयं ही प्रत्यर्थी सं. 1 के खाते से ऋण अग्रिम लेने का सुझाव दिया था और उसके इस सुझाव पर ही प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपीलार्थी को चैक जारी किया था जिसे स्वीकृततः अपीलार्थी ने कैश करा लिया था । इस तथ्य का अपीलार्थी द्वारा विरोध नहीं किया गया है जो प्रतिवादी (प्रत्यर्थी) सं. 2 के इस कथन को इनकार करते हुए शपथ पर कथन करने के लिए साक्षी कठघरे में उपस्थित नहीं हुआ कि उसकी प्रेरणा पर ही प्रत्यर्थी सं. 2 ने प्रतिवादी (प्रत्यर्थी) सं. 1 के खाते से चैक जारी करते हुए अपीलार्थी को 7,000/- रुपए की रकम अग्रिम दी थी । अपीलार्थी द्वारा साक्षी कठघरे में उपस्थित नहीं होने और स्वयं को प्रतिपरीक्षा के लिए उपस्थित नहीं करने के कारण, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के दृष्टांत (छ) में अन्तर्विष्ट सिद्धांतों के आधार पर उसके विरुद्ध प्रतिकूल उपधारणा की जाती है ।"

13. **मान कौर (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **हरतार सिंह संघा**[2] वाले मामले में भी माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "14. विद्याधर **बनाम** मानिक राव (1999) 3 एस. सी. सी. 573 वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अतिमान्यताप्राप्त विधिक प्रतिपादना को पुनः दोहराया – (एस. सी. सी. पृष्ठ सं. 583-84 पैरा 17)

---

[1] 1999 (1) एस. एल. जे. 724.

[2] (2010) 10 एस. सी. सी. 512.

> '17. जहां वाद का एक पक्षकार साक्षी कठघरे में उपस्थित नहीं होता है और शपथ पर अपना पक्षकथन नहीं करता है और स्वयं को अन्य पक्षकार द्वारा प्रतिपरीक्षा करने के लिए प्रस्थापना नहीं करता है तो यह उपधारणा की जाएगी कि उसके द्वारा स्थापित मामला सही नहीं है ..... ।'"

14. पूर्वोक्त विधिक प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं है किन्तु यह प्रश्न कि क्या उक्त निर्णयों के विनिश्चयाधार वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू होते हैं । यह सुस्थिर विधि है कि वादी को स्वयं अपने आप तैयार होना चाहिए और किसी भी तरीके से प्रतिवादी की कमजोरी से कोई बल प्राप्त नहीं हो सकता है । जब एक बार वादी अभिलेख पर तारीख 7 मई, 1983 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए को साबित करने में असफल हो गया है तो मात्र यह तथ्य कि प्रतिवादी साक्षी कठघरे में उपस्थित नहीं हुआ है इससे उसे कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि यह वादी ही था जिसे अपने मामले को निर्णयज विधियों, तर्कों और विश्वसनीय साक्ष्यों से सिद्ध करना अपेक्षित था । तद्नुसार, इस विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर दिया जाता है ।

15. उसके बाद, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अनुचितता पर आधारित है जिसके द्वारा विद्वान् निचले न्यायालयों ने अभिवचनों की अवहेलना, गलत अर्थान्वयन और गलत निर्वचन किया है साथ ही इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के लिए अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य को मंगाया गया है । दलील के समर्थन में विद्वान् काउंसेल ने **सेबास्टियो लुइस फर्नांडिस (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य** बनाम **के. वी. पी. शास्त्री (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "24. प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल ने हीरो विनोद (अवयस्क) **बनाम** सेशाम्मल (2006) 5 एस. सी. सी. 545 वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया जिसके पैरा 24 में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 से संबंधित सिद्धांतों का सार प्रस्तुत किया गया था जो निम्नलिखित उद्धृत हैं –
>
> '24. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 से

[1] 2014 (1) शिमला एल. सी. 515.

संबंधित सिद्धांत इस मामले के लिए सुसंगत हैं जो संक्षिप्ततः निम्नलिखित हो सकते हैं –

(i) दस्तावेज के विवरणों या अन्तर्वस्तुओं से तथ्य का निष्कर्ष एक तथ्य का प्रश्न है । किन्तु दस्तावेज के निबंधनों का विधिक प्रभाव एक विधि का प्रश्न है । एक दस्तावेज के निर्माण में किसी विधि का सिद्धांत लागू होना भी एक विधि का प्रश्न है । इसलिए, जब एक दस्तावेज के गलत अर्थान्वयन या दस्तावेज के निर्माण में विधि के सिद्धांत को गलत तौर पर लागू करना भी विधि का प्रश्न उद्भूत करता है ।

(ii) उच्च न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि मामले में सारवान् विधि का प्रश्न अन्तर्वलित है और न कि मात्र विधि का प्रश्न । एक विधि का प्रश्न मामले का विनिश्चय करने के लिए तात्विक (कि प्रश्न उत्तर जिससे वाद के पक्षकारों का हित प्रभावित होता है) होता है वह विधि का सारवान् प्रश्न होगा, यदि यह विधि के किसी विनिर्दिष्ट उपबंधों या सुस्थिर विधिक सिद्धांतों से आच्छादित नहीं है जिनसे आबद्धकारी पूर्व-निर्णय उद्भूत होते हैं और जिनमें एक विवाद्य विधिक मुद्दा अन्तर्वलित होता है । एक विधि का सारवान् प्रश्न भी प्रतिकूल स्थितियां उद्भूत कर सकता है, जहां विधिक प्रास्थिति स्पष्ट है, या तो विधि के अभिव्यक्त उपबंधों के कारण या आबद्धकारी पूर्व-निर्णय के कारण, किन्तु निचले न्यायालयों ने या तो ऐसे विधिक सिद्धांतों की अवहेलना करते हुए या इनके प्रतिकूल कार्य करते हुए, मामले में विनिश्चय किया । द्वितीय प्रकार के मामलों में विधि के सारवान् प्रश्न विधि के कारण उद्भूत नहीं होते हैं जो विवाद्य होते हैं किन्तु यह सुस्थिर विधिक प्रतिपादना का अतिक्रमण करते हुए तात्विक प्रश्नों पर दिए गए विनिश्चयों के कारण उद्भूत होते हैं ।

(iii) साधारण नियम यह है कि उच्च न्यायालय, निचले न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करेगा । किन्तु, यह आत्यंतिक नियम नहीं है । कुछ अति-

मान्यताप्राप्त अपवाद हैं जहां (1) निचले न्यायालयों ने तात्विक साक्ष्य की अवहेलना की है या बिना किसी साक्ष्य पर कार्य किया है (2) निचले न्यायालयों ने त्रुटिपूर्ण तौर पर विधि लागू करते हुए साबित तथ्यों से गलत निष्कर्ष निकाला है या (3) निचले न्यायालयों ने गलत तौर पर सबूत का भार अधिरोपित किया है । जब हम बिना किसी साक्ष्य पर आधारित विनिश्चय के प्रति निर्देश करते हैं तो यह न केवल उन मामलों के प्रति निर्देश है जहां साक्ष्य का पूर्णतया अभाव है अपितु यह ऐसे किसी भी मामले के प्रति निर्देश है जहां साक्ष्य, सम्पूर्णतः लिया गया है जो निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए युक्तियुक्त तौर पर सक्षम नहीं है ।'"

16. विद्वान् काउंसेल ने **राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम और एक अन्य** बनाम **बजरंग लाल**[1] वाले मामले का भी अवलंब लिया जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"20. सुवालाल छोगालाल **बनाम** आयकर आयुक्त (1949) 17 आई. टी. आर. 269 (नागपुर) वाले मामले में माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

'.....एक तथ्य, उस साक्ष्य के होते हुए भी एक तथ्य है जिसके द्वारा इसे साबित किया जाता है । ऐसे मामलों में मात्र विधि का प्रश्न ही उद्भूत हो सकता है जब यह अभिकथित किया जाता है कि कोई सामग्री नहीं है जिस पर निष्कर्ष आधारित किया जा सके या कोई पर्याप्त सामग्री नहीं है ।'

67. तथ्य के प्रश्न पर भी द्वितीय अपील ग्रहण करने पर कोई प्रतिषेद्ध नहीं है परन्तु, न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि निचले न्यायालयों के निष्कर्ष सुसंगत साक्ष्यों पर विचार नहीं करने के कारण दूषित है या मामले में त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया है और निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित हैं । [देखें – जगदीश सिंह **बनाम** नत्थू सिंह (1992) 1 एस. सी. सी. 647, प्रतिवा देवी **बनाम** टी. वी. कृष्णनन् (1996) 5 एस. सी. सी. 353, सत्य गुप्ता **बनाम** बृजेश कुमार (1998) 6 एस. सी. सी. 423, राघवेन्द्र

[1] (2014) 4 एस. सी. सी. 693.

कुमार **बनाम** फर्म प्रेम मशीनरी एण्ड कम्पनी (2000) 1 एस. सी. सी. 679, मोलार मल **बनाम** के आयरन वर्क्स (प्रा.) लिमिटेड (2000) 4 एस. सी. सी. 285, भारत मठ **बनाम** आर. विजय रंगनाथन् (2010) 11 एस. सी. सी. 483 और दिनेश कुमार **बनाम** यूसुफ अली (2010) 12 एस. सी. सी. 740] ।

68. जय सिंह **बनाम** शकुन्तला (2002) 3 एस. सी. सी. 634 वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि तथ्य के प्रश्न पर भी हस्तक्षेप करना अनुज्ञेय है किन्तु यह अपवादित मामलों में ही हो सकता है और अत्यंत अनुचितता पर ही प्राधिकारी अनुज्ञेय सीमा में उसकी परीक्षा कर सकता है । यह नियमितता के मुकाबले विरलतम होता है और इस प्रकार, यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस प्रकार कोई प्रतिषेद्ध नहीं है किन्तु संवीक्षा की शक्ति का प्रयोग अति-अपवादित परिस्थितियों में और समुचित सावधानी से ही किया जा सकता है । इसी प्रकार का मत कश्मीर सिंह **बनाम** हरनाम सिंह (2008) 12 एस. सी. सी. 796 वाले मामले में भी अपनाया गया है ।'

17. यह न्यायालय, इस न्यायालय द्वारा यथाविरचित विधि के सारवान् प्रश्न पर पहले ही विचार कर चुका है और मेरा यह निष्कर्ष है कि अपील की स्वीकृति के समय पर अनुचितता के निष्कर्ष के बारे में इस न्यायालय द्वारा कोई प्रश्न नहीं उठाया गया है । फिर भी यह दोहराया जा सकता है कि पक्षकारों के अभिवचनों के साथ ही साक्षियों के कथनों और अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता है कि विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष किसी भी तरीके से अनुचित हैं । तद्नुसार, मैं अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूं और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है, पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे । विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और डिक्रियों की पुष्टि की जाती है ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

क.

———

संसद् के अधिनियम

आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005

(2005 का अधिनियम संख्यांक 53)

[23 दिसंबर, 2005]

आपदाओं के प्रभावी प्रबन्धन और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005 है ।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ; और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और किसी राज्य के संबंध में इस अधिनियम के किसी उपबंध के प्रारम्भ के प्रति किसी निर्देश का अर्थ यह लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में उस उपबंध के प्रारम्भ के प्रति निर्देश है ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो :–

(क) "प्रभावित क्षेत्र" से देश का ऐसा क्षेत्र या भाग अभिप्रेत है जो किसी आपदा से प्रभावित है ;

(ख) "क्षमता निर्माण" के अन्तर्गत निम्नलिखित है –

(i) विद्यमान संसाधनों और अर्जित या सृजित किए जाने वाले संसाधनों की पहचान ;

(ii) उपखंड (i) के अधीन पहचान किए गए संसाधनों को

अर्जित करना या सृजित करना ;

(iii) आपदाओं के प्रभावी प्रबन्धन के लिए कार्मिक का गठन और प्रशिक्षण तथा ऐसे प्रशिक्षण का समन्वयन ;

(ग) "केन्द्रीय सरकार" से भारत सरकार का ऐसा मंत्रालय या विभाग अभिप्रेत है जिसका आपदा प्रबन्धन पर प्रशासनिक नियंत्रण है ;

(घ) "आपदा" से किसी क्षेत्र में प्राकृतिक या मानवकृत कारणों से या दुर्घटना या उपेक्षा से उद्भूत ऐसी कोई महाविपत्ति, अनिष्ट, विपत्ति या घोर घटना अभिप्रेत है जिसका परिणाम जीवन की सारवान् हानि या मानवीय पीड़ाएं, या संपत्ति का नुकसान और विनाश या पर्यावरण का नुकसान या अवक्रमण है और ऐसी प्रकृति या परिमाण का है, जो प्रभावित क्षेत्र के समुदाय की सामना करने की क्षमता से परे है ;

(ङ) "आपदा प्रबन्धन" से योजना, संगठन, समन्वयन और कार्यान्वयन की निरन्तर और एकीकृत प्रक्रिया अभिप्रेत है जो निम्नलिखित के लिए आवश्यक या समीचीन हैं –

(i) किसी आपदा के खतरे या उसकी आशंका का निवारण ;

(ii) किसी आपदा या उसकी गंभीरता या उसके परिणामों के जोखिम का शमन या कमी ;

(iii) क्षमता निर्माण ;

(iv) किसी आपदा से निपटने के लिए तैयारियां ;

(v) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से तुरन्त बचाव ;

(vi) किसी आपदा के प्रभाव की गंभीरता या परिमाण का निर्धारण ;

(vii) निष्क्रमण, बचाव और राहत ;

(viii) पुनर्वास और पुनर्निर्माण ;

(च) "जिला प्राधिकरण" से धारा 25 की उपधारा (1) के अधीन गठित जिला आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण अभिप्रेत है ;

(छ) "जिला योजना" से धारा 31 के अधीन जिले के लिए तैयार की गई आपदा प्रबन्धन योजना अभिप्रेत है ;

(ज) "स्थानीय प्राधिकारी" के अतंर्गत पंचायती राज संस्थाएं, नगरपालिकाएं, जिला बोर्ड, छावनी बोर्ड, नगर योजना प्राधिकारी या जिला परिषद् या किसी भी नाम से ज्ञात कोई अन्य निकाय या प्राधिकारी है जिनमें तत्समय विधि द्वारा किसी विनिर्दिष्ट स्थानीय क्षेत्र के भीतर आवश्यक सेवाएं प्रदान करने की नागरिक सेवाओं के नियंत्रण और प्रबन्धन सहित शक्तियां विनिहित की गई हैं ;

(झ) "शमन" से किसी या आपदा की आशंका की स्थिति के जोखिम, समाघात या प्रभाव को कम करने के लिए आशयित उपाय अभिप्रेत है ;

(ञ) "राष्ट्रीय प्राधिकरण" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण अभिप्रेत है ;

(ट) "राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति" से धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन गठित राष्ट्रीय प्राधिकरण की कार्यकारिणी समिति अभिप्रेत है ;

(ठ) "राष्ट्रीय योजना" से धारा 11 के अधीन संपूर्ण देश के लिए तैयार की गई आपदा प्रबन्धन योजना अभिप्रेत है ;

(ड) "तैयारी" से किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा और उसके प्रभावों से निपटने के लिए तैयार रहने की स्थिति अभिप्रेत है ;

(ढ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ण) "पुनर्निर्माण" से आपदा के पश्चात् किसी संपत्ति का सन्निर्माण या प्रत्यावर्तन अभिप्रेत है ;

(त) "संसाधन" के अन्तर्गत जनशक्ति, सेवाएं सामग्री और रसद भी हैं ;

(थ) "राज्य प्राधिकरण" से धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत उस धारा के अधीन गठित संघ राज्यक्षेत्र का आपदा प्रबंधन प्राधिकरण भी है ;

(द) "राज्य कार्यकारिणी समिति" से धारा 20 की उपधारा (1) के अधीन गठित राज्य प्राधिकरण की कार्यकारिणी समिति अभिप्रेत है ;

(ध) "राज्य सरकार" से राज्य सरकार का वह विभाग अभिप्रेत है

जिसका आपदा प्रबंधन पर प्रशासनिक नियंत्रण है और उसके अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त किया गया किसी संघ राज्यक्षेत्र का प्रशासक भी है ;

(न) "राज्य योजना" से धारा 23 के अधीन संपूर्ण राज्य के लिए तैयार की गई आपदा प्रबन्धन योजना अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण

3. राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण की स्थापना – (1) ऐसी तारीख से जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त नियत करे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण नाम से ज्ञात एक प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी ।

(2) राष्ट्रीय प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और नौ से अनधिक उतने सदस्य होंगे जितने केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं और जब तक कि नियमों में अन्यथा उपबंधित न किया जाए, राष्ट्रीय प्राधिकरण में निम्नलिखित होंगे :–

(क) भारत का प्रधानमंत्री, जो राष्ट्रीय प्राधिकरण का पदेन अध्यक्ष होगा ;

(ख) नौ से अनधिक ऐसे अन्य सदस्य जो राष्ट्रीय प्राधिकरण के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किए जाएंगे ।

(3) राष्ट्रीय प्राधिकरण का अध्यक्ष उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन नामनिर्दिष्ट सदस्यों में से एक सदस्य को राष्ट्रीय प्राधिकरण के उपाध्यक्ष के रूप से पदाभिहित कर सकेगा ।

(4) राष्ट्रीय प्राधिकरण के सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

4. राष्ट्रीय प्राधिकरण के अधिवेशन – (1) राष्ट्रीय प्राधिकरण का अधिवेशन जब भी आवश्यक हो, ऐसे समय और स्थान पर होगा, जिसे राष्ट्रीय प्राधिकरण का अध्यक्ष ठीक समझे ।

(2) राष्ट्रीय प्राधिकरण का अध्यक्ष राष्ट्रीय प्राधिकरण के अधिवेशनों की अध्यक्षता करेगा ।

(3) यदि राष्ट्रीय प्राधिकरण का अध्यक्ष किसी कारण से राष्ट्रीय प्राधिकरण के किसी अधिवेशन में उपस्थित होने में असमर्थ है तो राष्ट्रीय प्राधिकरण का

उपाध्यक्ष उस अधिवेशन की अध्यक्षता करेगा ।

5. राष्ट्रीय प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति – केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय प्राधिकरण को उतने अधिकारी, परामर्शदाता और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जितने वह राष्ट्रीय प्राधिकरण के कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक समझे ।

6. राष्ट्रीय प्राधिकरण की शक्तियां और कृत्य – (1) राष्ट्रीय प्राधिकरण इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, आपदा का समय पर और प्रभावी मोचन सुनिश्चित करने के लिए आपदा प्रबंधन के लिए नीतियां, योजनाएं और मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राष्ट्रीय प्राधिकरण,–

(क) आपदा प्रबन्धन के संबंध में नीतियां अधिकथित कर सकेगा ;

(ख) राष्ट्रीय योजना का अनुमोदन कर सकेगा ;

(ग) भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों द्वारा राष्ट्रीय योजना के अनुसार तैयार की गई योजनाओं का अनुमोदन कर सकेगा ;

(घ) राज्य योजना तैयार करते समय राज्य प्राधिकरणों द्वारा अनुसरित किए जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा ;

(ङ) भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों द्वारा अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदा के निवारण या उसके प्रभावों के शमन के उपायों के एकीकरण के प्रयोजनों के लिए अपनाए जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा ;

(च) आपदा प्रबन्धन के लिए नीति और योजना के प्रवर्तन और कार्यान्वयन को समन्वित कर सकेगा ;

(छ) शमन के प्रयोजन के लिए निधियों की व्यवस्था करने की सिफारिश कर सकेगा ;

(ज) बड़ी आपदाओं से प्रभावित अन्य देशों को ऐसी सहायता उपलब्ध करा सकेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अवधारित की जाए ;

(झ) आपदा के निवारण या शमन या आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से निपटने के लिए तैयारी और क्षमता निर्माण के लिए ऐसे

अन्य उपाय कर सकेगा, जिन्हें वह आवश्यक समझे ;

(ञ) राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान के कार्यकरण के लिए विस्तृत नीतियां और मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा ।

(3) राष्ट्रीय प्राधिकरण के अध्यक्ष को, आपात की दशा में, राष्ट्रीय प्राधिकरण की सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति होगी किन्तु ऐसी शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा कार्योत्तर अनुसमर्थन के अध्यधीन होगा ।

7. राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा सलाहकार समिति का गठन – (1) राष्ट्रीय प्राधिकरण आपदा प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर सिफारिशें करने के लिए एक सलाहकार समिति का गठन कर सकेगा, जिसमें आपदा प्रबन्धन के क्षेत्र में विशेषज्ञ और राष्ट्रीय, राज्य या जिला स्तर पर आपदा प्रबन्धन में व्यावहारिक अनुभव रखने वाले विशेषज्ञ होंगे ।

(2) सलाहकार समिति के सदस्यों को ऐसे भत्तों का संदाय किया जाएगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय प्राधिकरण के परामर्श से विहित किए जाएं ।

8. राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के ठीक पश्चात्, राष्ट्रीय प्राधिकरण को इस अधिनियम के अधीन उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति का गठन करेगी ।

(2) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् :–

(क) भारत सरकार का ऐसा सचिव जो भारत सरकार के ऐसे मंत्रालय या विभाग का भारसाधक है, जिसका आपदा प्रबन्धन पर प्रशासनिक नियंत्रण है और जो पदेन अध्यक्ष होगा,

(ख) भारत सरकार के ऐसे सचिव जो भारत सरकार के ऐसे मंत्रालयों या विभागों के भारसाधक हैं, जिनका कृषि, परमाणु ऊर्जा, रक्षा, पीने का जल प्रदाय, पर्यावरण और वन, वित्त (व्यय), स्वास्थ्य, विद्युत, ग्रामीण विकास, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष, दूरसंचार, शहरी विकास, जल संसाधन पर प्रशासनिक नियंत्रण है और चीफ्स से आफ स्टाफ कमेटी के समन्वित सुरक्षा कर्मचारिवृन्द का प्रमुख, पदेन सदस्य ।

(3) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति के किसी के अधिवेशन में भाग लेने के लिए केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार

के किसी अन्य अधिकारी को आमंत्रित कर सकेगा और ऐसी शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे कृत्यों का निर्वहन कर सकेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय प्राधिकरण के परामर्श से विहित किए जाएं ।

(4) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा अपनी शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों के निर्वहन में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया ऐसी होगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए ।

9. उपसमितियों का गठन – (1) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति, जब भी वह अपने कृत्यों के प्रभावी निर्वहन के लिए आवश्यक समझे, एक या अधिक उपसमितियों का गठन कर सकेगी ।

(2) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति, अपने सदस्यों में से किसी की उपधारा (1) में निर्दिष्ट उपसमिति का अध्यक्ष नियुक्त करेगी ।

(3) किसी उपसमिति के साथ विशेषज्ञ के रूप में सहयोजित किसी व्यक्ति को ऐसे भत्ते, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं, संदत्त किए जा सकेंगे ।

10. राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति की शक्तियां और कृत्य – (1) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति, राष्ट्रीय प्राधिकरण को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करेगी और राष्ट्रीय प्राधिकरण की नीतियों तथा योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होगी तथा देश में आपदा प्रबंधन के प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए अनुदेशों का पालन सुनिश्चित करेगी ।

(2) उपधारा (1) अन्तर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति –

(क) आपदा प्रबन्धन के लिए समन्वय और मानिटरी निकाय के रूप में कार्य कर सकेगी ;

(ख) राष्ट्रीय योजना तैयार कर सकेगी जिनका राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन किया जाएगा ;

(ग) राष्ट्रीय नीति के कार्यान्वयन का समन्वय और उसे मानिटर कर सकेगी ;

(घ) भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों और राज्य प्राधिकरणों द्वारा आपदा प्रबन्धन योजना तैयार करने के लिए मार्गदर्शक

सिद्धांत अधिकथित कर सकेगी ;

(ङ) राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार अपनी आपदा प्रबन्धन योजना तैयार करने के लिए राज्य सरकारों और राज्य प्राधिकरणों को आवश्यक तकनीकी सहायता उपलब्ध करा सकेगी ;

(च) राष्ट्रीय योजना और भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों द्वारा तैयार की गई योजनाओं के कार्यान्वयन को मानिटर कर सकेगी ;

(छ) मंत्रालयों या विभागों द्वारा उनकी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदा निवारण और उसके शमन के लिए उपायों के एकीकरण के लिए राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के कार्यान्वयन को मानिटर कर सकेगी ;

(ज) सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों और अभिकरणों द्वारा किए जाने वाले शमन और तैयारी, उपायों के संबंध में मानिटर कर सकेगी, समन्वय कर सकेगी और निदेश दे सकेगी ;

(झ) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के प्रयोजन के लिए सभी सरकारी स्तरों पर तैयारी का मूल्यांकन कर सकेगी, और जहां आवश्यक हो, ऐसी तैयारी में वृद्धि करने के लिए निदेश दे सकेगी ;

(ञ) विभिन्न स्तर के अधिकारियों, कर्मचारियों और स्वैच्छिक बचाव कर्मकारों के लिए आपदा प्रबन्धन के संबंध में विशेषीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना बना सकेगी और उनको समन्वित कर सकेगी ;

(ट) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा की दशा में उसके मोचन के लिए समन्वय कर सकेगी ;

(ठ) भारत सरकार के सम्बद्ध मंत्रालयों या विभागों, राज्य सरकारों और राज्य प्राधिकरणों को उनके द्वारा किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के लिए किए जाने वाले उपायों के संबंध में मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगी या निदेश दे सकेगी ;

(ड) सरकार के किसी विभाग या अभिकरण से राष्ट्रीय प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरणों को ऐसे व्यक्ति या तात्विक संसाधन जो आपातकालीन मोचन, बचाव और राहत के प्रयोजनों के लिए उसके पास उपलब्ध हैं, उपलब्ध कराने की अपेक्षा कर सकेगी ;

(ढ) भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों, राज्य प्राधिकरणों, कानूनी निकायों, अन्य सरकारी या गैर सरकारी संगठनों और आपदा प्रबन्धन में लगे अन्य व्यक्तियों को सलाह दे सकेगी, सहायता प्रदान कर सकेगी और उनके क्रियाकलापों का समन्वय कर सकेगी ;

(ण) राज्य प्राधिकरणों और जिला प्राधिकरणों को इस अधिनियम के अधीन उनके कृत्यों को करने के लिए आवश्यक तकनीकी सहायता उपलब्ध करा सकेगी या उन्हें सलाह दे सकेगी ;

(त) आपदा प्रबन्धन के संबंध में साधारण शिक्षा और जागरूकता का संवर्धन कर सकेगी ; और

(थ) ऐसे अन्य कृत्य कर सकेगी जो राष्ट्रीय प्राधिकरण उससे करने की अपेक्षा करे ।

11. राष्ट्रीय योजना – (1) संपूर्ण देश के लिए आपदा प्रबन्धन के लिए राष्ट्रीय योजना नामक एक योजना तैयार की जाएगी ।

(2) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा राष्ट्रीय नीति को ध्यान में रखते हुए और राज्य सरकारों तथा आपदा प्रबन्धन के क्षेत्र में विशेषज्ञ निकायों या संगठनों के परामर्श से राष्ट्रीय योजना तैयार की जाएगी जिसका राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन किया जाएगा ।

(3) राष्ट्रीय योजना में निम्नलिखित होंगे –

(क) आपदाओं के निवारण या उनके प्रभाव के शमन के लिए किए जाने वाले उपाय ;

(ख) विकास योजनाओं में शमन संबंधी उपायों के एकीकरण के लिए किए जाने वाले उपाय ;

(ग) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा का प्रभावी रूप से मोचन करने के लिए तैयारी और क्षमता निर्माण के लिए किए जाने वाले उपाय ;

(घ) खण्ड (क), खण्ड (ख) और खण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट उपायों की बाबत भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों की भूमिका और उत्तरदायित्व ।

(4) राष्ट्रीय योजना का वार्षिक पुनर्विलोकन किया जाएगा और उसे अद्यतन किया जाएगा ।

(5) केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय योजना के अधीन किए जाने वाले उपायों के वित्तपोषण के लिए समुचित उपबंध किए जाएंगे ।

(6) उपधारा (2) और उपधारा (4) में निर्दिष्ट राष्ट्रीय योजना की प्रतियां भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों को उपलब्ध कराई जाएंगी और ऐसे मंत्रालय या विभाग राष्ट्रीय योजना के अनुसार अपनी स्वयं की योजनाएं तैयार करेंगे ।

12. राहत के न्यूनतम मानकों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत – राष्ट्रीय प्राधिकरण, आपदा से प्रभावित व्यक्तियों को उपलब्ध कराई जाने वाली राहत के न्यूनतम मानकों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों की सिफारिश करेगा जिनके अंतर्गत निम्नलिखित होंगे, –

(i) राहत कैंपों में आश्रयस्थल, खाद्य, पीने का पानी, चिकित्सा सुविधा और स्वच्छता के संबंध में उपलब्ध कराई जाने वाली न्यूनतम अपेक्षाएं ;

(ii) विधवाओं और अनाथों के लिए किए जाने वाले विशेष उपबंध ;

(iii) जीवन की हानि मद्दे अनुग्रह सहायता और मकानों को नुकसान मद्दे सहायता तथा जीविका के साधनों की बहाली के लिए सहायता ;

(iv) ऐसी अन्य सहायता जो आवश्यक हो ।

13. ऋण प्रतिदाय आदि में राहत – राष्ट्रीय प्राधिकरण, प्रचंड मात्रा की आपदाओं की दशा में आपदा से प्रभावित व्यक्तियों को ऋणों के प्रतिदाय में राहत या ऐसे रियायती निबंधनों पर, जो उचित हों, नए ऋण देने की सिफारिश कर सकेगा ।

अध्याय 3

राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण

14. राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना – (1) प्रत्येक राज्य सरकार, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा राज्य के लिए ऐसे नाम से जो राज्य सरकार की अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना करेगी ।

(2) राज्य प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और नौ से अनधिक उतने सदस्य होंगे जितने राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं और जब तक कि नियमों में अन्यथा उपबंध न किया जाए, राज्य प्राधिकरण में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् :–

(क) राज्य का मुख्यमंत्री जो पदेन अध्यक्ष होगा ;

(ख) आठ से अनधिक ऐसे अन्य सदस्य जो राज्य प्राधिकरण के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ;

(ग) राज्य कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष, पदेन ।

(3) राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन नामनिर्दिष्ट सदस्यों में से एक सदस्य को राज्य प्राधिकरण के उपाध्यक्ष के रूप में पदाभिहित कर सकेगा ।

(4) राज्य कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष राज्य प्राधिकरण का पदेन मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा :

परंतु ऐसे संघ राज्यक्षेत्र की दशा में, दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र को छोड़कर, जिसकी विधान सभा है, मुख्यमंत्री इस धारा के अधीन स्थापित प्राधिकरण का अध्यक्ष होगा और अन्य संघ राज्यक्षेत्रों की दशा में, उपराज्यपाल या प्रशासक उस प्राधिकरण का अध्यक्ष होगा :

परंतु यह और कि दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र का उपराज्यपाल राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष होगा और उसका मुख्यमंत्री राज्य प्राधिकरण का उपाध्यक्ष होगा ।

(5) राज्य प्राधिकरण के सदस्यों की पदावधि और सेवा शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

15. राज्य प्राधिकरण के अधिवेशन – (1) राज्य प्राधिकरण का अधिवेशन जब भी आवश्यक हो, ऐसे समय और स्थान पर होगा जिसे राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष ठीक समझे ।

(2) राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष राज्य प्राधिकरण के अधिवेशनों की अध्यक्षता करेगा ।

(3) यदि राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष किसी कारण से राज्य प्राधिकरण के किसी अधिवेशन में उपस्थित होने में असमर्थ है तो राज्य प्राधिकरण का उपाध्यक्ष उस अधिवेशन की अध्यक्षता करेगा ।

16. राज्य प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति – राज्य सरकार, राज्य प्राधिकरण को उतने अधिकारी, परामर्शदाता और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जितने वह राज्य प्राधिकरण के कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक समझे ।

17. राज्य प्राधिकरण द्वारा सलाहकार समिति का गठन – (1) राज्य प्राधिकरण, जब भी वह आवश्यक समझे, आपदा प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर सिफारिशें करने के लिए एक सलाहकार समिति का गठन कर सकेगा जिसमें आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में विशेषज्ञों और आपदा प्रबंधन का व्यावहारिक अनुभव रखने वाले विशेषज्ञ होंगे ।

(2) सलाहकार समिति के सदस्यों को ऐसे भत्तों का संदाय किया जाएगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

18. राज्य प्राधिकरण की शक्तियां और कृत्य – (1) राज्य प्राधिकरण इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हए, राज्य में आपदा प्रबंधन के लिए नीतियां और योजनाएं अधिकथित करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना राज्य प्राधिकरण,–

(क) राज्य आपदा प्रबंधन नीति अधिकथित कर सकेगा ;

(ख) राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार राज्य योजना का अनुमोदन कर सकेगा ;

(ग) राज्य सरकार के विभागों द्वारा तैयार की गई आपदा प्रबंधन योजनाओं का अनुमोदन कर सकेगा ;

(घ) राज्य सरकार के विभागों द्वारा अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदाओं के निवारण और शमन के उपायों के एकीकरण के प्रयोजनों के लिए अपनाए जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा और उसके लिए आवश्यक तकनीकी सहायता करा सकेगा ;

(ङ) राज्य योजना के कार्यान्वयन को समन्वित कर सकेगा ;

(च) शमन और तैयारी उपायों के लिए निधियों की व्यवस्था करने की सिफारिश कर सकेगा ;

(छ) राज्य के विभिन्न विभागों के विकास योजनाओं का पुनर्विलोकन कर सकेगा और यह सुनिश्चित कर सकेगा कि निवारण और शमन के

उपाय उसमें एकीकृत किए गए हैं ;

(ज) राज्य सरकार के विभागों द्वारा शमन, क्षमता निर्माण और तैयारी के लिए किए जा रहे उपायों का पुनर्विलोकन कर सकेगा और ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जारी कर सकेगा जो आवश्यक हों ।

(3) राज्य प्राधिकरण के अध्यक्ष को, आपात की दशा में, राज्य प्राधिकरण की सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति होगी किन्तु ऐसे शक्तियों का प्रयोग राज्य प्राधिकरण के कार्योत्तर अनुसमर्थन के अधीन रहते हुए होगा ।

19. राज्य प्राधिकरण द्वारा राहत के न्यूनतम मानक के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत – राज्य प्राधिकरण राज्य में आपदा से प्रभावित व्यक्तियों को राहत के मानकों का उपबंध करने के लिए विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित करेगा :

परंतु ऐसे मानक किसी भी दशा में राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा इस संबंध में अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों में न्यूनतम मानकों से कम नहीं होंगे ।

20. राज्य कार्यकारिणी समिति का गठन – (1) राज्य सरकार, धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के ठीक पश्चात् राज्य प्राधिकरण को इस अधिनियम के अधीन राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार राज्य प्राधिकरण के कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने और कार्य का समन्वय करने के लिए तथा राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए निदेशों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए एक राज्य कार्यकारिणी समिति का गठन करेगी ।

(2) राज्य कार्यकारिणी समिति में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् :–

(क) राज्य सरकार का मुख्य सचिव, जो पदेन अध्यक्ष होगा ;

(ख) राज्य सरकार के ऐसे विभागों के चार सचिव जिन्हें राज्य सरकार ठीक समझे, पदेन ।

(3) राज्य कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं और ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करेगा जो उसे राज्य प्राधिकरण द्वारा प्रत्यायोजित किए जाएं ।

(4) राज्य कार्यकारिणी समिति द्वारा अपनी शक्तियों के प्रयोग और अपने कृत्यों के निर्वहन में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया वह होगी जो राज्य

सरकार द्वारा विहित की जाए ।

21. राज्य कार्यकारिणी समिति द्वारा उपसमितियों का गठन – (1) राज्य कार्यकारिणी समिति जब भी वह अपने कृत्यों के दक्षतापूर्ण निर्वहन के लिए आवश्यक समझे, एक या अधिक उपसमितियों का गठन कर सकेगी ।

(2) राज्य कार्यकारिणी समिति अपने सदस्यों में से किसी को उपधारा (1) में निर्दिष्ट उपसमिति का अध्यक्ष नियुक्त कर सकेगी ।

(3) किसी उपसमिति के साथ विशेषज्ञ के रूप में सहयोजित किसी व्यक्ति को ऐसे भत्ते जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं, संदत्त किए जा सकेंगे ।

22. राज्य कार्यकारिणी समिति के कृत्य – (1) राज्य कार्यकारिणी समिति राष्ट्रीय योजना और राज्य योजना के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होगी और राज्य में आपदा प्रबंधन के लिए समन्वय करने और मानिटरी करने वाले निकाय के रूप में कार्य करेगी ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राज्य कार्यकारिणी समिति –

(क) राष्ट्रीय नीति, राष्ट्रीय योजना और राज्य योजना के कार्यान्वयन का समन्वय और मानिटरी पर सकेगी ;

(ख) आपदाओं के विभिन्न रूपों से राज्य के विभिन्न भागों की भेद्यता की परीक्षा कर सकेगी और उनके निवारण या शमन के लिए किए जाने वाले उपायों को विनिर्दिष्ट कर सकेगी ;

(ग) राज्य सरकार के विभागों और जिला प्राधिकरणों द्वारा आपदा प्रबंधन योजनाओं को तैयार किए जाने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगी ;

(घ) राज्य सरकार के विभागों और जिला प्राधिकरणों द्वारा तैयार की गई आपदा प्रबंधन योजनाओं के कार्यान्वयन की मानिटरी कर सकेगी ;

(ङ) विभागों द्वारा अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदाओं के निवारण और शमन के उपायों के एकीकरण के लिए राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के कार्यान्वयन की मानिटरी कर सकेगी ;

(च) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के लिए सभी सरकारी और गैर सरकारी स्तरों पर तैयारी का मूल्यांकन कर सकेगी और जहां आवश्यक हो, ऐसी तैयारियों में वृद्धि करने के लिए निदेश दे सकेगी ;

(छ) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा की दशा में मोचन का समन्वय कर सकेगी ;

(ज) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन में किए जाने वाले उपायों के संबंध में राज्य सरकार के किसी विभाग या राज्य में किसी अन्य प्राधिकरण या निकाय को निदेश दे सकेगी ;

(झ) आपदाओं के ऐसे रूपों के संबंध में, जिनसे राज्य के विभिन्न भाग भेद्य हैं, सामान्य शिक्षा, जागरूकता और समुदाय प्रशिक्षण का संवर्धन कर सकेगी और ऐसे उपाय, जो आपदा के निवारण और ऐसी आपदा के शमन और मोचन के लिए ऐसे समुदाय द्वारा किए जा सकेंगे ;

(ञ) राज्य सरकार के विभागों, जिला प्राधिकरणों, कानूनी निकायों और आपदा प्रबंधन में लगे अन्य सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को सलाह दे सकेगी, उनके क्रियाकलापों में सहायता कर सकेगी और उनका समन्वय कर सकेगी ;

(ट) उनके कृत्यों को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने के लिए जिला प्राधिकरणों और स्थानीय प्राधिकरणों को उनके कृत्यों का प्रभावी रूप से निर्वहन करने में आवश्यक तकनीकी सहायता प्रदान कर सकेगी या सलाह दे सकेगी ;

(ठ) आपदा प्रबंधन से संबंधित सभी वित्तीय विषयों के संबंध में राज्य सरकार को सलाह दे सकेगी ;

(ड) राज्य में किसी स्थानीय क्षेत्र में सन्निर्माण की परीक्षा कर सकेगी और यदि उसकी यह राय है कि आपदा के निवारण के लिए ऐसे सन्निर्माण के लिए अधिकथित मानकों का अनुसरण नहीं किया जा रहा है या नहीं किया गया है तो, यथास्थिति, जिला प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण को ऐसी कार्रवाई करने के लिए निदेश दे सकेगी जो ऐसे मानकों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो ;

(ढ) राष्ट्रीय प्राधिकरण को आपदा प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित जानकारी उपलब्ध करा सकेगी ;

(ण) राज्य स्तर की मोचन योजनाओं और मार्गदर्शक सिद्धांतों को अधिकथित, पुनर्विलोकित और अद्यतन कर सकेगी और यह सुनिश्चित कर सकेगी कि जिला स्तर की योजनाएं तैयार, पुनर्विलोकित और अद्यतन की गई हैं ;

(त) यह सुनिश्चित कर सकेगी कि संसूचना तंत्र ठीक है और आपदा प्रबंधन कवायद कालिकत: की जाती हैं ;

(थ) ऐसे अन्य कृत्य कर सकेगी जो उसे राज्य प्राधिकरण द्वारा समनुदेशित किए जाएं या जैसा वह आवश्यक समझे ।

23. राज्य योजना – (1) प्रत्येक राज्य के लिए आपदा प्रबंधन के लिए एक योजना होगी जिसे राज्य आपदा प्रबंधन योजना कहा जाएगा ।

(2) राज्य कार्यकारिणी समिति द्वारा, राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए और स्थानीय प्राधिकरणों तथा जिला प्राधिकरणों और जनता के प्रतिनिधियों के साथ ऐसा परामर्श करने के पश्चात् जिसे राज्य कार्यकारिणी समिति ठीक समझे, राज्य योजना तैयार की जाएगी ।

(3) राज्य कार्यकारिणी समिति द्वारा उपधारा (2) के अधीन तैयार की गई राज्य योजना का राज्य प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन किया जाएगा ।

(4) राज्य योजना के अंतर्गत निम्नलिखित होगा,–

(क) आपदा के विभिन्न रूपों से राज्य के विभिन्न भागों की भेद्यता ;

(ख) आपदाओं के निवारण और शमन के लिए अपनाए जाने वाले उपाय ;

(ग) ऐसी रीति जिसमें शमन के उपाय, विकास योजनाओं और परियोजनाओं के साथ एकीकृत किए जाएंगे ;

(घ) क्षमता निर्माण और तैयारी के लिए किए जाने वाले उपाय ;

(ङ) ऊपर खंड (ख), खंड (ग) और खंड (घ) में विनिर्दिष्ट उपायों के संबंध में राज्य सरकार के प्रत्येक विभाग की भूमिकाएं और उत्तरदायित्व ;

(च) किसी आशंकित आपदा स्थिति या आपदा के मोचन में राज्य सरकार के विभिन्न विभागों की भूमिकाएं और दायित्व ।

(5) राज्य योजना प्रतिवर्ष पुनर्विलोकित और अद्यतन की जाएगी ।

(6) राज्य योजना के अधीन किए जाने वाले उपायों के वित्तपोषण के लिए राज्य सरकार द्वारा समुचित उपबंध किए जाएंगे ।

(7) उपधारा (2) और उपधारा (5) में निर्दिष्ट राज्य योजना की प्रतियां राज्य सरकार के विभागों को उपलब्ध कराई जाएंगी और ऐसे विभाग राज्य योजना के अनुसार अपनी योजनाएं तैयार करेंगे ।

24. आपदा की आशंका की दशा में राज्य कार्यकारिणी समिति की शक्तियां और कृत्य – आपदा द्वारा प्रभावित समुदाय की सहायता और संरक्षा करने के प्रयोजनों के लिए या ऐसे समुदायों को राहत प्रदान करने के लिए या किसी आपदा की आशंका की स्थिति का निवारण करने या उसके विनाश का प्रत्युपाय करने या उसके प्रभावों से निपटने के प्रयोजन के लिए राज्य कार्यकारिणी समिति,–

(क) संवेदनशील या प्रभावित क्षेत्रों को या वहां से उसके भीतर वाहन यातायात को नियंत्रित और निर्बन्धित कर सकेगी ;

(ख) किसी संवेदनशील या प्रभावित क्षेत्र में किसी व्यक्ति के प्रवेश, उसके भीतर, उसके आने-जाने और वहां से प्रस्थान को नियंत्रित और निर्बन्धित कर सकेगी ;

(ग) मलबे को हटा सकेगी, खोज कर सकेगी और बचाव कार्य कर सकेगी ;

(घ) राष्ट्रीय प्राधिकरण और राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मानकों के अनुसार आश्रय, खाद्य, पेयजल, आवश्यक रसद, स्वास्थ्य देखभाल और सेवाएं उपलब्ध करा सकेगी ;

(ङ) राज्य सरकार के संबंधित विभाग और राज्य की स्थानीय सीमाओं के भीतर किसी जिला प्राधिकरण या अन्य प्राधिकरण को जीवन या संपत्ति को बचाने के लिए बचाव, निष्क्रमण या तत्काल राहत पहुंचाने के ऐसे उपाय करने या कार्रवाई करने के निदेश दे सकेगी ; जो उसकी राय में आवश्यक हों ;

(च) राज्य सरकार के किसी विभाग या अन्य किसी निकाय या प्राधिकरण से या किन्हीं सुसंगत संसाधनों के भारसाधक व्यक्ति से आपात मोचन, बचाव और राहत के प्रयोजनों के लिए संसाधन उपलब्ध कराने की

अपेक्षा कर सकेगी ;

(छ) आपदाओं के क्षेत्र में विशेषज्ञों और परामर्शियों से बचाव और राहत के लिए सलाह और सहायता देने की अपेक्षा कर सकेगी ;

(ज) जब भी अपेक्षित हो, किसी प्राधिकरण या व्यक्ति से सुख-सुविधाओं के उपयोग को अनन्य रूप से या अधिमानत: उपाप्त कर सकेगी ;

(झ) अस्थायी पुलों या अन्य आवश्यक संरचनाओं का सन्निर्माण कर सकेगी और ऐसी असुरक्षित संरचनाओं को ध्वस्त कर सकेगी जो जनता के लिए परिसंकटमय हों ;

(ञ) यह सुनिश्चित कर सकेगी कि गैर-सरकारी संगठन साम्यापूर्ण रूप में या अविभेदकारी रीति में अपने क्रियाकलाप करें ;

(ट) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से निपटने के लिए जनता को जानकारी दे सकेगी ;

(ठ) ऐसे उपाय कर सकेगी जिनके लिए केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार इस संबंध में निदेश दे या ऐसे अन्य उपाय कर सकेगी जो किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा में अपेक्षित या वांछित हों ।

क्रमशः.....